परितो वणिजां संघैर्नानावस्तुविराजितैः। सिन्दूराकारमणिभिर्निर्मितैश्च विचित्रितैः ॥७॥
भूषितं भूषितैर्दिव्यैराश्रमैः शतकोटिभिः। गत्वा ददर्श तन्मध्ये शङ्खचूडालयं वरम् ॥८॥
अतीव वलयाकारं यथा पूर्णेन्दुमण्डलम्। ज्वलदग्निशिखाभिश्च परिखाभिश्चतसृभिः ॥९॥
सुदुर्गमं च शत्रूणामन्येषां सुगमं सुखम्। अत्युच्चैर्गगनस्पर्श्यमणिप्राकारवेष्टितम् ॥१०॥
राजितं द्वादशद्वारैर्द्वारपालसमन्वितैः। रत्नकृत्रिमपद्माढ्यै रत्नदर्पणभूषितैः ॥११॥
मणीन्द्रसारखचितैः शोभितं लक्षमन्दिरैः। शोभितं रत्नसोपानै रत्नस्तम्भविराजितैः ॥१२॥
रत्नचित्रकपाटाद्यैः सद्रत्नकलशान्वितैः। रत्नप्रतिमपद्माद्यै रत्नदर्पणभूषितम् ॥
रत्नेन्द्रचित्रराजोभिः सुदीप्ताभिर्विराजितम् ॥१३॥
परितो रक्षितं शश्वद्दानवैः शतकोटिभिः। दिव्यास्त्रधारिभिः शूरैर्महाबलपराक्रमैः ॥१४॥
सुन्दरैश्च सुवेषैश्च नानालंकारभूषितैः। तान्दृष्ट्वा पुष्पदन्तोऽपि वरद्वारं ददर्श सः ॥१५॥
द्वारे नियुक्तं पुरुषं शूलहस्तं च सस्मितम्। तिष्ठन्तं पिङ्गलाक्षं च ताम्रवर्णं भयंकरम् ॥१६॥
कथयामास वृत्तान्तं जगाम तदनुज्ञया। अतिक्रम्य नवद्वारं जगामाभ्यन्तरं पुरम् ॥१७॥
न कैश्चिद्वारितो दूतो दूतरूपेण तस्य च। गत्वा सोऽभ्यन्तरं द्वारं द्वारपालमुवाच ह ॥१८॥
रणस्य सर्ववृत्तान्तं विज्ञापयितुमीश्वरम्। स च तं कथयित्वा च दूतं गन्तुमुवाच ह ॥१९॥

सुशोभित तथा सिन्दूराकार मणियों के चित्र-विचित्र सौ करोड़ दिव्य भवनों से विभूषित था। इस प्रकार वहाँ पहुँच कर उस दूत ने शंखचूड़ का वह सुन्दर भवन देखा जो चन्द्रमण्डल की भाँति अत्यन्त गोलाकार और प्रज्वलित अग्निशिखा की भाँति चार परिखाओं (खाइयों) से घिरा था ॥७-९॥ शत्रुओं के लिए अत्यन्त दुर्गम और अन्य के लिए सुखप्रद तथा अत्यन्त ऊँची मणिनिर्मित दीवारों से आवृत था ॥१०॥ द्वारपाल समेत बारह दरवाजों से सुशोभित और रत्नों के बने कमलों तथा रत्नों के दर्पणों से भूषित तथा मणियों के सार भाग से निर्मित एक लक्ष मन्दिरों से वह भवन शोभायमान था। रत्नों के सोपान (सीढ़ियाँ), रत्नों के स्तम्भ, रत्नों के चित्र-विचित्र किवाड़, उत्तम रत्नों के कलश, रत्नों के कमल, रत्नों के दर्पण एवं उत्तम रत्नों की चित्र विचित्र पंक्तियाँ वहाँ की शोभा बढ़ा रही थीं ॥११-१३॥ वहाँ चारों ओर से सौ करोड़ दानव पहरा दे रहे थे, जो दिव्य अस्त्रों से सम्पन्न, शूर, महाबली, महापराक्रमी, सुन्दर और उत्तम वेष तथा विविध अलंकारों से भूषित थे। उन्हें देखने के उपरान्त पुष्पदन्त ने प्रमुख द्वार को देखा ॥१४-१५॥ वहाँ बैठा हुआ द्वारपाल हाथ में शूल लिए हुए, मुसकराता हुआ, पिंगलाक्ष, ताँबे के समान वर्ण वाला और भयंकर दिखायी देता था ॥१६॥ उससे सारा समाचार कह कर दूत ने उसकी आज्ञा से भीतर प्रवेश किया। इस प्रकार नौ द्वारों को पार कर के वह भीतर पहुँच गया ॥१७॥ उसे दूत समझ कर किसी ने रोका नहीं। अनन्तर उसने भीतर जाकर द्वारपाल से सब वृत्तान्त कह दिया, जो उसके स्वामी से कहना था। वृत्तान्त सुनने के उपरान्त उसने दूत को भीतर जाने की अनुमति प्रदान की ॥१८-१९॥ इस प्रकार भीतर जाकर दूत ने

स गत्वा शङ्खचूडं तं ददर्श सुमनोहरम्। सभामण्डलमध्यस्थं स्वर्णसिंहासनस्थितम्॥२०॥
मणीन्द्रखचितं चित्रं रत्नदण्डसमन्वितम्। रत्नकृत्रिमपुष्पैश्च प्रशस्तं शोभितं सदा॥२१॥
भृत्येन हस्तविधृतं स्वर्णच्छत्रं मनोहरम्। सेवितं पार्षदगणैर्व्यजनैः श्वेतचामरैः॥२२॥
सुवेषं सुन्दरं रम्यं रत्नभूषणभूषितम्। माल्यानुलेपनं सूक्ष्मवस्त्रं च दधतं मुने॥२३॥
दानवेन्द्रैः परिवृतं सुवेषैश्च त्रिकोटिभिः। शतकोटिभिरन्यैश्च भ्रमद्भिः शस्त्रधारिभिः॥२४॥
एवंभूतं च तं दृष्ट्वा पुष्पदन्तः सविस्मयः। उवाच रणवृत्तान्तं यदुक्तं शंकरेण च॥२५॥

पुष्पदन्त उवाच

राजेन्द्र शिवदूतोऽहं पुष्पदन्ताभिधः प्रभो। यदुक्तं शंकरेणैव तद्ब्रवीमि निशामय॥२६॥
राज्यं देहि च देवानामधिकारं च सांप्रतम्। देवाश्च शरणापन्ना देवेशे श्रीहरौ परे॥२७॥
दत्त्वा त्रिशूलं हरिणा तुभ्यं प्रस्थापितः शिवः। चन्द्रभागानदीतीरे वटमूले त्रिलोचनः॥२८॥
विषयं देहि तेषां च युद्धं वा कुरु निश्चितम्। गत्वा वक्ष्यामि किं शम्भुं तद्भवान्वक्तुमर्हति॥२९॥
दूतस्य वचनं श्रुत्वा शङ्खचूडः प्रहस्य च। प्रभाते ह्यागमिष्यामि त्वं च गच्छेत्युवाच ह॥३०॥

अतिमनोहर शंखचूड़ को देखा, जो सभामण्डल के मध्य ऐसे स्वर्ण सिंहासन पर विराजमान था, जो उत्तम मणियों से निर्मित, चित्र विचित्र रत्नदण्डों से भूषित और रत्नों के बने पुष्पों से रमणीय एवं शोभित था॥२०-२१॥ उसके मस्तक पर सोने का सुन्दर छत्र तना था, जिसे एक भृत्य ने ले रखा था। उस छत्र में मणियाँ जड़ी हुई थीं। वह विचित्र छत्र रत्नमय दंड से सुशोभित था। रत्ननिर्मित कृत्रिम पुष्प उसकी शोभा को और भी बढ़ा रहे थे। सफेद एवं चमकीले चँवर हाथ में लेकर अनेक पार्षद शंखचूड़ की सेवा में संलग्न थे। उत्तम वेष एवं रत्नमय भूषणों से विभूषित होने के कारण वह बड़ा सुन्दर जान पड़ता था। मुने! उसके गले में माला थी। शरीर पर चंदन का अनुलेपन था। वह दो महीन उत्तम वस्त्र पहने हुए था। उस समय सुन्दर वेष वाले असंख्य प्रसिद्ध दानवों से वह घिरा था और असंख्य दूसरे दानव हाथों में अस्त्र लिए इधर-उधर घूम रहे थे। ऐसे वैभव-सम्पन्न शंखचूड़ को देखकर पुष्पदन्त को महान् आश्चर्य हुआ। अनन्तर उसने शंकर के कथनानुसार युद्ध का वृत्तान्त कहना प्रारम्भ किया॥२२-२५॥

पुष्पदन्त ने कहा—राजेन्द्र! मैं शिव का दूत हूँ, पुष्पदन्त मेरा नाम है। प्रभो! शंकर जी ने जो कुछ कहा है मैं उसे कह रहा हूँ। आप सुनने की कृपा करें!॥२६॥ आप इस समय देवों के अधिकार और उनके राज्य उन्हें लौटा दें। क्योंकि देव लोग देवाधीश्वर भगवान् श्रीहरि (विष्णु) की शरण में पहुँच गये हैं॥२७॥ उन्होंने शंकर जी को त्रिशूल देकर तुम्हारे पास (युद्धार्थ) भेजा है। वे त्रिलोचन चन्द्रभागा नदी के तट पर वट वृक्ष के नीचे ठहरे हुए हैं॥२८॥ अतः देवों को उनका राज्य लौटा दें या निश्चित रूप से युद्ध करें। मुझ यह भी आप बता दें कि मैं लौट कर शम्भु से क्या कहूँगा॥२९॥दूत की बातें सुनकर शंखचूड़ ने हँसकर कहा—'मैं प्रातःकाल वहाँ आऊँगा, तुम जाओ।' यह सुन कर दूत ने शीघ्रता से जाकर वट वृक्ष के नीचे ठहरे हुए शिव से शंखचूड़ की बात (उत्तर) और

स गत्वोवाच तूर्णं तं वटमूलस्थमीश्वरम्। शङ्खचूडस्य वचनं तदीयं यत्परिच्छदम्॥३१॥
एतस्मिन्नन्तरे स्कन्द आजगाम शिवान्तिकम्। वीरभद्रश्च नन्दी च महाकालः सुभद्रकः॥३२॥
विशालाक्षश्च बाणश्च पिङ्गलाक्षो विकम्पनः। विरूपो विकृतिश्चैव मणिभद्रश्च बाष्कलः॥३३॥
कपिलाक्षो दीर्घदंष्ट्रो विकटस्ताम्रलोचनः। कालङ्कटो बलीभद्रः कालजिह्वः कुटीचरः॥३४॥
बलोन्मत्तो रणश्लाघी दुर्जयो दुर्गमस्तथा। अष्टौ च भैरवा रौद्रा रुद्राश्चैकादश स्मृताः ३५॥
वसवो वासवाद्याश्च आदित्या द्वादश स्मृताः। हुताशनश्च चन्द्रश्च विश्वकर्माऽश्विनौ च तौ॥३६॥
कुबेरश्च यमश्चैव जयन्तो नलकूबरः। वायुश्च वरुणश्चैव बुधो वै मङ्गलस्तथा॥३७॥
धर्मश्च शनिरीशानः कामदेवश्च वीर्यवान्। उग्रदंष्ट्रा चोग्रचण्डा कोट्टरी कैटभी तथा॥३८॥
स्वयं शतभुजा देवी भद्रकाली भयंकरी। रत्नेन्द्रराजखचितविमानोपरि संस्थिता॥३९॥
रक्तवस्त्रपरीधाना रक्तमाल्यानुलेपना। नृत्यन्ती च हसन्ती गायन्ती सुस्वरं मुदा॥४०॥
अभयं ददती भक्तमभया सा भयं रिपुम्। बिभ्रती विकटां जिह्वां सुलोलां योजनायताम्॥४१॥
खर्परं वर्तुलाकारं गम्भीरं योजनायतम्। त्रिशूलं गगनस्पर्शि शक्तिं वै योजनायताम्॥४२॥
शङ्खं चक्रं गदां पद्मं शरांश्चापं भयंकरम्। मुद्गरं मुसलं वज्रं खड्गं फलकमुज्ज्वलम्॥४३॥
वैष्णवास्त्रं वारुणास्त्रमाग्नेयं नागपाशकम्। नारायणास्त्रं ब्रह्मास्त्रं गान्धर्वं गारुडं तथा॥४४॥
पार्जन्यं वै पाशुपतं जृम्भणास्त्रं च पार्वतम्। माहेश्वरास्त्रं वायव्यं दण्डं संमोहनं तथा॥
अव्यर्थमस्त्रशतकं[1] दिव्यास्त्रशतकं परम् ॥४५॥

उसके सेवकों आदि का वृत्तान्त कह सुनाया॥३०-३१॥ उसी बीच वहाँ शिव के पास (दल समेत) कार्तिकेय आये, जिनके साथ वीरभद्र, नन्दी, महाकाल, सुभद्र, विशालाक्ष, बाण, पिंगलाक्ष, विकम्पन, निरूप, विकृति, मणिभद्र, वाष्कल, कपिलाक्ष, दीर्घदंष्ट्र (लम्बे दाँत वाले), विकट, ताम्रलोचन, कालंकट, बलीभद्र, कालजिह्व, कुटीचर, बलोन्मत्त, रणश्लाघी, दुर्जय, दुर्गम, आठों भयंकर भैरव, ग्यारह रुद्र, आठो वसु, वासव आदि बारहों आदित्य, अग्नि, चन्द्र, विश्वकर्मा, अश्विनीकुमार, कुबेर, यम, जयन्त, नलकूबर, वायु, वरुण, बुध, मंगल, धर्म, ईशान, शनि, पराक्रमी कामदेव तथा उग्रदंष्ट्रा, उग्रचण्डा, कोट्टरी, कैटभी, स्वयं शतभुजा देवी तथा भयंकरी भद्रकाली भी आयी थीं। वे देवी अतिशय श्रेष्ठ रत्न द्वारा निर्मित विमान पर बैठी थीं॥३२-३९॥ वे रक्त वर्ण के वस्त्र, रक्तवर्ण की माला तथा रक्तवर्ण का अनुलेपन धारण कर के नाचती, हँसती एवं हर्ष के उल्लास में भर कर मीठे स्वरों में गाना गा रही थीं॥४०॥ भक्त को निर्भय और शत्रु को भयभीत करने वाली वे देवी विकट जिह्वा धारण किए थीं, जो योजन भर लंबी तथा लपलपा रही थी॥४१॥ उनके हाथ में एक योजन विस्तृत, वर्तुलाकार तथा गंभीर खप्पर था वे गगनस्पर्शी त्रिशूल, एक योजन लम्बी शक्ति, शंख, चक्र, गदा, पद्म, भीषण धनुष, मुद्गर, मुशल, वज्र और अत्यंत विस्तृत एवं चमकीला खड्ग धारण किए हुई थीं॥४२-४३॥ वैष्णवास्त्र, वारुणास्त्र, आग्नेय अस्त्र, नागपाश, नारायणास्त्र, ब्रह्मास्त्र, गान्धर्व, गारुड, पार्जन्य, पाशुपत, जृम्भणास्त्र, पार्वत, माहेश्वरास्त्र, वायव्य, दण्ड, सम्मोहनास्त्र, सैकड़ों अमोघ अस्त्र और सौ तेजस्वी दिव्यास्त्रों को धारण करके भद्रकाली तीन करोड़ योगिनियों एवं तीन

---

१ ख. ०था। नानाविधान्यायुधानि दि०।

आगत्य तत्र तस्थौ सा योगिनीनां त्रिकोटिभिः। सार्धं वै डाकिनीनां च विकटानां त्रिकोटिभिः॥४६॥
भूतप्रेतपिशाचाश्च कूष्माण्डा ब्रह्मराक्षसाः। वेतालाश्चैव यक्षाश्च राक्षसाश्चैव किन्नराः॥४७॥
ताभिश्चैव सह स्कन्दो नत्वा वै चन्द्रशेखरम्। पितुः पार्श्वे सभायां च समुवास भवाज्ञया॥४८॥
अथ दूते गते तत्र शङ्खचूडः प्रतापवान्। उवाच तुलसी वार्तां गत्वाऽभ्यन्तरमेव च॥४९॥
रणवार्तां च सा श्रुत्वा शुष्ककण्ठोष्ठतालुका। उवाच मधुरं साध्वी हृदयेन विदूयता॥५०॥

तुलस्युवाच

हे प्राणनाथ हे बन्धो तिष्ठ मे वक्षसि क्षणम्। हे प्राणाधिष्ठातृदेव रक्ष मे जीवनं क्षणम्॥५१॥
भुङ्क्ष्व जन्मसु भोग्यं तद्यद्वै मनसि वाञ्छितम्। पश्यामि त्वां क्षणं किंचिल्लोचनाभ्यां पिपासिता॥५२॥
आन्दोलयन्ति प्राणा मे मनोदाहश्च संततम्। दुःस्वप्नं च मया दृष्टं चाद्यैव चरमे निशि॥५३॥
तुलसीवचनं श्रुत्वा भुक्त्वा पीत्वा नृपेश्वरः। उवाच वचनं प्राज्ञो हितं सत्यं यथोचितम्[1]॥५४॥

शङ्खचूड उवाच

कालेन योजितं सर्वं कर्मभोगनिबन्धनम्। शुभं हर्षं सुखं दुःखं भयं शोकममङ्गलम्॥५५॥
कालेभवन्ति वृक्षाश्च शाखावन्तश्च कालतः। क्रमेण पुष्पवन्तश्च फलवन्तश्च कालतः॥५६॥

करोड़ विकट रूप वाली डाकिनियों के साथ विराजमान थीं॥४४-४६॥ इस प्रकार भूत, प्रेत, पिशाच, कूष्माण्ड, ब्रह्मराक्षस, वेतालगण, यक्षगण, राक्षसगण और किन्नर लोगों को भी साथ लेकर कार्तिकेय ने अपने पिता चन्द्रशेखर को प्रणाम किया और उनकी आज्ञा से उस सभा में उनके पास ही बैठ गये॥४७-४८॥

दूत के चले जाने पर प्रतापी राजा शंखचूड ने अन्तःपुर में जाकर तुलसी से सब बातें बतायीं॥४९॥ रण की बातें सुनकर उस सुन्दरी के कण्ठ, ओंठ और तालू सूख गये। हृदय में दुःखानुभव करती हुई भी वह पतिव्रता पति से मधुरवाणी में कहने लगी॥५०॥

तुलसी बोली—हे प्राणनाथ, हे बन्धो! क्षण भर आप मेरी छाती से लगे रहें। हे मेरे प्राणों के अधिष्ठातृ देव! क्षण भर मेरे जीवन की रक्षा करें॥५१॥ कई जन्मों से मन में जो अभिलषित भोग्य पदार्थ हों उनका उपभोग कर लें। मैं अपने नेत्रों से कुछ क्षण तो आदरपूर्वक आपके दर्शन कर लूँ॥५२॥ मेरे प्राण फड़फड़ा रहे हैं और मन निरन्तर जल रहा है। मैंने आज ही रात्रि के अन्तिम समय दुःस्वप्न देखा है॥५३॥ तुलसी की ऐसी बातें सुन कर विद्वान् राजाधीश्वर शंखचूड़ ने खा-पीकर उससे सत्य, हितकर एवं यथार्थ वचन कहे॥५४॥

शंखचूड बोले—कर्म-भोग का सारा निबन्ध काल के सूत्र में बँधा है। शुभ, हर्ष, सुख, दुःख, भय, शोक और अमंगल—सभी कालके अधीन हैं॥५५॥ काल द्वारा ही वृक्ष उत्पन्न होता है, काल द्वारा ही वह शाखाओं आदि से युक्त होता है और काल द्वारा उसमें क्रमशः पुष्प-फल लगते हैं॥५६॥ काल ही उन फलों को पकाता है। बाद में काल

---

१ क. यमीप्सित०।

तेषां फलानि पक्वानि प्रभवन्त्येव कालतः। ते सर्वे फलिनः काले काले कालं प्रयान्ति च ॥५७॥
भवन्ति काले भूतानि काले कालं प्रयान्ति च। काले भवन्ति विश्वानि काले नश्यन्ति सुन्दरि ॥५८॥
स्रष्टा च काले सृजति पाता पाति च कालतः। संहर्ता संहरेत्काले संचरन्ति क्रमेण ते ॥५९॥
ब्रह्मविष्णुशिवादीनामीश्वरः प्रकृतेः परः। स्रष्टा पाता च संहर्ता स कृत्स्नांशेन सर्वदा ॥६०॥
काले स एव प्रकृतिं निर्माय स्वेच्छया प्रभुः। निर्माय प्राकृतान्सर्वान्विश्वस्थांश्च चराचरान् ॥६१॥
आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं सर्वं कृत्रिममेव च। प्रवदन्ति च कालेन नश्यत्यपि हि नश्वरम् ॥६२॥
भज सत्यं परं ब्रह्म राधेशं त्रिगुणात्परम्। सर्वेशं सर्वरूपं च सर्वात्मानं तमीश्वरम् ॥६३॥
जनं जनेन सृजति जनं पाति जनेन यः। हरेज्जनं जनेनैव तं कृष्णं भज संततम् ॥६४॥
यस्याऽऽज्ञया वाति वातः शीघ्रगामी च संततम्। यस्याऽऽज्ञया च तपनस्तपत्येव यथाक्षणम् ॥६५॥
यथाक्षणं वर्षतीन्द्रो मृत्युश्चरति जन्तुषु। यथाक्षणं दहत्यग्निश्चन्द्रो भ्रमति भीतवत् ॥६६॥
मृत्योर्मृत्युं कालकालं यमस्य च यमं परम्। विभुं स्रष्टुश्च स्रष्टारं पातुः पालकमेव च ॥६७॥
संहर्तारं च संहर्तुस्तं कृष्णं शरणं व्रज। को बन्धुश्चैव केषां वा सर्वबन्धुं भज प्रिये ॥६८॥
अहं को वा त्वं च का वा विधिना योजितः पुरा। त्वया सार्धं कर्मणा च पुनस्तेन वियोजितः ॥६९॥

के प्रभाव से फूल-फल कर वह सम्पूर्ण वृक्ष काल कवलित हो जाता है ॥५७॥ हे सुन्दरि! उसी प्रकार प्राणी काल द्वारा उत्पन्न होते हैं और काल द्वारा ही विनष्ट भी होते हैं। काल द्वारा ही यह सारा विश्व उत्पन्न होता है और काल द्वारा नष्ट होता है ॥५८॥ काल की महिमा स्वीकार कर के ब्रह्मा सृष्टि करते हैं और विष्णु पालन में तत्पर रहते हैं। रुद्र का संहार कार्य भी काल के संकेत पर ही निर्भर है। सभी क्रमशः कालानुसार अपने व्यापार में नियुक्त होते हैं ॥५९॥ वे (श्रीकृष्ण) ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदि समस्त देवों के ईश्वर, प्रकृति से परे एवं अपने सम्पूर्ण अंश से विश्व के स्रष्टा, पालक तथा संहारक हैं ॥६०॥ वे ही प्रभु समयानुसार स्वेच्छा से प्रकृति को उत्पन्न करके उसके द्वारा चराचर समस्त विश्व की सृष्टि करते हैं ॥६१॥ इसलिए यहाँ से ब्रह्मलोक तक सब कृत्रिम कहलाते हैं और वे नश्वर पदार्थ समय से नष्ट भी होते हैं। अतः उन सत्यमूर्ति, परब्रह्म, राधाधीश्वर की ही उपासना करो, जो तीनों गुणों से परे, सर्वाधीश्वर, समस्त रूप, सब के आत्मा, अनन्त और ईश्वर हैं ॥६२-६३॥ वे प्राणी से प्राणी को उत्पन्न करते हैं, प्राणी से प्राणी की रक्षा करते हैं और प्राणी से ही प्राणी का संहार करते हैं। अतएव उन कृष्ण का भजन करो ॥६४॥ जिनकी आज्ञा से वायु निरन्तर शीघ्रगामी होकर चलता है, जिनकी आज्ञा से सूर्य समय पर तपता है ॥६५॥ इन्द्र समय पर वर्षा करते हैं, मृत्यु समस्त जीवों में विचरण करता है, अग्नि जलाता है, और भयभीत की भाँति चन्द्रमा नित्य घूमा करता है ॥६६॥ प्रिये! जो मृत्यु के मृत्यु काल के काल, यमराज के श्रेष्ठ शासक, व्यापक, ब्रह्मा के भी स्रष्टा, पालक के भी पालक तथा संहार करने वाले के भी संहारक हैं, उन श्रीकृष्ण की शरण में जाओ। प्रिये! यहाँ कौन किनका बन्धु है? जो सब के बन्धु हैं, उन्हीं को भजो ॥६७-६८॥ (देखो!) मैं कौन था और तुम कौन थी। किन्तु ब्रह्मा ने कर्मानुसार हम दोनों को एक साथ कर दिया और अब कर्मानुसार ही हम दोनों को पृथक्

---

१ क० जलं जलेन सृजति जलं पाति जलेन यः। हरेज्जलं जलेनै०।

अज्ञानी कातरः शोके विपत्तौ च न पण्डितः। सुखं दुःखं भ्रमत्येव चक्रनेमिक्रमेण च ॥७०॥
नारायणं तं सर्वेशं कान्तं प्राप्स्यसि निश्चितम्। तपः कृतं यदर्थे च पुरा बदरिकाश्रमे ॥७१॥
मया त्वं तपसा लब्धा ब्रह्मणश्च वरेण हि। हरेरर्थे तव तपो हरिं प्राप्स्यसि कामिनि ॥७२॥
वृन्दावने च गोविन्दं गोलोके त्वं लभिष्यसि। अहं यास्यामि तल्लोकं तनुं त्यक्त्वा च दानवीम् ॥७३॥
तत्र द्रक्ष्यसि मां त्वं च त्वां द्रक्ष्यामि च संततम्। आगमं राधिकाशापाद्भारतं च सुदुर्लभम् ॥७४॥
पुनर्यास्यामि तत्रैव कः शोको मे शृणु प्रिये। त्वं हि देहं परित्यज्य दिव्यरूपं विधाय च ॥७५॥
तत्कालं प्राप्स्यसि हरिं मा कान्ते कातरा भव। इत्युक्त्वा च दिनान्ते च तया सार्धं मनोहरे ॥७६॥
सुष्वाप शोभने तल्पे पुष्पचन्दनचर्चिते। नानाप्रकारविभवे चचार रत्नमन्दिरे ॥७७॥
रत्नप्रदीपसंयुक्ते स्त्रीरत्नं प्राप्य सुन्दरीम्। निनाय रजनीं राजा क्रीडाकौतुकमङ्गलैः ॥७८॥
कृत्वा वक्षसि कान्तां तां रुदतीमतिदुःखिताम्। कृशोदरीं निराहारां निमग्नां शोकसागरे ॥७९॥
पुनस्तां बोधयामास दिव्यज्ञानेन बोधवित्। पुरा कृष्णेन यद्दत्तं भाण्डीरे तत्त्वमुत्तमम् ॥८०॥
स च तस्यै ददौ तच्च सर्वशोकहरं परम्। ज्ञानं संप्राप्य सा देवी प्रसन्नवदनेक्षणा ॥८१॥
क्रीडां चकार हर्षेण सर्वं मत्वाऽतिनश्वरम्। तौ दम्पती च क्रीडातौ निमग्नौ सुखसागरे ॥८२॥

भी कर रहे हैं ॥६९॥ शोक में और विपत्ति आने पर अज्ञानी जीव कातर हो जाता है किन्तु ज्ञानी पुरुष वैसा नहीं होता है। क्योंकि सुख और दुःख चक्के की नेमि (पुट्ठी) के अनुसार आते-जाते रहते हैं ॥७०॥ इसलिए सर्वाधीश्वर भगवान् श्रीकृष्ण तुम्हें पति रूप में अवश्य मिलेंगे, जिसके निमित्त बदरिकाश्रम में पहले तुमने तप किया था ॥७१॥ हे कामिनि ! मैंने तप करके ब्रह्मा के वरदान द्वारा तुम्हें प्राप्त किया था और तुम्हारा तप तो भगवान् के लिए था, इसलिए तुम भगवान् को अवश्य प्राप्त करोगी ॥७२॥ वृन्दावन और गोलोक में भगवान् गोविन्द तुम्हें मिलेंगे और मैं भी इस दानवीय शरीर को छोड़कर उसी लोक में जाऊँगा ॥७३॥ वहाँ तुम हमें देखोगी और मैं तुम्हें निरन्तर देखा करूँगा। यहाँ अति दुर्लभ भारत प्रदेश में श्री राधा जी के शाप से हम दोनों आ गए थे ॥७४॥ प्रिये ! फिर वहीं चलेंगे। इसमें शोक करने की कौन-सी बात है तुम भी इस देह को त्याग कर दिव्य रूप धारण कर के तत्काल भगवान् से मिलोगी। अतः हे कान्ते ! व्यर्थ में कातर मत हो। इतना कह कर शंखचूड़ ने दिन के अवसान में मनोहर, सुशोभित तथा पुष्पचन्दनचर्चित शय्या पर उसके साथ शयन किया। उसका शयन-कक्ष रत्नों का बना हुआ तथा अनेक प्रकार के ऐश्वर्यों से भरा पड़ा था ॥७५-७७॥ रत्नों के प्रदीपों से सुसज्जित उस मन्दिर में उस स्त्रीरत्न (तुलसी) के साथ राजा क्रीड़ा के मांगलिक कौतुकों को करते हुए रात्रि बिताने लगा। अनन्तर रोती हुई, अत्यन्त दुःखित, क्षीण कटि वाली, भोजन से रहित तथा शोक-समुद्र में डूबी हुई उस रमणी को अपनी छाती से लगा कर बोधवेत्ता शंखचूड़ उसे दिव्य ज्ञान का उपदेश देने लगा। उस तत्त्वज्ञान को उसने पूर्वकाल में भगवान् श्रीकृष्ण से भाण्डीर वन में प्राप्त किया था ॥७८-८०॥ समस्त शोकहारी उस ज्ञान को पाकर वह देवी अत्यन्त प्रसन्न हो गयी। प्रसन्नता से उसके मुख और नेत्र खिल उठे ॥८१॥ सब को नश्वर समझ कर उस दम्पति ने हर्ष से क्रीड़ा की और क्रीड़ा करते हुए वे सुखसागर में निमग्न हो गए ॥८२॥ मुने ! उस निर्जन स्थान में उनके सर्वांग में रोमांच हो गया। रति करने

पुलकाङ्कितसर्वाङ्गौ मूर्च्छितौ निर्जने वने । अङ्गप्रत्यङ्गसंयुक्तौ सुप्रीतौ सुरतोत्सुकौ ॥८३॥
एकाङ्गौ च तथा तौ द्वौ चार्धनारीश्वरौ यथा । प्राणेश्वरं च तुलसी मेने प्राणाधिकं परम् ॥८४॥
प्राणाधिकां च तां मेने राजा प्राणाधिकेश्वरीम् । तौ स्थितौ सुखसुप्तौ च तन्द्रितौ सुन्दरौ समौ ॥८५॥
सुवेषौ सुखसंभोगादचेष्टौ सुमनोहरौ । क्षणं सचेतनौ तौ च कथयन्तौ रसाश्रयाम् ॥८६॥
कथां मनोहरां दिव्यां हसन्तौ च क्षणं पुनः । भुक्तवन्तौ च ताम्बूलं प्रदत्तं च परस्परम् ॥८७॥
परस्परं[1] सेवितौ च सुप्रीत्या श्वेतचामरैः । क्षणं शयानौ सानन्दौ वसन्तौ च क्षणं पुनः ॥८८॥
क्षणं केलिनियुक्तौ च रसभावसमन्वितौ । सुरताद्विरतिर्नास्ति तौ तद्विषयपण्डितौ ॥८९॥
सततं जययुक्तौ द्वौ क्षणं नैव पराजितौ ॥९०॥

इति श्रीब्रह्म० महा० प्रकृति० नारदना० तुलस्यु० तुलसीशङ्खचूडसंभोगो नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥१७॥

के लिए उनके अंग-प्रत्यंग अति प्रेम से संयुक्त हो गए ॥८३॥ अर्द्धनारीश्वर (शिव) की भाँति उन दोनों के अंग मिल-कर एक हो गये। उस समय तुलसी अपने प्राणेश्वर को प्राणों से अधिक मानने लगी और राजा ने भी उस प्राणेश्वरी को प्राणों से अधिक समझा। वे दोनों आनन्दपूर्वक सो गए। तन्द्रावस्था में दोनों समान रूप से सुन्दर लगते थे। उन दोनों का वेष बहुत बढ़िया था। वे दोनों सुख-संभोग के कारण निश्चेष्ट होने पर अत्यन्त मनोहर लगते थे। क्षण भर के बाद चेतना प्राप्त करने पर वे दोनों सरस, मनोहर एवं दिव्य कथा एक दूसरे को सुनाते थे ॥८४-८६॥ तथा आपस में एक दूसरे के दिए हुए सुवासित ताम्बूल खाते थे ॥८७॥ अति प्रेम से एक दूसरे को श्वेत चामर डुला कर सुखी करते थे। क्षण में दोनों सानन्द शयन करते थे, क्षण में बैठ जाते थे और क्षण में कामुक भाव में मग्न होकर रति क्रीड़ा करने लगते थे। इस प्रकार रति विषय के विशेषज्ञ उन दोनों को सुरत करने से विरति नहीं होती थी। इसलिए दोनों निरन्तर विजयी होते थे, पराजित तो कभी होते ही नहीं ॥८८-९०॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के प्रकृतिखण्ड में तुलसीशंखचूडसम्भोगवर्णन नामक सत्रहवाँ अध्याय समाप्त ॥१७॥

---

१ क. ०रं वीजितौ च।

अथाष्टादशोऽध्यायः

श्रीनारायण उवाच

श्रीकृष्णं मनसा ध्यात्वा राजा कृष्णपरायणः। ब्राह्मे मुहूर्ते चोत्थाय पुष्पतल्पान्मनोहरात् ॥१॥
रात्रिवासः परित्यज्य स्नात्वा मङ्गलवारिणा। धौते च वाससी धृत्वा कृत्वा तिलकमुज्ज्वलम् ॥२॥
चकाराऽऽह्निकमावश्यमभीष्टगुरुवन्दनम्। दध्याज्यं मधु लाजांश्च सोऽपश्यद्वस्तु मङ्गलम् ॥३॥
रत्नश्रेष्ठं मणिश्रेष्ठं वस्त्रश्रेष्ठं च काञ्चनम्। ब्राह्मणेभ्यो ददौ भक्त्या यथा नित्यं च नारद ॥४॥
अमूल्यरत्नं यत्किंचिन्मुक्तामाणिक्यहीरकम्। ददौ विप्राय गुरुवे यात्रामङ्गलहेतवे ॥५॥
गजरत्नं [1]चाश्वरत्नं धेनुरत्नं मनोहरम्। ददौ सर्वं दरिद्राय विप्रार्थं मङ्गलाय च ॥६॥
कोशागारसहस्रं च नगराणां त्रिलक्षकम्। ग्रामाणां शतकोटिं च ब्राह्मणेभ्यो ददौ मुदा ॥७॥
पुत्रं कृत्वा च राजेन्द्रं सुचन्द्रं दानवेषु च। पुत्रे समर्प्य भार्यां च राज्यं वै सर्वसंपदम् ॥८॥
प्रजानुचरसंघं च कोशौघं वाहनादिकम्। स्वयं संनाहयुक्तश्च धनुष्पाणिर्बभूव ह ॥९॥
भृत्यद्वाराक्रमेणैव स चक्रे सैन्यसंचयम्। अश्वानां च त्रिलक्षेण पञ्चलक्षेण हस्तिनाम् ॥१०॥

अध्याय १८

शंखचूड का भगवान् शंकर से वार्तालाप

श्रीनारायण बोले—कृष्णपरायण राजा शंखचूड ने ब्राह्म मुहूर्त में भगवान् श्रीकृष्ण का ध्यान करके अपनी मनोहर पुष्पशय्या का त्याग किया ॥१॥ रात के वस्त्र को त्याग कर मंगल-जल से स्नान करके दो धुले वस्त्रों को धारण किया और उज्ज्वल तिलक लगाया ॥२॥ नारद ! प्रातःकाल का आवश्यक नित्य कर्म—इष्ट-गुरु-वन्दन करके दही, घृत, मधु, लावा, इन मांगलिक वस्तुओं का दर्शन किया और नित्य की भाँति उत्तम रत्न, श्रेष्ठ मणि, उत्तम वस्त्र तथा सुवर्ण भक्तिपूर्वक दान किये ॥३-४॥ अनन्तर मांगलिक यात्रा के निमित्त अमूल्य रत्न, कुछ मोती एवं मणि की वस्तुएँ और हीरा ब्राह्मण और गुरु को अर्पित किया ॥५॥ पुनः मंगलार्थ श्रेष्ठ हाथी, उत्तम घोड़े तथा मनोहर श्रेष्ठ धेनु दरिद्र ब्राह्मणों को बाँटने लगा ॥६॥ उपरान्त एक हजार कोषागार (खजाने), तीन लाख नगर, और सौ करोड़ गाँव ब्राह्मणों को बड़ी प्रसन्नता से बाँट दिये ॥७॥ अपने पुत्र सुचन्द्र को दानवों का राजेन्द्र बना कर उसे अपनी स्त्री, राज्य, समस्त सम्पत्ति, प्रजाएँ अनुचरवृन्द, कोष-समूह और वाहन आदि सौंप दिये और स्वयं कवच धारण कर हाथ में धनुष और बाण ले लिये ॥८-९॥ सब सैनिकों को एकत्र किया। तीन लाख घोड़े, पाँच लाख हाथी, दस सहस्र रथ, तीन करोड़ धनुर्धारी, तीन करोड़ ढाल-तलवारधारी और तीन करोड़ त्रिशूल-

---

१ क. ०त्नं यानरत्नं म०।

रथानामयुतेनैव धानुष्काणां त्रिकोटिभिः। त्रिकोटिभिश्चर्मिणां च शूलिनां च त्रिकोटिभिः ॥११॥
कृता सेनाऽपरिमिता दानवेन्द्रेण नारद। तस्यां सेनापतिश्चैको युद्धशास्त्रविशारदः ॥१२॥
महारथः स विज्ञेयो रथिनां प्रवरो रणे। त्रिलक्षाक्षौहिणीसेनापतिं कृत्वा नराधिपः ॥१३॥
त्रिंशदक्षौहिणीवाद्यभाण्डौघं च चकार सः। बहिर्बभूव शिबिरान्मनसा श्रीहरिं स्मरन् ॥१४॥
रत्नेन्द्रसारखचितं विमानं ह्यारुरोह सः। गुरुवर्गान्पुरस्कृत्य प्रययौ शंकरान्तिकम् ॥१५॥
पुष्पभद्रानदीतीरे यत्राक्षयवटः शुभः। सिद्धाश्रमं च सिद्धानां सिद्धिक्षेत्रं च नामतः ॥१६॥
कपिलस्य तपः स्थानं पुण्यक्षेत्रं च भारते। पश्चिमोदधिपूर्वे च मलयस्य च पश्चिमे ॥१७॥
श्रीशैलोत्तरभागे च गन्धमादनदक्षिणे। पञ्चयोजनविस्तीर्णा दैर्घ्ये शतगुणा तथा ॥
शाश्वती जलपूर्णा च पुष्पभद्रा नदी शुभा ॥१८॥
लवणोदप्रिया भार्या शश्वत्सौभाग्यसंयुता। शुद्धस्फटिकसंकाशा भारते च सुपुण्यदा ॥१९॥
शरावतीमिश्रिता च निर्गता सा हिमालयात्। गोमन्तं वामतः कृत्वा प्रविष्टा पश्चिमोदधौ ॥२०॥
तत्र गत्वा शङ्खचूडो लुलोके चन्द्रशेखरम्। वटमूले समासीनं सूर्यकोटिसमप्रभम् ॥२१॥
कृत्वा योगासने स्थित्वा मुद्रायुक्तं च सस्मितम्। शुद्धस्फटिसंकाशं ज्वलंतं ब्रह्मतेजसा ॥२२॥
त्रिशूलपट्टिशधरं व्याघ्रचर्माम्बरं वरम्। तप्तकाञ्चनवर्णाभं जटाजालं च बिभ्रतम् ॥२३॥

धारी वीर उसकी सेना के अंग बने ॥१०-११॥ नारद! इस प्रकार उस दानवेन्द्र ने अपरिमित सेना तैयार की, जिसका एक सेनापति युद्धशास्त्र का पारगामी था ॥१२॥ महारथी उसे समझना चाहिये जो रथियों में श्रेष्ठ हो। राजा शंखचूड ने उस महारथी को अगणित अक्षौहिणी सेना पर अधिकार प्रदान कर दिया। तीस अक्षौहिणी वाद्य-भाण्डों के समूह लेकर वह राजा मन से श्रीहरि का स्मरण करते हुए अपने स्थान से बाहर निकला ॥१३-१४॥ वह रत्नेन्द्रों के सारभाग से रचित विमान पर गुरु-वर्गों को आगे करके बैठ गया और शंकर के समीप पहुँचने के लिए प्रस्थित हुआ ॥१५॥ पुष्पभद्रा नदी के तट पर एक सुन्दर अक्षयवट है। वहीं सिद्धों के बहुत-से आश्रम हैं। उस स्थान को सिद्धक्षेत्र कहा गया है ॥१६॥ भारतवर्ष में वह पुण्यक्षेत्र कपिल मुनि की तपोभूमि है। वह पश्चिम सागर के पूर्व और मलय पर्वत से पश्चिम में है। श्रीशैल पर्वत से उत्तर और गन्धमादन से दक्षिण भाग में पाँच योजन चौड़ी, पाँच सौ योजन लंबी और निरन्तर जल से परिपूर्ण रहने वाली पवित्र पुष्पभद्रा नदी बहती है ॥१७-१८॥ जो लवण-सागर की प्रिय भार्या, निरन्तर सौभाग्य सम्पन्न, शुद्ध स्फटिक की भाँति (समुज्ज्वल) और भारतदेश में अत्यन्त पुण्यप्रदा है ॥१९॥ उसका उद्गम-स्थान हिमालय है। कुछ दूर आगे आने पर शरावती नाम की नदी उसमें मिल गई है। वह गोमन्त पर्वत को बायें करके बहती हुई पश्चिम समुद्र की ओर प्रस्थान करती है ॥२०॥ वहाँ पहुँचकर शंखचूड ने चन्द्रशेखर का दर्शन किया, जो वट के नीचे सुखासीन होकर करोड़ों सूर्य के समान उद्भासित हो रहे थे ॥२१॥ वे योगासन से बैठे थे। उनके हाथों में वर एवं अभय की मुद्रा थी। मुख-मंडल मुसकान से भरा था। वे ब्रह्मतेज से उद्भासित हो रहे थे। उनकी अंग-कान्ति शुद्ध स्फटिकमणि के समान उज्ज्वल थी। उनके हाथ में त्रिशूल और पट्टिश थे तथा शरीर पर श्रेष्ठ बाघम्बर शोभा पा रहा था। वस्तुतः गौरी के प्रिय पति भगवान्

त्रिनेत्रं पञ्चवक्त्रं च नागयज्ञोपवीतिनम् । मृत्युंजयं कालमृत्युं विश्वमृत्युकरं परम् ॥२४॥
भक्तमृत्युहरं शान्तं गौरीकान्तं मनोरमम् । तपसां फलदातारं दातारं सर्वसंपदाम् ॥२५॥
आशुतोषं प्रसन्नास्यं भक्तानुग्रहकारकम् । विश्वनाथं विश्वरूपं विश्वबीजं च विश्वजम् ॥२६॥
विश्वंभरं विश्ववरं विश्वसंहारकारणम् । कारणं कारणानां च नरकार्णवतारणम् ॥२७॥
ज्ञानप्रदं ज्ञानबीजं ज्ञानानन्दं सनातनम् । अवरुह्य विमानाच्च तं दृष्ट्वा दानवेश्वरः ॥२८॥
सर्वैः सार्धं भक्तियुक्तः शिरसा प्रणनाम सः । वामतो भद्रकाली च स्कन्दं तत्पुरतः स्थितम् ॥२९॥
आशिषं च ददौ तस्मै काली स्कन्दश्च शंकरः । उत्तस्थुर्दानवं दृष्ट्वा सर्वे नन्दीश्वरादयः ॥३०॥
परस्परं च संभाषां ते चक्रुस्तत्र सांप्रतम् । राजा कृत्वा च संभाषामुवास शिवसंनिधौ ॥३१॥
प्रसन्नात्मा महादेवो भगवांस्तमुवाच ह ॥३२॥

श्रीमहादेव उवाच

विधाता जगतां ब्रह्मा पिता धर्मस्य धर्मवित् । मरीचिस्तस्य पुत्रश्च वैष्णवश्चापि धार्मिकः ॥३३॥
कश्यपश्चापि तत्पुत्रो धर्मिष्ठश्च प्रजापतिः । दक्षः प्रीत्या ददौ तस्मै भक्त्या कन्यास्त्रयोदश ॥३४॥
तास्वेका च दनुः साध्वी तत्सौभाग्येन वर्धिता । चत्वारिंशद्दनोः पुत्रा दानवास्तेजसोज्ज्वलः ॥३५॥
तेष्वेको विप्रचित्तिश्च महाबलपराक्रमः । तत्पुत्रो धार्मिको दम्भो विष्णुभक्तो जितेन्द्रियः ॥३६॥

शंकर परम सुन्दर हैं। उनका शान्त विग्रह भक्त के मृत्युभय को दूर करने में पूर्ण समर्थ है। तपस्या का फल देना तथा अखिल सम्पत्तियों को भरपूर रखना उनका स्वाभाविक गुण है। वे बहुत शीघ्र प्रसन्न होते हैं। उनके मुख पर कभी उदासी नहीं आती। वे भक्तों पर अनुग्रह करने वाले हैं। उन्हें विश्वनाथ, विश्वबीज, विश्वरूप, विश्वज, विश्वम्भर, विश्ववर और विश्वसंहारक कहा जाता है। वे कारणों के कारण तथा नरक से उद्धार करने में परम कुशल हैं। वे सनातन प्रभु ज्ञान प्रदान करने वाले, ज्ञान के बीज तथा ज्ञानानन्द हैं। दानवराज शंखचूड ने विमान से उतरकर उनके दर्शन किये और सबके साथ सिर झुका कर उन भगवान् शंकर को भक्तिपूर्वक प्रणाम किया, जिनके बाँये भाग में भद्रकाली और सामने स्कन्द बैठे थे॥२२-२९॥ काली, स्कन्द और शिव ने उसे आशीर्वाद दिया और नन्दीश्वर आदि ने उठकर उस दानवराज का स्वागत किया॥३०॥ उसे देखकर वहाँ के लोगों ने आपस में (उसके विषय की) बातें कीं और राजा भी उनसे बातचीत करने के अनन्तर शिव के समीप बैठ गया॥३१॥ अनन्तर प्रसन्नात्मा भगवान् महादेव उससे बोले॥३२॥

श्री महादेव बोले—जगत् के विधाता ब्रह्मा के, जो धर्म के पिता और धर्मवेत्ता हैं, मरीचि नामक वैष्णव एवं धार्मिक पुत्र हुए॥३३॥ मरीचि के कश्यप प्रजापति धार्मिक पुत्र हुए। उन्हें दक्ष ने प्रसन्न होकर अति भक्ति-पूर्वक अपनी तेरह कन्याएँ प्रदान कीं॥३४॥ उनमें एक पतिव्रता दनु है। दनु के सौभाग्य से चालीस दानव पुत्र हुए, जो अत्यन्त तेजस्वी थे॥३५॥ उन्हीं में एक विप्रचित्ति नामक महाबली और महापराक्रमी दानव हुआ, जिसका दम्भ नामक पुत्र धार्मिक, विष्णुभक्त एवं जितेन्द्रिय था॥३६॥ उसने गुरु शुक्राचार्य की प्रेरणा से पुष्कर क्षेत्र

जजाप परमं मन्त्रं पुष्करे लक्षवत्सरम्। शुक्राचार्यं गुरुं कृत्वा कृष्णस्य परमात्मनः॥३७॥
तदा त्वां तनयं प्राप परं कृष्णपरायणम्। पुरा त्वं पार्षदो गोपो गोपेष्वष्टसु धार्मिकः॥३८॥
अधुना राधिकाशापाद्भारते दानवेश्वरः। आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं भ्रमं मेने च वैष्णवः॥३९॥
सालोक्यसार्ष्टिसारूप्यसामीप्यैक्यं हरेरपि। दीयमानं न गृह्णन्ति वैष्णवाः सेवनं विना॥४०॥
ब्रह्मत्वममरत्वं वा तुच्छं मेने च वैष्णवः। इन्द्रत्वं वा कुबेरत्वं न मेने गणनासु च॥४१॥
कृष्णभक्तस्य ते किं वा देवानां विषये भ्रमे। देहि राज्यं च देवानां मत्प्रीतिं कुरु भूमिप॥४२॥
सुखं स्वराज्ये त्वं तिष्ठ देवाः सन्तु स्वके पदे। अलं भ्रातृविरोधेन सर्वे कश्यपवंशजाः॥४३॥
यानि कानि पापानि ब्रह्महत्यादिकानि च। ज्ञातिद्रोहस्य पापस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम्॥४४॥
स्वसंपदां च हानिं च यदि राजेन्द्र मन्यसे। सर्वावस्थासु समता केषां याति च सर्वदा॥४५॥
ब्रह्मणश्च तिरोभावो लये प्राकृतिके सति। आविर्भावः पुनस्तस्य प्रभवेदीश्वरेच्छया॥४६॥
ज्ञानं बुद्धिश्च तपसा स्मृतिर्लोकस्य निश्चितम्। करोति सृष्टिं ज्ञानेन स्रष्टा सोऽपि क्रमेण च॥४७॥
परिपूर्णतमो धर्मः सत्ये सत्याश्रयः सदा। सोऽपि त्रिभागस्त्रेतायां द्विभागो द्वापरे स्मृतः॥४८॥
एकभागः कलेः पूर्वे तद्ध्रासश्च क्रमेण च। कलामात्रं कलेः शेषे कुह्वां चन्द्रकला यथा॥४९॥

में एक लाख वर्षों तक परमात्मा श्रीकृष्ण के मंत्र का जप किया था॥३७॥ तब तुम कृष्णपरायण श्रेष्ठ पुरुष उन्हें पुत्र रूप से प्राप्त हुए हो। पूर्वजन्म में तुम भगवान् श्रीकृष्ण के पार्षद एक महान् धर्मात्मा गोप थे। गोपों में तुम्हारी महती प्रतिष्ठा थी॥३८॥ इस समय तुम राधिका जी के शाप से भारतवर्ष में आकर वैष्णव दानवेश्वर हुए हो। वैष्णव लोग यहाँ से ब्रह्मलोक पर्यन्त सभी लोकों को भ्रमात्मक (मिथ्या) मानते हैं॥३९॥ भगवान् की एक सेवा (भक्ति) के बिना सालोक्य, सायुज्य, सारूप्य और सामीप्य नामक मुक्ति को भी वे वैष्णव गण स्वीकार नहीं करते हैं॥४०॥ वैष्णव जन ब्रह्मत्व-अमरत्व को भी तुच्छ मानते हैं; इन्द्रत्व, कुबेरत्व की तो वे गणना ही नहीं करते॥४१॥ इसलिए तुम भगवान् श्रीकृष्ण के भक्त हो। तुम्हारे लिए देवताओं का राज्य भ्रममात्र है। उसमें तुम्हारी क्या आस्था हो सकती है? तुम देवों को उनका राज्य लौटा दो और मुझे आनन्दित करो। तुम अपने राज्य में सुख से रहो और देवता लोग अपने स्थान पर रहें। क्योंकि एक कश्यप के ही तुम सभी (देव-राक्षस) सन्तान हो। अतः भाइयों से विरोध करना अच्छा नहीं है॥४२-४३॥ ब्रह्महत्या आदि जितने पाप हैं, वे ज्ञाति (पट्टीदारी) के द्रोह रूप पाप की सोलहवीं कला के भी समान नहीं होते हैं॥४४॥ राजेन्द्र! आप यदि इसमें अपनी सम्पत्ति की हानि समझते हैं, तो भला सोचो कि संसार में किसकी सदा एक-सी स्थिति बनी रह सकी है॥४५॥ प्राकृतिक लय में ब्रह्मा का भी तिरोधान हो जाता है और ईश्वर की इच्छा से उनका पुनः आविर्भाव भी होता है॥४६॥ तप के द्वारा उन्हें ज्ञान,बुद्धि और लोक की स्मृति होती है, इसीलिए स्रष्टा (ब्रह्मा) ज्ञान से क्रमशः (जगत् की) सृष्टि करते हैं॥४७॥ सत्ययुग में जो धर्म परिपूर्णतम होकर सदा सत्य के आश्रित रहता है, वह त्रेता में तीन अंश से और द्वापर में दो अंश से रहता है॥४८॥ कलि के आरम्भ में वह एक अंश से रहता है और क्रमशः उसका ह्रास होता जाता है। इसलिए अमावास्या के दिन चन्द्रमा की कला की भाँति कलि में केवल धर्म की मात्र एक कला ही शेष रह जाती है॥४९॥ सूर्य का जैसा तेज

यादृक्तेजो रवेर्ग्रीष्मे न तादृक्शिशिरे पुनः। दिने च यादृङ्मध्याह्ने सायं प्रातर्न तत्समम् ॥५०॥
उदयं याति कालेन बालतां च क्रमेण च। प्रकाण्डतां च तत्पश्चात्कालेऽस्तं पुनरेव सः ॥५१॥
दिने प्रच्छन्नतां याति काले वै दुर्दिने घने। राहुग्रस्ते कम्पितश्च पुनरेव प्रसन्नताम् ॥५२॥
परिपूर्णतमश्चन्द्रः पूर्णिमायां च यादृशः। तादृशो न भवेन्नित्यं[1] क्षयं याति दिने दिने ॥५३॥
पुनः स पुष्टतां याति परकुहूवा दिने दिने। संपद्युक्तः शुक्लपक्षे कृष्णे म्लानश्च यक्ष्मणा ॥५४॥
राहुग्रस्ते दिने म्लानो दुर्दिने निबिडे घने। काले चन्द्रो भवेच्छुद्धो भ्रष्टश्रीः कालभेदके ॥५५॥
भविष्यति बलिश्चेन्द्रो भ्रष्टश्रीः सुतलेऽधुना। कालेन पृथ्वी सस्याढ्या सर्वाधारा वसुंधरा ॥५६॥
काले जले निमग्ना सा तिरोभूता विपद्गता। काले नश्यन्ति विश्वानि प्रभवन्त्येव कालतः ॥५७॥
चराचराश्च कालेन नश्यन्ति प्रभवन्ति च। ईश्वरस्यैव समता कृष्णस्य परमात्मनः ॥५८॥
अहं मृत्युंजयो यस्मादसंख्यं प्राकृतं लयम्। अदृश्यं चापि पश्यामि वारं वारं पुनः पुनः ॥५९॥
स च प्रकृतिरूपश्च स एव पुरुषः स्मृतः। स चाऽऽत्मा सर्वजीवश्च नानारूपधरः परः ॥६०॥
करोति सततं यो हि तन्नामगुणकीर्तनम्। कालं मृत्युं स जयति जन्म रोगं जरां भयम् ॥६१॥

ग्रीष्म ऋतु में होता है वैसा शिशिर ऋतु में नहीं रहता। दिन में भी जिस प्रकार मध्याह्न में वह रहता है, वैसा सायं और प्रातःकाल में नहीं रहता है ॥५०॥ इस प्रकार सूर्य समयानुसार उदय होकर क्रमशः बाल एवं प्रचंड-अवस्था में आकर अंत में पुनः अस्त हो जाते हैं ॥५१॥ कालक्रम से जब दुर्दिन (वर्षा का समय) आता है, तब उन्हें दिन में ही छिप जाना पड़ता है। राहु से ग्रस्त होने पर सूर्य कम्पित होते हैं; पुनः थोड़ी देर के बाद प्रसन्नता आ जाती है ॥५२॥ उसी तरह पूर्णिमा के दिन चन्द्रमा जिस भाँति परिपूर्णतम रहते हैं, वैसे नित्य नहीं रहते हैं— दिन-दिन क्षीण होते रहते हैं ॥५३॥ पुनः दिन-प्रतिदिन बढ़कर पुष्ट हो जाते हैं। इस प्रकार शुक्ल पक्ष में वे शोभा-सम्पत्ति से युक्त रहते हैं और कृष्णपक्ष में यक्ष्मा रोग से मलिन हो जाते हैं ॥५४॥ फिर राहुग्रस्त होने पर तथा बादलों द्वारा घने अन्धकार के फैल जाने पर और दुर्दिन के समय वे मलिन रहते हैं और समय पाकर वही चन्द्रमा शुद्ध भी हो जाते हैं। पुनः काल भेद से उनकी श्री भ्रष्ट भी हो जाती है ॥५५॥ (देखो)! सम्प्रति भ्रष्टश्री बलि सुतल में रह रहे हैं, और आगे चलकर वही इन्द्र होंगे। यह सर्वाधार पृथ्वी कालानुसार ही सस्यसम्पन्ना होती है और काल पाकर जल में निमग्न हो जाती है एवं विपत्तिग्रस्त होकर तिरोहित भी हो जाती है। इस प्रकार समस्त विश्व समयानुसार नष्ट होता है और पुनः समय पाकर उत्पन्न भी हो जाता है ॥५६-५७॥ चर-अचर सभी समयानुसार उत्पन्न एवं विनष्ट होते हैं। केवल ईश्वर परमात्मा श्रीकृष्ण ही एक रूप में सदा विद्यमान रहते हैं ॥५८॥ मैं मृत्युञ्जय हूँ; अतः असंख्य प्राकृत लय देख चुका हूँ इसका अदृश्य होना भी बार-बार देखता रहता हूँ ॥५९॥ वही (भगवान् श्रीकृष्ण) प्रकृतिरूप, पुरुष रूप आत्मा, जीवात्मा, अनेकरूपधारी तथा सर्वश्रेष्ठ हैं ॥६०॥ जो व्यक्ति उनके नाम-गुण का निरन्तर कीर्तन करता रहता है, वह काल, मृत्यु, जन्म, रोग, जरा और भय को जीत लेता है ॥६१॥ उन्होंने

---

१ क० ०त्यं याति कुह्वामदृश्यताम्।

स्रष्टा कृतो विधिस्तेन पाता विष्णुः कृतो भवे। अहं कृतश्च संहर्ता वयं विषयिणो[1] यतः॥६२॥
कालाग्निरुद्रं संहारे नियुज्य विषये नृप। अहं करोमि सततं तन्नामगुणकीर्तनम्॥६३॥
तेन मृत्युंजयोऽहं च ज्ञानेनानेन निर्भयः। मृत्युर्मत्तो भयाद्याति वैनतेयादिवोरगः॥६४॥
इत्युक्त्वा स च सर्वेशः सर्वज्ञः सर्वभावनः। विरराम्थ शर्वश्च सभामध्ये च नारद॥६५॥
राजा तद्वचनं श्रुत्वा प्रशशंस पुनः पुनः। उवाच सुन्दरं देवं परं विनयपूर्वकम्॥६६॥

शङ्खचूड उवाच

त्वया यत्कथितं नाथ सर्वं सत्यं च नानृतम्। तथाऽपि किंचिद्यत्सत्यं श्रूयतां मन्निवेदनम्॥६७॥
ज्ञातिद्रोहे महत्पापं त्वयोक्तमधुना त्रयम्। गृहीत्वा तस्य सर्वस्वं कुतः प्रस्थापितो बलिः॥६८॥
मया समुद्धृतं सर्वमैश्वर्यं विक्रमेण च। सुतलाच्च समुद्धर्तुं नालं सोऽपि गदाधरः॥६९॥
सभ्रातृको हिरण्याक्षः कथं देवैश्च हिंसितः। शुम्भादयश्चासुरा वै कथं देवैर्निपातिताः॥७०॥
पुरा समुद्रमथने पीयूषं भक्षितं सुरैः। क्लेशभाजो वयं तत्र ते सर्वे फलभागिनः॥७१॥
क्रीडाभाण्डमिदं विश्वं कृष्णस्य परमात्मनः। यदा ददाति यस्मै स तस्यैश्वर्यं भवेत्तदा॥७२॥

ही ब्रह्मा को इस जगत् का स्रष्टा, विष्णु को रक्षक और मुझ संहर्ता बनाया है क्योंकि हम लोग विषयी हैं॥६२॥ नृप! मैं कालाग्नि नामक रुद्र को संहार कार्य में नियुक्त कर स्वयं परमात्मा श्रीकृष्ण के नामगुण का कीर्तन करता रहता हूँ॥६३॥ इसी से मृत्यु मुझ पर प्रभाव नहीं डाल सकती। गरुड़ से साँप की भाँति मुझसे मृत्यु भागती रहती है।॥६४॥ नारद! इस प्रकार उस सभा में सर्वेश भगवान् शंकर जो सर्वज्ञ, सब पर कृपा करने वाले और सर्वरूप हैं, इतना कहकर चुप हो गये॥६५॥ उनकी बातें सुनकर राजा ने बार-बार प्रशंसा की और शंकरदेव से सविनय सुन्दर वाणी में कहा॥६६॥

शंखचूड बोला—प्रभो! यद्यपि आपने जो कुछ कहा है, वह सब सत्य है, असत्य कुछ भी नहीं है। तथापि मैं भी कुछ सत्य निवेदन करना चाहता हूँ, आप सुनने की कृपा करें॥६७॥ आपने अभी कहा है कि ज्ञाति द्रोह में तीन प्रकार के महान् पाप होते हैं, तो देवताओं ने बलि का सर्वस्व लेकर उन्हें क्यों भेज दिया। मैंने यह सारा ऐश्वर्य अपने पराक्रम से प्राप्त किया—दानवों के पूव वैभव का उद्धार किया है। भगवान् गदाधर भी सुतललोक से दानव-समाज को हटा देने में समर्थन नहीं हैं॥६८-६९॥ देवों ने भाई सहित हिरण्याक्ष की हिंसा क्यों करवायी? तथा शुम्भादि असुरों को देवों ने क्यों मार गिराया?॥७०॥ उसी प्रकार पूर्वकाल में समुद्र मथने पर अमृत निकला था, जिसे केवल देवों ने ही पान किया था। वहाँ (मन्थन का) परिश्रम हमें भी करना पड़ा था किन्तु फलभागी केवल वे ही (देव लोग) हुए॥७१॥ यह समस्त विश्व परमात्मा श्रीकृष्ण का क्रीडास्थान है। वे जिसे जिस समय ऐश्वर्य प्रदान करते हैं उस समय वह ऐश्वर्यवान् होता है॥७२॥ और देव-दानव का यह वाद-विवाद (कलह) निर-

---

१ क. ०यिणाः कृताः।

देवदानवयोर्वादः शश्वन्नैमित्तिकः सदा। पराजयो जयस्तेषां कालेऽस्माकं क्रमेण च॥७३॥
तत्राऽऽवयोर्विरोधे च गमनं निष्फलं तव। समसंबधिनोर्बन्ध्वोरीश्वरस्य महात्मनः॥७४॥
जायते महती लज्जा स्पर्धाऽस्माभिः सहाधुना। ततोऽधिका च समरे कीर्तिहानिः पराजये॥७५॥
शङ्खचूडवचः श्रुत्वा प्रहस्याऽऽह त्रिलोचनः। यथोचितं सुमधुरमत्युग्रं दानवेश्वरम्॥७६॥

श्रीमहादेव उवाच

युष्माभिः सह युद्धं मे ब्रह्मवंशसमुद्भवैः। का लज्जा महती राजन्नकीर्तिर्वा पराजये॥७७॥
युद्धमादौ हरेरेव मधुना कैटभेन च। हिरण्यकशिपोश्चैव सह तेनाऽऽत्मना नृप॥७८॥
हिरण्याक्षस्य युद्धं च पुनस्तेन गदाभृता। त्रिपुरैः सह युद्धं च मया चापि पुरा कृतम्॥७९॥
सर्वेश्वर्याः सर्वमातुः प्रकृत्याश्च बभूव ह। सह शुम्भादिभिः पूर्वं समरं परमाद्भुतम्॥८०॥
पार्षदप्रवरस्त्वं च कृष्णस्य परमात्मनः। ये ये हताश्च ते दैत्या नहि केऽपि त्वया समाः॥८१॥
का लज्जा महती राजन्मम युद्धे त्वया सह। सुराणां शरणस्यैव प्रेषितस्य हरेरहो॥८२॥
देहि राज्यं च देवानां वाग्व्यये किं प्रयोजनम्। युद्धं वा कुरु मत्सार्धमिति मे निश्चितं वचः॥८३॥

न्तर नैमित्तिक ही है। इसीलिए समयानुसार बारी-बारी से कभी उनको और कभी हम लोगों को जय-पराजय प्राप्त होते रहते है॥७३॥ और हम दोनों के इस भाँति के विरोध में आप का आना निष्फल है। क्योंकि आप हम दोनों के साथ समान सम्बन्ध रखने वाले बन्धु, ईश्वर एवं महात्मा हैं॥७४॥ सम्प्रति हम लोगों से स्पर्धा (वैर-भाव) रखना आपके लिए बड़ी लज्जा की बात होगी और उससे भी अधिक रण में पराजय होने पर कीर्ति की हानि होगी॥७५॥ शंखचूड की ऐसी बातें सुनकर भगवान् त्रिलोचन उस उत्कट दानवराज से यथोचित और अत्यन्त मधुर वाणी में कहने लगे॥७६॥

श्रीमहादेवजी बोले—राजन्! तुम लोग ब्रह्मा के वंश में उत्पन्न हो, अतः तुम्हारे साथ युद्ध करने में हमें क्या बड़ी लज्जा होगी और पराजय होने पर क्या भारी अपकीर्ति होगी॥७७॥ नृप! भगवान् का मधु तथा कैटभ के साथ युद्ध हो चुका है तथा उनके साथ हिरण्यकशिपु का भी युद्ध हुआ है॥७८॥ पुनः उन्हीं गदाधारी (भगवान्) का हिरण्याक्ष के साथ यद्ध हुआ और पूर्वकाल में त्रिपुर के साथ हमारा भी युद्ध हो चुका है॥७९॥ प्राचीन काल में समस्त ऐश्वर्य सम्पन्न एवं सबकी माता प्रकृति का शुम्भ आदि असुरों के साथ परम अद्भुत युद्ध हुआ था॥८०॥ और तुम भी तो परमात्मा श्रीकृष्ण के श्रेष्ठ पार्षद हो। पिछले जितने दैत्यवृन्द मारे गये उनमें से कोई भी तुम्हारे समान नहीं है॥८१॥ इसलिए राजन्! तुम्हारे साथ युद्ध करने में मुझे क्या लज्जा है? देवों के रक्षक भगवान् ने ही मुझे भेजा है॥८२॥ अतः मेरा निश्चित कहना यही है कि मेरे साथ युद्ध मत करो, देवों का

इत्युक्त्वा शंकरस्तत्र विरराम च नारद। उत्तस्थौ शङ्खचूडश्च स्वामात्यैः सह सत्वरः॥८४॥

इति श्रीब्रह्म० महा० प्रकृ० नारदना० तुलस्यु० शिवशङ्खचूडसंवादो नामाष्टादशोऽध्यायः ॥१८॥

अथैकोनविंशोऽध्यायः

श्रीनारायण उवाच

शिवं प्रणम्य शिरसा दानवेन्द्रः प्रतापवान्। समारुरोह यानं च स्वामात्यैः सह सत्वरः॥१॥
बभूवुस्ते च संक्षुब्धाः स्कन्दशक्त्यर्दितास्तदा। नेदुर्दुन्दुभयः स्वर्गे पुष्पवृष्टिर्बभूव ह॥२॥
स्कन्दस्योपरि तत्रैव समरे च भयंकरे। स्कन्दस्य समरं दृष्ट्वा महदद्भुतमुल्बणम्॥३॥
दानवानां क्षयकरं यथा प्राकृतिकं लयम्। राजा विमानमारुह्य शरवर्षं चकार ह॥४॥
नृपस्य शरवृष्टिश्च घनवृष्टिर्यथा तथा। महान्घोरान्धकारश्च वह्न्युत्थानं बभूव ह॥५॥
देवाः प्रदुद्रुवुश्चान्ये सर्वे नन्दीश्वरादयः। एकाकी कार्तिकेयस्तु तस्थौ समरमूर्धनि॥६॥
पर्वतानां च सर्पाणां शिलानां शाखिनां तथा। शश्वच्चकार वृष्टिं च दुर्वार्ह्यां च भयंकरीम्॥७॥

राज्य लौटा दो और व्यर्थ का वाग्जाल न बढ़ाओ॥८३॥ नारद! वहाँ इतना कहकर शंकर चुप हो गये और अपने मंत्रियों समेत शंखचूड भी तुरंत उठकर खड़ा हो गया॥८४॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के प्रकृतिखण्ड में शिव-शंखचूड-संवाद नामक अठारहवाँ अध्याय समाप्त॥१८॥

अध्याय १९

शंकर और शंखचूड के पक्षों में युद्ध

नारायण बोले—वह प्रतापी दानवेन्द्र शिवजी को शिर से प्रणाम करके मंत्रियों समेत अपने विमान पर जा बैठा॥१॥ (दोनों दलों में युद्ध आरम्भ हो गया) दानव स्कन्द की शक्ति से निरन्तर पीड़ित होने लगे। उनमें हलचल मच गई। उधर स्वर्ग में नगाड़े बजने लगे। उस भयंकर युद्ध में स्कन्द के ऊपर फूलों की वर्षा होने लगी॥२॥ स्कन्द का युद्ध अत्यन्त अद्भुत और भयानक था। वह प्राकृतिक प्रलय की भाँति दानवों के लिए विनाश-कारी सिद्ध हो रहा था पर बैठा हुआ शंखचूड बाणों की वर्षा करने लगा॥३-४॥ राजा की उस बाण-वर्षा ने घन (बादल) की वर्षा की भाँति महान् और घोर अन्धकार उत्पन्न कर दिया। फिर अग्नि प्रकट होने लगा॥५॥ उस समरांगण से नन्दीश्वर आदि सभी देवगण भाग चले। केवल एकाकी कार्तिकेय पहले ही के समान डटे रहे॥६॥ उस रण में पर्वतों, नागों, शिलाओं और वृक्षों की भयंकर वृष्टि निरन्तर हो रही थी॥७॥ जल भरे बादलों से

नृपस्य शरवृष्ट्या च प्रच्छन्नः शिवनन्दनः । नीरदेन च सान्द्रेण संछन्नो भास्करो यथा ॥८॥
धनुः स्कन्दस्य चिच्छेद दुर्वहं च भयंकरम् । बभञ्ज च रथं दिव्यं चिच्छेद रथघोटकान् ॥९॥
मयूरं जर्जरीभूतं दिव्यास्त्रेण चकार सः । शक्तिं चिक्षेप सूर्याभां तस्य वक्षोविभेदिनीम् ॥१०॥
क्षणं मूर्च्छां च संप्राप्य चेतनामुपलभ्य सः । गृहीत्वाऽन्यद्धनुर्दिव्यं यद्दत्तं विष्णुना पुरा ॥११॥
रत्नेन्द्रसारखचितं यानमारुह्य चाग्निभूः । शस्त्रमस्त्रं गृहीत्वा च चकार रणमुल्बणम् ॥१२॥
सर्पांश्च पर्वतांश्चैव वृक्षांश्च प्रस्तरांस्तथा । सर्वांश्चिच्छेद कोपेन दिव्यास्त्रेण शिवात्मजः ॥१३॥
आग्नेयं वारुणास्त्रेण वारयामास वै गुहः । रथं धनुश्च चिच्छेद शङ्खचूडस्य लीलया ॥१४॥
सवाहं सारथिं चैव किरीटं मुकुटोज्ज्वलम् । चिक्षेप शक्तिमुल्काभां दानवेन्द्रस्य वक्षसि ॥१५॥
मूर्च्छां संप्राप्य राजोपलभ्य वै चेतनां पुनः । आरुह्य वै यानमन्यं धनुर्जग्राह सत्वरः ॥१६॥
चकार शरजालं च मायया मायिनां वरः । गुहं चाऽऽच्छाद्य समरे शरजालेन नारद ॥१७॥
जग्राह शक्तिमव्यर्थां शतसूर्यसमप्रभाम् । प्रलयाग्निशिखारूपां विष्णोर्वै तेजसाऽऽवृताम् ॥१८॥
चिक्षेप तां च कोपेन महावेगेन कार्तिके । पपात शक्तिस्तद्गात्रे वह्निराशिरिवोज्ज्वला ॥१९॥
मूर्च्छां संप्राप शक्त्या च कार्तिकेयो महाबलः । काली गृहीत्वा तं क्रोडे निनाय शिवसंनिधौ ॥२०॥

आच्छन्न सूर्य की भाँति स्कन्द, राजा की उस बाणवर्षा से प्रच्छन्न (अलक्षित) हो गये ॥८॥ राजा ने अपने बाणों से स्कन्द के दुर्वह और भीषण धनुष को काट दिया तथा दिव्य रथ एवं रथ के घोड़ों को भी चूर-चूर कर धराशायी कर दिया। ॥९॥ फिर शंखचूड ने अपने दिव्यास्त्र से उनके (वाहन) मयूर को जर्जर करके उनके वक्षःस्थल को फाड़ने के लिए उन पर सूर्य के समान प्रकाशपूर्ण अपनी शक्ति को चला दिया ॥१०॥ इससे उन्हें क्षण भर मूर्च्छा आयी। अनन्तर चेतना प्राप्त होने पर उन्होंने एक दूसरे दिव्य धनुष को हाथ में लिया, जिसे पहले समय में भगवान् विष्णु ने दिया था ॥११॥ फिर उत्तम रत्नों के सार भाग से निर्मित अन्य यान (रथ) पर बैठकर स्कन्द ने शस्त्र-अस्त्र द्वारा महान् घोर युद्ध किया ॥१२॥ शिव-पुत्र ने क्रुद्ध होकर उन साँपों, पर्वतों, वृक्षों और शिलाओं को अपने दिव्य अस्त्र से चूर-चूर कर दिया ॥१३॥ शंखचूड के आग्नेयास्त्र को उन्होंने अपने वारुणास्त्र से रोक दिया और उसके रथ एवं धनुष को सहज ही में काट कर गिरा दिया। पश्चात् उसके घोड़े, सारथी और उज्ज्वल किरीट मुकुट को नष्ट कर दानव-राज के लिए उल्का के समान अपने शक्ति अस्त्र का प्रयोग किया ॥१४-१५॥ जिससे राजा मूर्च्छित हो गया। अनन्तर चेतना प्राप्त होने पर वह दूसरे रथ पर बैठा और शीघ्रता से अन्य धनुष को उठा लिया ॥१६॥ नारद ! उस श्रेष्ठ मायावी ने अपनी माया से उस रणस्थल में स्कन्द को बाणों के जाल से ढक दिया और कभी भी निष्फल न होने वाली अपनी उस शक्ति को, जो सैकड़ों सूर्य के समान प्रभापूर्ण, प्रलयकालीन अग्नि की शिखारूप और भगवान् विष्णु के तेज से आवृत थी, हाथ में लेकर क्रोध से अत्यन्त वेगपूर्वक कार्तिकेय के पर छोड़ दिया। वह शक्ति उनके शरीर पर प्रज्वलित अग्नि की राशि के समान गिरी। महाबली कार्तिकेय उससे मूर्च्छित हो गये। अनन्तर कालीजी उन्हें अपनी गोद में लेकर शिवजी के पास ले गयीं और शिव जी ने सहज ही में उन्हें देखते ही जीवित कर दिया। तथा

शिवस्तं[1] दर्शनादेव जीवयामास लीलया। ददौ बलमनन्तं च स चोत्तस्थौ प्रतापवान्॥२१॥
शिवः स्वसैन्यं देवांश्च प्रेरयामास सत्वरः। दानवेन्द्रैः ससैन्यैश्च युद्धारम्भो बभूव ह॥२२॥
स्वयं महेन्द्रो युयुधे सार्धं च वृषपर्वणा। भास्करो युयुधे विप्रचित्तिना सह सत्वरः॥२३॥
दम्भेन[2] सह चन्द्रश्च चकार समरं परम्। कालेश्वरेण कालश्च गोकर्णेन हुताशनः॥२४॥
कुबेरः कालकेयेन विश्वकर्मा मयेन च। भयंकरेण मृत्युश्च संहारेण यमस्तथा॥२५॥
कलविङ्केन[3] वरुणश्चञ्चलेन समीरणः। बुधश्च घृतपृष्टेन[4] रक्ताक्षेण शनैश्चरः॥२६॥
जयन्तो रत्नसारेण वसवो वर्चसां गणैः। अश्विनौ वै दीप्तिमता धूम्रेण नलकूबरः॥२७॥
धनुर्धरेण[5] धर्मश्च मण्डूकाक्षेण मङ्गलः। शोभाकरेणैवेशानः पिठरेण च मन्मथः॥२८॥
उल्कामुखेन[6] धूम्रेण खड्गेनापि ध्वजेन च। काञ्चीमुखेन पिण्डेन धूम्रेण सह नन्दिना॥२९॥
विश्वे देवाः पलाशेन चाऽऽदित्या युयुधुः परम्। एकादश महारुद्राश्चैकादश भयंकरैः॥३०॥
महामारी च युयुधे चोग्रदण्डादिभिः सह। नन्दीश्वरादयः सर्वे दानवानां गणैः सह॥३१॥
युयुधुश्च महायुद्धे प्रलये च भयंकरे। वटमूले च शंभुश्च तस्थौ काल्या सुतेन च॥३२॥
सर्वे च युयुधुः सैन्यसमूहाः सततं मुने। रत्नसिंहासने रम्ये कोटिभिर्दानवैः सह॥३३॥
उवास शङ्खचूडश्च रत्नभूषणभूषितः। शंकरस्य च योधाश्च युद्धे सर्वे पराजिताः॥३४॥

अनन्त बल भी प्रदान किया, जिससे प्रतापी स्कन्द तुरन्त उठ कर बैठ गये॥१७-२१॥ पश्चात् शिव जी ने अपने सैनिकों और देवों को तुरन्त युद्ध के लिए प्रेरित किया। सेना समेत दानवराजों के साथ देवताओं का पुनः युद्ध प्रारंभ हुआ॥२२॥ उस युद्ध में वृषपर्वा के साथ स्वयं महेन्द्र, विप्रचित्ति के साथ सूर्य, दम्भ के साथ चन्द्रमा, कालेश्वर के साथ काल, गोकर्ण के साथ अग्नि, कालकेय के साथ कुबेर, मय के साथ विश्वकर्मा, भयंकर (नामक दानव) के साथ मृत्यु और संहार के साथ यम का महान् युद्ध होने लगा॥२३-२५॥ उसी प्रकार कलविङ्क से वरुण, चञ्चल से वायु, घृतपुष्ट से बुध, रक्ताक्ष से शनैश्चर, रत्नसार से जयन्त, वर्चस्‌गणों से वसुगण, दीप्तिमान् से अश्विनीकुमार, धूम्र से नलकूबर, धनुर्द्धर से धर्म मण्डूकाक्ष से मंगल, शोभाकरण से ईशान, पिठर से मन्मथ (कामदेव) और उल्कामुख धूम्र, खड्ग, ध्वज, काञ्चीमुख, पिण्ड, धूम्र तथा नन्दी से विश्वेदेव, पलाश से आदित्य और ग्यारह भयंकर दानवों के साथ ग्यारह महारुद्र भिड़ गए। ॥२६-३०॥ उग्रदण्डा आदि से महामारी और दानवगणों के साथ नन्दीश्वर आदि का घोर युद्ध होने लगा॥३१॥ भयंकर प्रलय की भाँति आरम्भ हुए उस युद्ध में केवल भगवान् शंकर उस वट के नीचे काली और पुत्र स्कन्द के साथ ठहरे हुए थे॥३२॥ मुने! समस्त सेनाओं का समूह उस युद्ध में निरन्तर युद्ध कर रहा था और रत्नभूषण भूषित होकर शंखचूड करोड़ों दानवों समेत रम्य रत्नसिंहासन पर सुखासीन था। उस युद्ध में शिव जी के सभी वीर

---

१ क. ०स्तं चापि ज्ञानेन। २ क. कुम्भे०। ३ क. ०बिङ्कः कारणेन चञ्च। ४ क. ०तपृष्ठेन। ५ क. धुरंधरे०। ६ क. कोकामु०।

देवाश्च दुद्रुवुः सर्वे भीताश्च क्षतविक्षताः। चकार कोपं स्कन्दश्च देवेभ्यश्चाभयं ददौ ॥३५॥
बलं सुरगणानां वै वर्धयामास तेजसा। स्वयमेकश्च युयुधे दानवानां गणैः सह ॥३६॥
अक्षौहिणीनां शतकं समरे स जघान ह। खर्परं पातयामास काली कमललोचना ॥३७॥
पपौ रक्तं दानवानां क्रुद्धा सा शतखर्परम्। दशलक्षं गजेन्द्राणां शतलक्षं च वाजिनाम् ॥३८॥
समादायैकहस्तेन मुखे चिक्षेप लीलया। कबन्धानां सहस्रं च ननर्त समरे मुने ॥३९॥
स्कन्दस्य शरजालेन दानवाः क्षतविक्षताः। भीताश्च दुद्रुवुः सर्वे महाबलपराक्रमाः ॥४०॥
वृषपर्वा[1] विप्रचित्तिर्दम्भश्चापि विकङ्कनः। स्कन्देन सार्धं युयुधुस्ते च सर्वे क्रमेण च ॥४१॥
काली जगाम समरमरक्षत्कार्तिकं शिवः। वीरास्तामनुजग्मुश्च ते च नन्दीश्वरादयः ॥४२॥
सर्वे देवाश्च गन्धर्वा यक्षराक्षसकिन्नराः। राज्यभाण्डाश्च[2] बहुशः शतकोटिर्बलाहकाः ॥४३॥
सा च गत्वा च संग्रामं सिंहनादं चकार ह। देव्या वै सिंहनादेन प्रापुर्मूर्च्छां च दानवाः ॥४४॥
अट्टाट्टहासमशिवं चकार च पुनः पुनः। हृष्टा पपौ च माध्वीकं ननर्त रणमूर्धनि ॥४५॥
उग्रदंष्ट्रा चोग्रदण्डा[3] कौट्टरी च पपौ मधु। योगिनीनां डाकिनीनां गणाः सुरगणादयः ॥४६॥
दृष्ट्वा कालीं शङ्खचूडः शीघ्रमाजिं समाययौ। दानवाश्च भयं प्रापू राजा तेभ्योऽभयं ददौ ॥४७॥

गण पराजित हो गये—क्षत-विक्षत होकर भयभीत देवगण भाग गये। अनन्तर स्कन्द ने क्रुद्ध होकर देवों को अभय-दान देते हुए तेज द्वारा अपने गणों का बलवर्द्धन किया और स्वयं अकेले दानवों के साथ युद्ध में निरत हो गए॥३३-३६॥ उस रणस्थल में उन्होंने सौ अक्षौहिणी सेना का वध किया। कमलनेत्रा काली ने क्रुद्ध होकर दानवों के सौ खप्पर रक्त का पान किया और दश लाख गजराज तथा सौ लाख घोड़ों को एक हाथ से पकड़कर खेलवाड़ की भाँति अपने मुख में डाल लिया। मुने! इस प्रकार सहस्रों कबन्धों (धड़ों) को खाकर कालीजी नृत्य करने लगीं॥३७-३९॥ उधर स्कन्द की बाणवर्षा से महाबली एवं पराक्रमी दानवगण क्षत-विक्षत होने पर भयभीत होकर भाग निकले॥४०॥ वृषपर्वा, विप्रचित्ति, दम्भ और विकंकन आदि सभी दानव योद्धाओं ने क्रमशः स्कन्द से युद्ध किया। ॥४१॥ शिव जी कार्तिकेय की रक्षा कर रहे थे और काली युद्ध करने में लगी हुई थीं। उनके पीछे नन्दीश्वर आदि वीरगण, देवगण, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, किन्नर, बहुत-से राज्यभाण्ड और सौ करोड़ बलाहक भी युद्धरत थे॥४२-४३॥ देवी ने उस युद्धस्थल में पहुँचकर सिंहनाद किया, जिससे सभी दानवगण मूर्च्छित हो गये॥४४॥ देवी ने वहाँ बार-बार भयंकर अट्टाट्टहास किया और सुरापान से हर्षित होकर उस रणभूमि में नृत्य करने लगीं॥४५॥ अनन्तर उग्र-दंष्ट्रा, उग्रचण्डा और कौट्टरी मधुपान करने लगीं। योगिनियों और डाकिनियों के गण तथा देवगण आदि भी इस कार्य में योग देने लगे। काली जी को देखकर राजा शंखचूड युद्ध में शीघ्रता से आ पहुँचा और भयभीत दानवों को अभय दान देने लगा॥४६-४७॥ काली ने आग्नेय अस्त्र का प्रयोग किया, जो प्रलयकालीन अग्नि की शिखा की भाँति

---

१ क. ०र्तिलिकुम्भश्च वि०। २ क. वाद्यभाण्डश्च बहुशः शतशो मधुवाह०। ३ क. ०ण्डा कोटरी।

काली चिक्षेप चाऽऽग्नेयं प्रलयाग्निशिखोपमम्। राजा निर्वापयामास वारुणेन स लीलया ॥४८॥
चिक्षेप वारुणं सा च तत्तीव्रं महदद्भुतम्। गन्धर्वेण च चिच्छेद दानवेन्द्रश्च[1] लीलया ॥४९॥
माहेश्वरं प्रचिक्षेप काली वह्निशिखोपमम्। राजा जघान तच्छीघ्रं वैष्णवेन च लीलया ॥५०॥
नारायणास्त्रं सा देवी चिक्षिपे मन्त्रपूर्वकम्। राजा ननाम तं दृष्ट्वा चावरुह्य रथाद्हो ॥५१॥
ऊर्ध्वं जगाम तच्छस्त्रं प्रलयाग्निशिखोपमम्। पपात शङ्खचूडश्च भक्त्या वै दण्डवद्भुवि।
ब्रह्मास्त्रं सा च चिक्षेप यत्नतो मन्त्रपूर्वकम् ॥५२॥
ब्रह्मास्त्रेण महाराजो निर्वाणं च चकार ह। चिक्षेपातीव दिव्यास्त्रं सा देवी मन्त्रपूर्वकम् ॥५३॥
राजा दिव्यास्त्रजालेन निर्वाणं च चकार ह। देवी चिक्षेप शक्तिं च यत्नतो योजनायताम् ॥५४॥
राजा तीक्ष्णास्त्रजालेन शतखण्डं चकार ह। जग्राह मन्त्रपूर्वं च देवी पाशुपतं रुषा ॥५५॥
निक्षेप्तुं सा निषिद्धा च वाग्बभूवाशरीरिणी। मृत्युः[2] पाशुपते नास्ति नृपस्य च महात्मनः ॥५६॥
यावदस्त्येव कण्ठेऽस्य कवचं हि हरेरिति। यावत्सतीत्वमस्तीह सत्याश्च नृपयोषितः ॥५७॥
तावदस्य जरा मृत्युर्नास्तीति ब्रह्मणो वरः। इत्याकर्ण्य महाकाली न तच्चिक्षेप सा सती ॥५८॥
शतलक्षं दानवानामग्रहील्लीलया क्रुधा। अत्तुं जगाम वेगेन शङ्खचूडं भयंकरी ॥५९॥

था, राजा ने वारुणास्त्र से उसका सहज ही में निवारण कर दिया ॥४८॥ देवी ने अत्यन्त तीक्ष्ण और महान् अद्भुत वारुण अस्त्र का प्रयोग किया, जिसको दानवराज ने गान्धर्वास्त्र द्वारा लीलापूर्वक काट दिया ॥४९॥ तब काली अग्निशिखा के समान माहेश्वर अस्त्र का प्रयोग किया, राजा ने वैष्णवास्त्र द्वारा शीघ्रता से उसे काट डाला ॥५०॥ देवी ने मन्त्रपूर्वक नारायणास्त्र चलाया, राजा ने उसे देखते ही नमस्कार किया और अनन्तर रथ से नीचे उतर पड़ा ॥५१॥ प्रलयकाल की अग्नि-शिखा के समान वह अस्त्र उसी समय ऊपर चला गया और भक्तिवश राजा भूमि पर दण्डवत् पड़कर साष्टांग प्रणाम करने लगा। उपरान्त देवी ने यत्न से मन्त्रपूर्वक ब्रह्मास्त्र चलाया, महाराज (दानव) ने भी ब्रह्मास्त्र द्वारा उसे शान्त कर दिया। देवी ने मन्त्रपूर्वक अत्यन्त दिव्य अस्त्र का प्रयोग किया। राजा ने अपने दिव्यास्त्र द्वारा उसे शान्त कर दिया। देवी ने एक योजन लम्बी शक्ति का सप्रयत्न प्रयोग किया, राजा ने तीक्ष्णास्त्रों के समूहों द्वारा उसके सौ टुकड़े कर दिये अनन्तर देवी ने रुष्ट होकर मन्त्रपूर्वक पाशुपत अस्त्र का प्रयोग करना चाहा, किन्तु आकाशवाणी ने उसे चलाने से रोक दिया और कहा—'इस महात्मा राजा की मृत्यु पाशुपत अस्त्र से संभव नहीं है ॥५२-५६॥ तथा जब तक इसके कण्ठ में भगवान् विष्णु का कवच बँधा रहेगा और इसकी पतिव्रता पत्नी अपने सतीत्व की रक्षा करती रहेगी तब तक इसके समीप जरा और मृत्यु अपना कुछ भी प्रभाव नहीं डाल सकती—यह ब्रह्मा का वरदान है। यह सुनकर सती महाकाली ने पाशुपत अस्त्र नहीं चलाया ॥५७-५८॥ किन्तु क्रोधावेश में सौ लाख दानवों का भक्षण कर डाला और वह भयंकरी शंखचूड को भक्षण करने के लिए वेग से दौड़ी ॥५९॥ दानवराज

---

१ क. ०न्द्रः प्रतापवान्। २ क. ०त्युः शस्त्रशतैर्नास्ति नृ०।

दिव्यास्त्रेण सुतीक्ष्णेन वारयामास दानवः। खड्गं चिक्षेप सा देवी ग्रीष्मसूर्योपमं परम् ॥६०॥
दिव्यास्त्रैर्दानवेन्द्रोऽयं शतखण्डं चकार सः। पुनरत्तुं महादेवी वेगेन च जगाम तम् ॥६१॥
सर्वसिद्धेश्वरः श्रीमान्ववृधे दानवेश्वरः। निवारयास च तां सर्वसिद्धेश्वरो वरः ॥६२॥
वेगेन मुष्टिना काली कोपयुक्ता भयंकरी। बभञ्जाथ रथं तस्य वाहनत्सारथिं सती ॥६३॥
सा च शूलं च चिक्षेप प्रलयाग्निशिखोपमम्। वामहस्तेन जग्राह शङ्खचूडं च लीलया ॥६४॥
मुष्ट्या जघान तं देवी महाकोपेन वेगतः। बभ्राम व्यथया दैत्यः क्षणं मूर्च्छामवाप ह ॥६५॥
क्षणेन चेतनां प्राप्य समुत्तस्थौ प्रतापवान्। न चक्रे बाहुयुद्धं स देव्या सह ननाम ताम् ॥६६॥
देव्याश्चास्त्रं च चिच्छेद चाग्रहीत्स्वेन तेजसा। नास्त्रं चिक्षेप तां भक्त्या मातृबुद्ध्या च वैष्णवः ॥६७॥
गृहीत्वा दानवं देवी भ्रामयित्वा पुनः पुनः। ऊर्ध्वं च प्रेरयामास महावेगेन कोपतः ॥६८॥
ऊर्ध्वात्पपात वेगेन शङ्खचूडः प्रतापवान्। निपत्य च समुत्तस्थौ स नत्वा भद्रकालिकाम् ॥६९॥
रत्नेन्द्रसारखचितं विमानाग्र्यं मनोहरम्। आरुरोह रथं हृष्टो न विश्रान्तो महारणे ॥७०॥
क्षतजं दानवानां च मासं च विपुलं क्षुधा। पीत्वा भुक्त्वा भद्रकाली ययौ सा शंकरान्तिकम् ॥७१॥
उवाच रणवृत्तान्तं पौर्वापर्यं यथाक्रमम्। श्रुत्वा जहास शंभुश्च दानवानां विनाशनम् ॥७२॥

ने अत्यन्त तीक्ष्ण दिव्यास्त्रों द्वारा उनको रोक दिया। देवी ने ग्रीष्मकालीन सूर्य की प्रभा के समान अपना खड्ग चलाया, उसे दानवेन्द्र ने अपने दिव्यास्त्रों द्वारा सौ खण्डों में कर दिया। अनन्तर महादेवी उसे खाने के लिए पुनः वेग से दौड़ीं ॥६०-६१॥ उस समय दानवेश्वर शंखचूड ने श्रीमान् और सर्वसिद्धेश्वर होने के कारण बढ़ना आरम्भ किया और सर्वसिद्धेश्वर वर के द्वारा देवी का निवारण कर दिया। पुनः भयंकरी काली देवी ने क्रुद्ध होकर वेग से मुष्टि प्रहार किया जिससे दानव का रथ और सारथी छिन्नभिन्न हो गया। पुन देवी ने प्रलयाग्नि-शिखा की भाँति शूल का प्रयोग किया, शंखचूड ने उसे लीलापूर्वक बायें हाथ से पकड़ कर रख दिया। उसी समय देवी ने महाकोप करके पुनः वेग से मुष्टि प्रहार किया, जिससे दैत्यराज व्यथित होकर घूमते हुए गिर पड़ा और क्षणिक मूर्च्छित भी हो गया। अनन्तर क्षण में चेतना प्राप्त होने पर वह प्रतापी दानव उठकर बैठ गया ॥६२-६५॥ इतने पर भी दानव ने देवी के साथ बाहुयुद्ध न कर उन्हें नमस्कार ही किया, देवी के अस्त्रों को काट डाला और अपने तेज द्वारा उन्हें पकड़ भी लिया ॥६६॥ उस वैष्णव दानवराज ने भक्तिपूर्वक उन्हें माता समझकर उन पर अपने अस्त्रों का प्रयोग नहीं किया ॥६७॥ किन्तु देवी ने क्रुद्ध होकर उसे पकड़ कर बार-बार घुमाया और अतिवेग से ऊपर फेंक दिया, किन्तु प्रतापी शंखचूड ने वेग से ऊपर से नीचे आकर भद्रकाली को नमस्कार किया और सामने उठ कर खड़ा हो गया ॥६८-६९॥ फिर उत्तम रत्नों के सार भाग से रचित उत्तम एवं मनोहर रथ पर चढ़कर प्रसन्न हो गया और वह उस महासमर में कुछ भी श्रान्त नहीं हुआ ॥७०॥ पश्चात् भद्रकाली दानवों के कटे हुए विपुल मांस तथा रक्त आदि को खा-पीकर शंकर के समीप चली गयीं। वहाँ पहुँचकर उन्होंने (शंकर से) रण का समस्त वृत्तान्त—जिस क्रम से जो कुछ हुआ था—कह सुनाया। उसे सुनकर शिव जी दानवों के विनाशार्थ हंस पड़े ॥७१-७२॥ पुनः उन्होंने

लक्षं च दानवेन्द्राणामवशिष्टं रणेऽधुना। उद्वृत्तं भूभृता सार्धं तदन्यं भुक्तमीश्वरम् ॥७३॥
संग्रामं दानवेन्द्रं च हन्तुं पाशुपतेन वै। अवध्यस्तव राजेति वाग्बभूवाशरीरिणी ॥७४॥
राजेन्द्रश्च महाज्ञानी महाबलपराक्रमः। न च चिक्षेप मय्यस्त्रं चिच्छेद मम सायकम् ॥७५॥

इति श्रीब्रह्म० महा० प्रकृति० नारदना० तुलस्यु० कालीशङ्खचूडयुद्ध
एकोनविंशोऽध्यायः ॥१९॥

अथ विंशोऽध्यायः

श्रीनारायण उवाच

शिवस्तत्त्वं समाकर्ण्य तत्त्वज्ञानविशारदः। ययौ स्वयं च समरं स्वगणैः सह नारद ॥१॥
शङ्खचूडः शिवं दृष्ट्वा विमानादवरुह्य च। ननाम परया भक्त्या दण्डवत्पतितो भुवि ॥२॥
तं प्रणम्य च वेगेन विमानं ह्यारुरोह सः। तूर्णं चकार संनाहं धनुर्जग्राह दुर्वहम् ॥३॥
शवदानवयोर्युद्धं पूर्णमब्दं बभूव ह। न वै बभूवतुर्ब्रह्मन्तयोर्जयपराजयौ ॥४॥
न्यस्तशस्त्रश्च भगवान्न्यस्तशस्त्रश्च दानवः। रथस्थः शङ्खचूडश्च वृषस्थो वृषभध्वजः ॥५॥

शिव से कहा—हे ईश्वर! इस समय रणस्थल में एक लाख दानवेन्द्र शेष रह गये हैं, जो राजा के साथ सन्नद्ध हैं और अन्य को मैंने खा लिया है ॥७३॥ समर में मैंने उस दानवेन्द्र को पाशुपत से मारना चाहा उसी समय आकाश-वाणी हुई कि—तुम्हारे द्वारा राजा की मृत्यु नहीं हो सकेगी। उसके बाद महाज्ञानी, महाबली एवं पराक्रमी राजा ने मेरे ऊपर अस्त्रों का प्रयोग नहीं किया। वह केवल मेरे छोड़े हुए बाणों को काट भर देता था ॥७४-७५॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के प्रकृतिखण्ड में तुलसी-उपाख्यान के प्रसंग में काली तथा शंखचूड-युद्ध-वर्णन नामक उन्नीसवाँ अध्याय समाप्त ॥१९॥

अध्याय २०

शंकर के त्रिशूल से शंखचूड का भस्म होना

नारायण बोले—नारद! तत्त्वज्ञान-विशारद शिव ने भद्रकाली से यथार्थ वृत्तान्त सुनकर अपने गणों समेत स्वयं समरभूमि के लिए प्रस्थान कर दिया ॥१॥ वहाँ शंखचूड ने शिव को देखते ही विमान से उतरकर अत्यन्त भक्ति से भूमि पर लेटकर दण्डवत् प्रणाम किया ॥२॥ प्रणाम करने के उपरान्त उसने वेग से रथ पर बैठकर शीघ्रता से सैनिकों को सावधान किया और दुर्जेय धनुष को उठा लिया ॥३॥ ब्रह्मन्! शिव-दानव का वह युद्ध पूरे वर्ष तक होता रहा, किन्तु उनमें किसी की जय-पराजय नहीं हुई ॥४॥ अनन्तर भगवान शिव अस्त्र छोड़कर खाली हाथ हो गये और दानव भी हथियार डालकर चुप रहा। फिर शंखचूड रथ पर आरूढ़ हुआ और शिव नन्दी पर सवार हुए ॥५॥ उस युद्ध में असंख्य दानव मारे गए। रण में शिव के सैनिक जितनी संख्या में

दानवानां च शतकमुद्‌वृत्तं च बभूव ह । रणे ये ये मृताः शंभोर्जीवयामास तान्विभुः ॥६॥
ततो विष्णुर्महामायो वृद्धब्राह्मणरूपधृक् । आगत्य च रणस्थानमवोचद्दानवेश्वरम् ॥७॥

वृद्धब्राह्मण उवाच

देहि भिक्षां च राजेन्द्र मह्यं विप्राय साम्प्रतम् । त्वं सर्वसंपदां दाता यन्मे मनसि वाञ्छितम् ॥८॥
निराहाराय वृद्धाय तृषितायाऽऽतुराय च । पश्चात्त्वां कथयिष्यामि पुरः सत्यं च कुर्विति ॥९॥
ओमित्युवाच राजेन्द्रः प्रसन्नवदनेक्षणः । कवचार्थी जनश्चाहमित्युवाच स मायया ॥१०॥
तच्छ्रुत्वा दानवश्रेष्ठो ददौ कवचमुत्तमम् । गृहीत्वा कवचं दिव्यं जगाम हरिरेव च ॥११॥
शङ्खचूडस्य रूपेण जगाम तुलसीं प्रति । गत्वा तस्यां मायया च वीर्याधानं चकार ह ॥१२॥
अथ शंभुर्हरेः शूलं दानवार्थं समग्रहीत् । ग्रीष्ममध्याह्नमार्तण्डशतकप्रभमुज्ज्वलम् ॥१३॥
नारायणाधिष्ठिताग्रं ब्रह्माधिष्ठितमध्यमम् । शिवाधिष्ठितमूलं च कालाधिष्ठितधारकम् ॥१४॥
किरणावलिसंयुक्तं प्रलयाग्निशिखोपमम् । दुर्निवार्यं च दुर्धर्षमव्यर्थं वैरिघातकम् ॥१५॥
तेजसा चक्रतुल्यं च सर्वशस्त्रविघातकम् । शिवकेशवयोरन्यद्दुर्वहं च भयंकरम् ॥१६॥
धनुःसहस्रं दैर्घ्येण विस्तृत्या शतहस्तकम् । सजीवं ब्रह्मरूपं च नित्यरूपमनिर्मितम् ॥१७॥

मृतक हुए थे, उन्हें उन्होंने जीवित कर लिया था ॥६॥ इसी बीच महामायी विष्णु ने वृद्ध ब्राह्मण के वेष में उस रण भूमि में आकर उस दानवराज से कहा ॥७॥

वृद्ध ब्राह्मण बोले—राजेन्द्र ! इस समय आप मुझ ब्राह्मण को मेरी अभिलषित भिक्षा देने की कृपा करें; क्योंकि आप समस्त सम्पत्तियों के दाता हैं और मैं निराहार, वृद्ध, प्यासा और आतुर ब्राह्मण हूँ। पहले आप देने के लिए सत्य प्रतिज्ञा करें पश्चात् मैं आपको (अपनी अभिलषित वस्तु) बताऊँगा ॥८-९॥ अनन्तर राजेन्द्र शंखचूड ने प्रसन्न मुख मुद्रा में 'ओम्' कह कर देने की प्रतिज्ञा की। तदनन्तर विष्णु ने माया फैलाते हुए कहा—'मैं आपका कवच चाहता हूँ' ॥१०॥ यह सुनकर उस दानवश्रेष्ठ ने वह उत्तम कवच उन्हें दे दिया और उस दिव्य कवच को लेकर विष्णु चले गये ॥११॥ अनन्तर शंखचूड का रूप धारण कर विष्णु ने तुलसी के पास जाकर माया से उसमें वीर्याधान किया ॥१२॥ उसी समय शिव ने दानवराज के वधार्थ विष्णु का शूल हाथ में उठा लिया। वह शूल ग्रीष्म ऋतु के मध्याह्नकालीन सैकड़ों सूर्य की प्रभा से समुज्ज्वल था ॥१३॥ उसके अग्रभाग में नारायण, मध्य में ब्रह्मा और मूल भाग में शिव एवं उसकी धार में काल अधिष्ठित थे ॥१४॥ प्रलयाग्नि शिखा की भांति उसकी किरणावलियाँ (प्रकाशपुञ्ज) थीं और वह (शूल) दुर्निवार्य, दुद्धर्ष, अव्यर्थ तथा वैरी के लिए घातक था ॥१५॥ सुदर्शन चक्र की भांति तेजस्वी, समस्त शस्त्रों का भेदक और शिव-केशव को छोड़कर दूसरों के लिए वह दुर्वह एवं भयंकर था ॥१६॥ वह सहस्र धनुषों के बराबर लंबा और सौ हाथ चौड़ा था। वह साक्षात् सजीव ब्रह्म ही था। उसके रूप में कभी परिवर्तन नहीं होता था और वह किसी का बनाया हुआ नहीं था ॥१७॥ नारद !

संहर्तुं सर्वविध्यण्डमेकदा[1] दैवलीलया। चिक्षेप घूर्णनं कृत्वा शङ्खचूडे च नारद॥१८॥
राजा चापं परित्यज्य श्रीकृष्णचरणाम्बुजम्। ध्यानं चकार भक्त्या च कृत्वा योगासनं धिया॥१९॥
शूलं च भ्रमणं कृत्वा न्यपतद्दानवोपरि। चकार भस्मसात्तं च सरथं चैव लीलया॥२०॥
राजा धृत्वा दिव्यरूपं बालकं गोपवेषकम्। द्विभुजं मुरलीहस्तं रत्नभूषणभूषितम्॥२१॥
नानारत्नसुभूषाढ्यं गोपकोटिभिरावृतम्। गोलोकादागतं यानमारुह्य तत्पुरं ययौ॥२२॥
गत्वा ननाम शिरसा राधामाधवयोर्मुने। भक्त्या तच्चरणाम्भोजं रासे वृन्दावने मुने॥२३॥
सुदामानं तौ च दृष्ट्वा प्रसन्नवदनेक्षणौ। तदा च चक्रतुः क्रोडे स्नेहेन परिसंप्लुतौ॥२४॥
अथ शूलश्च वेगेन प्रययौ शूलिनः करम्। शंकरस्तेन शूलेन शूलपाणिर्बभूव सः॥२५॥
स शिवस्तेन शूलेन दानवस्यास्थिजालकम्। प्रेम्णा च प्रेरयामास लवणोदे च सागरे[2]॥२६॥
अस्थिभिः शङ्खचूडस्य शङ्खजातिर्बभूव ह। नानाप्रकाररूपा च श्रेष्ठा पूता सुरार्चने॥२७॥
प्रशस्तं शङ्खतोयं च देवानां प्रीतिदं परम्। तीर्थतोयस्वरूपं च पवित्रं शंकरं विना॥२८॥
शङ्खशब्दो भवेद्यत्र तत्र लक्ष्मीश्च सुस्थिरा। सुस्नातः सर्वतीर्थेषु यः स्नातः शङ्खवारिणा॥२९॥

अखिल ब्रह्मांड का संहार करने की उस त्रिशूल में शक्ति थी। भगवान् शंकर ने लीला से ही उसे उठाकर घुमाया और शंखचूड पर फेंक दिया। तब उस बुद्धिमान् राजा ने सारा रहस्य जानकर अपना धनुष धरती पर फेंक दिया और वह बुद्धिपूर्वक योगासन लगाकर भक्ति के साथ अनन्य चित्त से भगवान् श्रीकृष्ण के चरणकमल का ध्यान करने लगा। अनन्तर वह शूल चक्कर काटकर दानवराज के ऊपर जा गिरा, और उसने लीलापूर्वक रथ समेत राजा को भस्म कर डाला॥१८-२०॥ पश्चात् राजा ने गोपबालक के वेष में दिव्य रूप धारण कर लिया। उसकी दो भुजायें थीं, हाथ में मुरली शोभा पा रही थी और रत्नमय आभूषणों से वह विभूषित था। करोड़ों गोप उसे घेरे हुए थे। इतने में गोलोक से आये हुए एक विमान पर बैठ कर वह गोलोक को चला गया॥२१-२२॥ मुने! वहाँ वृन्दावन के रासमंडल में जाकर उसने भक्ति के साथ मस्तक झुकाकर राधा और माधव के चरण-कमल में साष्टांग प्रणाम किया। सुदामा को देखकर उन दोनों के श्रीमुख प्रसन्नता से खिल उठे। उन्होंने स्नेह से आर्द्र होकर उसे अपनी गोद में उठा लिया। उधर वह शूल भी वेग से शिव जी के हाथ में पुनः आ गया। शंकरजी ने उसके द्वारा दानवराज के अस्थि-समूह को प्रेमपूर्वक लवण-समुद्र में डाल दिया। शंखचूड की उन अस्थियों से शंख-जाति उत्पन्न हुई॥२३-२६॥ वही शंख अनेक प्रकार के रूपों में विराजमान होकर देवपूजन में पवित्र माना जाता है, शंख का जल भी प्रशस्त एवं देवों को अति प्रीतिप्रद होता है॥२७॥ वह जल एक शिव को छोड़कर और सभी के लिए तीर्थजल के समान पवित्र होता है। शंख की ध्वनि जहाँ होती है वहाँ लक्ष्मी सुस्थिर रहती हैं॥२८॥ जिसने शंख के जल से स्नान कर लिया, वह मानों समस्त तीर्थों में स्नान कर चुका। शंख ही भगवान्

---

१ क. ०ण्डमलं च स्वाव०। २ क. सादरम्।

शङ्खो हरेरधिष्ठानं यत्र शङ्खस्ततो हरिः। तत्रैव सततं लक्ष्मीर्दूरीभूतममङ्गलम् ॥३०॥
स्त्रीणां च शङ्खध्वनिभिः शूद्राणां च विशेषतः। भीता रुष्टा याति लक्ष्मीः स्थलमन्यत्स्थलात्ततः ॥३१॥
शिवश्च दानवं हत्वा शिवलोकं जगाम सः। प्रहृष्टो वृषमारुह्य स्वगणैश्च समावृतः ॥३२॥
सुराः स्वविषयं प्रापुः परमानन्दसंयुताः। नेदुर्दुन्दुभयः स्वर्गे जगुर्गन्धर्वकिन्नराः ॥३३॥
बभूव पुष्पवृष्टिश्च शिवस्योपरि संततम्। प्रशशंसुः सुरास्तं च मुनीन्द्रप्रवरादयः ॥३४॥

इति श्रीब्रह्म० महा० प्रकृति० नारदना० तुलस्यु० शङ्खचूडवधे
शङ्खप्रस्तावो नाम विंशोऽध्यायः ॥२०॥

अथैकविंशोऽध्यायः

नारद उवाच

नारायणश्च भगवान्वीर्याधानं चकार ह। तुलस्यां केन रूपेण तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥१॥

श्रीनारायण उवाच

नारायणश्च भगवान्देवानां साधनेन च। शङ्खचूडस्य रूपेण रेमे तद्रामया सह ॥२॥

विष्णु का अधिष्ठान है, अतः जहाँ शंख रहता है वहाँ भगवान् विष्णु रहते हैं। २९॥ वहीं निरन्तर लक्ष्मी भी निवास करती हैं, अमंगल दूर से ही भाग जाता है। किन्तु स्त्रियों की तथा विशेषतया शूद्रों की शंखध्वनि सुनकर लक्ष्मी रुष्ट और भयभीत होकर उस स्थान से दूसरे स्थान में चली जाती है ॥३०॥ इस प्रकार दानवराज के वध करने के अनन्तर शिव जी अत्यन्त हर्षित होकर अपने गणों समेत बैलपर बैठकर अपने लोक को पधार गये ॥३१॥ देवगण अपना राज्य पाकर परमानन्द मग्न हो गए। स्वर्ग में देव-दुन्दुभियाँ बज उठीं। गन्धर्व-किन्नर गान करने लगे ॥३२॥ भगवान् शिव के ऊपर निरन्तर पुष्प की वर्षा होने लगी। और देवगण तथा मुनीन्द्रगण शंकरजी की प्रशंसा करने लगे ॥३३॥

श्रीब्रह्मवैवर्त महापुराण के प्रकृति-खण्ड में तुलसी-उपाख्यान के प्रसंग में
शंख-प्रस्ताव नामक बीसवाँ अध्याय समाप्त ॥२०॥

अध्याय २१

तुलसी का पातिव्रत्य भंग तथा शालिग्राम के लक्षण और महत्त्व

नारद बोले—नारायण भगवान् ने तुलसी में किस रूप से वीर्याधान किया, वह मुझे बताने की कृपा करें ॥१॥

नारायण बोले—भगवान् नारायण ने देवों के हितार्थ शंखचूड का रूप धारण करके उस सुन्दरी के साथ सम्भोग किया ॥२॥ विष्णु कपट के द्वारा शंखचूड से कवच लेकर और उसका रूप धारण करके तुलसी के भवन

शङ्खचूडस्य कवचं गृहीत्वा मायया हरिः। पुनर्विधाय तद्रूपं जगाम तुलसीगृहम् ॥३॥
दुन्दुभिं वादयामास तुलसीद्वारसंनिधौ। जयशब्दरवद्वारा बोधयामास सुन्दरीम् ॥४॥
तच्छ्रुत्वा सा च साध्वी च परमानन्दसंयुता। राजमार्गगवाक्षेण ददर्श परमादरात् ॥५॥
ब्राह्मणेभ्यो धनं दत्त्वा कारयामास मङ्गलम्। बन्दिभ्यो भिक्षुकेभ्यश्च वाचिकेभ्यो धनं ददौ ॥६॥
अवरुह्य रथाद्देवो देव्याश्च भवनं ययौ। अमूल्यरत्नसंक्लृप्तं सुन्दरं सुमनोहरम् ॥७॥
दृष्ट्वा च पुरतः कान्तं शान्तं कान्ता मुदाऽन्विता। तत्पादं क्षालयामास ननाम च रुरोद च ॥८॥
रत्नसिंहासने रम्ये वासयामास कामुकी। ताम्बूलं च ददौ तस्मै कर्पूरादिसुवासितम् ॥९॥
अद्य मे सफलं जन्म ह्यद्य मे सफलाः क्रियाः। रणागतं च प्राणेशं पश्यन्त्याश्च पुनर्गृहे ॥१०॥
सस्मिता सकटाक्षं च सकामा पुलकाञ्चिता। प्रपच्छ रणवृत्तान्तं कान्तं मधुरया गिरा ॥११॥

तुलस्युवाच

असंख्यविश्वसंहर्त्रा सार्धमाजौ तव प्रभो। कथं बभूव विजयस्तन्मे ब्रूहि कृपानिधे ॥१२॥
तुलसीवचनं श्रुत्वा प्रहस्य कमलापतिः। शङ्खचूडस्य रूपेण तामुवाचानृतं वचः ॥१३॥

श्रीहरिरुवाच

आवयोः समरं कान्ते पूर्णमब्दं बभूव ह। नाशो बभूव सर्वेषां दानवानां च कामिनि ॥१४॥

में पहुँचे ॥३॥ तुलसी के द्वार पर उन्होंने नगाड़ा बजवाया और जयध्वनि के द्वारा उस सुन्दरी को जगाया ॥४॥ उसे सुनकर वह पतिव्रता परमानन्द में मग्न हो गयी और परम आदरपूर्वक खिड़की से राज-मार्ग की ओर देखने लगी ॥५॥ उसने ब्राह्मणों को धन दान देकर मंगल कराया और भाटों, भिक्षुओं एवं वाचिकों को (समाचार देने वालों) को धन प्रदान किया ॥६॥ राजा रथ से उतरकर रानी के महल की ओर चले, जो अमूल्यरत्नों द्वारा सुरचित, सुन्दर एवं अति मनोहर था ॥७॥ सामने अपने कान्त को शान्त खड़ा देखकर वह रमणी हर्षगद्‌गद हो गयी। अनन्तर प्रणाम पूर्वक उनके चरणों का प्रक्षालन करती हुई वह प्रेमाश्रुओं को बहाने लगी ॥८॥ उस कामुकी ने उन्हें एक रमणीक सिंहासन पर बैठाकर उन्हें कर्पूरादि से सुवासित ताम्बूल प्रदान किया ॥९॥ और वह बोली—आज मेरा जन्म सफल हो गया एवं मेरी समस्त (शुभ) क्रियायें सफल हो गईं, क्योंकि रणस्थल से आये हुए अपने प्राणेश्वर को आज मैं पुनः घर में देख रही हूँ ॥१०॥ अनन्तर वह मुसकराती हुई कटाक्ष, काम-वासना तथा रोमांच के साथ मधुरवाणी में अपने प्रिय से युद्ध का वृत्तान्त पूछने लगी ॥११॥

तुलसी बोली—प्रभो! कृपानिधे! असंख्य विश्वों का संहार करने वाले उन (शिव) के साथ तुम्हारा युद्ध हो रहा था, उसमें तुम्हारी विजय कैसे हुई, मुझे बताने की कृपा करें ॥१२॥ तुलसी की बातें सुनकर शंखचूड के रूप में भगवान कमलापति ने हँसकर उससे असत्य कहना आरम्भ किया ॥१३॥

श्रीहरि बोले—कान्ते! हम दोनों का युद्ध पूरे वर्ष तक चलता रहा। कामिनि! उसमें समस्त दानवों का नाश हो गया ॥१४॥ अनन्तर ब्रह्मा ने हम दोनों में समझौता करा दिया और देवों को उनके अधिकार उन्होंने

प्रीतिं च कारयामास ब्रह्मा च स्वयमावयोः। देवानामधिकारश्च प्रदत्तो[1] धातुराज्ञया ॥१५॥
मयाऽऽगतं स्वभवनं शिवलोकं शिवो गतः। इत्युक्त्वा जगतां नाथः शयनं च चकार ह ॥१६॥
रेमे रमापतिस्तत्र रामया सह नारद। सा साध्वी सुखसंभोगादाकर्षणव्यतिक्रमात् ॥
सर्वं वितर्कयामास कस्त्वमेवेत्युवाच ह ॥१७॥

तुलस्युवाच

को वा त्वं वद मायेश भुक्ताऽहं मायया त्वया। दूरीकृतं मत्सतीत्वमथवा त्वां शपामहे ॥१८॥
तुलसीवचनं श्रुत्वा हरिः शापभयेन च। दधार लीलया ब्रह्मन्स्वां मूर्तिं सुमनोहराम् ॥१९॥
ददर्श पुरतो देवी देवदेवं सनातनम्। नवीननीरदश्यामं शरत्पङ्कजलोचनम् ॥२०॥
कोटिकन्दर्पलीलाभं रत्नभूषणभूषितम्। ईषद्धास्यं प्रसन्नास्यं शोभितं पीतवाससा ॥२१॥
तं दृष्ट्वा कामिनी कामान्मूर्च्छां संप्राप लीलया। पुनश्च चेतनां प्राप्य पुनः सा तमुवाच ह ॥२२॥

तुलस्युवाच

हे नाथ ते दया नास्ति पाषाणसदृशस्य च। छलेन धर्मभङ्गेन मम स्वामी त्वया हतः ॥२३॥
पाषाणसदृशस्त्वं च दयाहीनो यतः प्रभो। तस्मात्पाषाणरूपस्त्वं भुवि देव भवाधुना ॥२४॥
ये वदन्ति दयासिन्धुं त्वां ते भ्रान्ता न संशयः। भक्तो विनाऽपराधेन परार्थे च कथं हतः ॥२५॥

पहले ही दे दिये थे ॥१५॥ इससे हम अपने भवन लौट आये और शिव जी अपने धाम को चले गये। इतना कहकर जगत् के नाथ ने शयन किया ॥१६॥ नारद! भगवान् रमापति विष्णु ने उस सुन्दरी के साथ रमण किया। तुलसी को इस बार पहले की अपेक्षा सुख-संभोग के आकर्षण में व्यतिक्रम का अनुभव हुआ। अतः उसने सारी वास्तविकता का अनुमान लगा लिया और पूछा कि—तुम कौन हो ॥१७॥

तुलसी बोली—तुम मायाधीश तो नहीं हो? बताओ, कौन हो? तुमने छल करके मेरा भोग किया है और मेरा सतीत्व नष्ट किया है। अब मैं तुम्हें शाप दे रही हूँ। ब्रह्मन्! तुलसी की बात सुन कर शाप के भय से विष्णु ने लीला से अपनी अत्यन्त मनोहर मूर्ति को धारण कर लिया। रानी ने देखा कि सामने देवों के देव सनातन भगवान् खड़े हैं, जो नूतन मेघ के समान श्यामल, शारदीय कमल की भाँति नेत्रों वाले, करोड़ों कन्दर्प के समान कान्तिमान् करोड़ों रत्नों के भूषणों से भूषित, मन्द मुसकान से युक्त प्रसन्न मुख वाले एवं पीताम्बर से सुशोभित हैं ॥१८-२१॥ उन्हें देखकर वह कामिनी काम के कारण मूर्च्छित हो गयी और चेतना प्राप्त होने पर वह उनसे पुनः बोली ॥२२॥

तुलसी ने कहा—नाथ! तुममें दया नहीं है। तुम पत्थर के समान (कठोर) हो। तुमने छल से मेरा धर्म भंग करके मेरे स्वामी को मार डाला है ॥२२-२३॥ प्रभो, देव! जिस लिए तुम दया रहित पाषाण के समान हो, अतः तुम भूतल पर पाषाण का रूप धारण करो ॥२४॥ जो तुम्हें दयासिन्धु कहते हैं, वे भ्रान्त हैं, इसमें संशय

---

१ ख. ०तो ब्रह्मणा पुरा।

सर्वात्मा त्वं च सर्वज्ञो न जानासि परव्यथाम् । अतस्त्वमेकजनुषि स्वमेव विस्मरिष्यसि ॥२६॥
इत्युक्त्वा च महासाध्वी निपत्य चरणे हरेः । भृशं रुरोद शोकार्ता विललाप मुहुर्मुहुः ॥२७॥
तस्याश्च करुणां दृष्ट्वा करुणामयसागरः । नयेन तां बोधयितुमुवाच कमलापतिः ॥२८॥

श्रीभगवानुवाच

तपस्त्वया कृतं साध्वि मदर्थे भारते चिरम् । त्वदर्थे शङ्खचूडश्च चकार सुचिरं तपः ॥२९॥
कृत्वा त्वां कामिनीं कामी विजहार च तत्फलात् । अधुना दातुमुचितं तवैव तपसः फलम् ॥३०॥
इदं शरीरं त्यक्त्वा च दिव्यं देहं विधाय च । रासे मे रमया सार्धं त्वं रमासदृशी भव ॥३१॥
इयं तनुर्नदीरूपा गण्डकीति च विश्रुता । पूता सुपुण्यदा नृणां पुण्या भवतु भारते ॥३२॥
तव केशसमूहाश्च पुण्यवृक्षा भवन्त्विति । तुलसीकेशसंभूता तुलसीति च विश्रुता ॥३३॥
त्रिलोकेषु च पुष्पानां पत्राणां देवपूजने । प्रधानरूपा तुलसी भविष्यति वरानने ॥३४॥
स्वर्गे मर्त्ये च पाताले वैकुण्ठे मम संनिधौ । भवन्तु तुलसीवृक्षा वराः पुष्पेषु सुन्दरि ॥३५॥
गोलोके विरजातीरे रासे वृन्दावने भुवि । भाण्डीरे चम्पकवने रम्ये चन्दनकानने ॥३६॥
माधवीकेतकीकुन्दमल्लिकामालतीवने । भवन्तु तरवस्तत्र पुष्पस्थानेषु पुण्यदाः ॥३७॥
तुलसीतरुमूले च पुण्यदेशे सुपुण्यदे । अधिष्ठानं तु तीर्थानां सर्वेषां च भविष्यति ॥३८॥

नहीं। तुमने मात्र दूसरे के लिए अपने निरपराध भक्त को क्यों मार डाला? तुम सर्वात्मा एवं सर्वज्ञ हो, फिर भी दूसरे की व्यथा को नहीं जानते हो इसीलिए एक जन्म में तुम अपने को हीं भूल जाओगे ॥२३॥ इतना कहकर वह महासती भगवान् के चरणों में गिरकर रोने लगी और शोकपीड़ित होने से बार-बार विलाप करने लगी ।२७॥ भगवान् कमलापति ने उसकी करुणा देखकर उसे नीति से समझाते हुए कहा ॥२८॥

श्रीभगवान् बोले—सती! तुमने मेरे लिए भारत वर्ष में चिरकाल तक तप किया था, और तुम्हारे लिए शंखचूड ने अति चिरकाल तक तप किया था ॥२९॥ उसके फलस्वरूप उस कामी ने तुम्हें पाया। अब मैंने तुम्हारे तप का फल देना उचित समझा, अतः तुम इस शरीर को छोड़कर दिव्य देह धारण करके मेरी रासलीला में लक्ष्मी के साथ लक्ष्मी के समान ही बनकर रहो ॥३०-३१॥ और यह तुम्हारा शरीर 'गण्डकी' नामक नदी का रूप धारण करेगा, जो भारत में मनुष्यों के लिए पवित्र, अतिपुण्यप्रद और पुण्यस्वरूपा होगी। तुम्हारे केश-समूह पुण्यात्मक वृक्ष होंगे। तुलसी के केश से उत्पन्न होने के कारण उस वृक्ष का नाम 'तुलसी' होगा ॥३२-३३॥ सुमुखी! तीनों लोकों में देव-पूजन के उपयोग में आने वाले सभी पुष्पों और पत्रों में तुलसी प्रधान होगी ॥३४॥ सुन्दरी! तुलसी वृक्ष समस्त पुष्प-वृक्षों में श्रेष्ठ होगा। वह स्वर्ग, मृत्यु, पाताल और मेरे वैकुण्ठ लोक में तथा गोलोक में विरजा के तट पर, वृन्दावन के रास में, पृथिवी पर, भाण्डीर वन में, चम्पक वन में, रम्य चन्दन वन में एवं माधवी, केतकी, कुन्द, मल्लिका तथा मालती के वनों में तथा पुष्प-स्थानों में तुलसी के पुण्यदायक वृक्ष उत्पन्न होंगे ॥३५-३७॥ पवित्र देश तथा अत्यन्त पुण्यदायक स्थान में उत्पन्न तुलसी वृक्ष के मूल भाग में सभी तीर्थों का निवास होगा ॥३८॥

तत्रैव सर्वदेवानां समधिष्ठानमेव च। तुलसीपत्रपतनं प्रायो यश्च वरानने ॥३९॥
स स्नातः सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु दीक्षितः। तुलसीपत्रतोयेन योऽभिषेकं समाचरेत् ॥४०॥
सुधाघटसहस्रेण सा तुष्टिर्न भवेत्समा। या च तुष्टिर्भवेन्नॄणां तुलसीपत्रदानतः ॥४१॥
गवामयुतदानेन यत्फलं लभते नरः। तुलसीपत्रदानेन तत्फलं कार्तिके सति ॥४२॥
तुलसीपत्रतोयं च मृत्युकाले च यो लभेत्। स मुच्यते सर्वपापाद्विष्णुलोकं स गच्छति ।४३॥
नित्यं यस्तुलसीतोयं भुङ्क्ते भक्त्या च यो नरः। स एव जीवन्मुक्तश्च गङ्गास्नानफलं लभेत् ॥४४॥
नित्यं यस्तुलसीं दत्त्वा पूजयेन्मां च मानवः। लक्षाश्वमेधजं पुण्यं लभते नात्र संशयः ॥४५॥
तुलसीं स्वकरे धृत्वा देहे धृत्वा च मानवः। प्राणांस्त्यजति तीर्थेषु विष्णुलोकं स गच्छति ॥४६॥
तुलसीकाष्ठनिर्माणमालां गृह्णाति यो नरः। पदे पदेऽश्वमेधस्य लभते निश्चितं फलम् ॥४७॥
तुलसीं स्वकरे धृत्वा स्वीकारं यो न रक्षति। स याति कालसूत्रं च यावच्चन्द्रदिवाकरौ ॥४८॥
करोति मिथ्या शपथं तुलस्या यो हि मानवः। स याति कुम्भीपाकं च यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥४९॥
तुलसीतोयकणिकां मृत्युकाले च यो लभेत्। रत्नयानं समारुह्य वैकुण्ठं स प्रयाति च ।।५०॥
पूर्णिमायाममायां च द्वादश्यां रविसंक्रमे। तैलाभ्यङ्गे चास्नाते च मध्याह्ने निशि संध्ययोः ॥५१॥
आशौचेऽशुचिकाले वा रात्रिवासान्विते नराः। तुलसीं ये च छिन्दन्ति ते छिन्दन्ति हरेः शिरः ॥५२॥

सुमुखी ! वहाँ समस्त देवों का अधिष्ठान रहता है, जहाँ प्रायः तुलसी-पत्र गिर जाता है ॥३९॥ तुलसीपत्र के जल से जिसने अभिषेक कर लिया, वह मानों समस्त तीर्थों में स्नान कर चुका और समस्त यज्ञों की दीक्षा से दीक्षित हो गया ॥४०॥ भगवान् विष्णु को अमृत भरे सहस्रों घड़ों से उतनी तुष्टि नहीं होती, जितनी मनुष्यों के तुलसीपत्र-दान से होती है ॥४१॥ दश सहस्र गायें दान करने से मनुष्य को जो फल प्राप्त होता है, वह केवल तुलसीपत्र दान करने से प्राप्त हो जाता है ॥४२॥ मृत्यु के समय जो तुलसी पत्र समेत जल का पान करता है, वह समस्त पापों से मुक्त होकर विष्णुलोक को जाता है ॥४३॥ जो मनुष्य नित्य तुलसीपत्र समेत जल का भक्तिपूर्वक पान करता है, वह जीवन्मुक्त होता है और गंगा स्नान का फल प्राप्त करता है ॥४४॥ जो मनुष्य मुझे नित्य तुलसी दान करते हुए मेरी अर्चना करता है, उसे लाख अश्वमेध के पुण्य फल प्राप्त होते हैं, इसमें संशय नहीं ॥४५॥ जो मनुष्य तीर्थों में जाकर अपने हाथ और देह पर तुलसी रख कर प्राण परित्याग करता है, वह विष्णुलोक में चला जाता है ॥४६॥ तुलसी के काष्ठ की माला धारण करनेवाला मनुष्य पग-पग पर अश्वमेध यज्ञ का भागी होता है, इसमें संशय नहीं ॥४७॥ हाथ में तुलसी लेकर स्वीकार किये गये वचन का पालन न करनेवाला मनुष्य चन्द्र-सूर्य के समय तक कालसूत्र में रहता है ॥४८॥ तुलसी रखकर लिये हुए शपथ को मिथ्या करने वाला मनुष्य चौदहों इन्द्रों के समय तक कुम्भीपाक नरक में पड़ा रहता है ॥४९॥ मृत्यु के समय तुलसी-जल का कण भी प्राप्त करनेवाला मनुष्य रत्न निर्मित यान पर बैठकर वैकुण्ठ को जाता है ॥५०॥ पूर्णिमा, अमावास्या, द्वादशी तथा सूर्य की संक्रान्ति के दिन, तेल लगाकर, मध्याह्नकाल, रात्रि और दोनों संध्याओं में तथा अशौच के समय, बिना नहाये-धोये अथवा रात के वस्त्र पहने हुए जो तुलसीपत्र तोड़ते हैं, वे मानों भगवान् विष्णु का शिरश्छेदन करते हैं ॥५१-५२॥ तीन

त्रिरात्रं तुलसीपत्रं शुद्धं पर्युषितं सति। श्राद्धे व्रते वा दाने वा प्रतिष्ठायां सुरार्चने ॥५३॥
भूगतं तोयपतितं यद्दत्तं विष्णवे सति। शुद्धं तु तुलसीपत्रं क्षालनादन्यकर्मणि ॥५४॥
वृक्षाधिष्ठात्री देवी या गोलोके च निरामये। कृष्णेन सार्धं रहसि नित्यं क्रीडां करिष्यति ॥५५॥
नद्यधिष्ठातृदेवी या भारते च सुपुण्यदा। लवणोदस्य पत्नी च मदंशस्य भविष्यति ॥५६॥
त्वं च स्वयं महासाध्वि वैकुण्ठे मम संनिधौ। रमासमा च रासे च भविष्यसि न संशयः ॥५७॥
अहं च शैलरूपेण गण्डकीतीरसंनिधौ। अधिष्ठानं करिष्यामि भारते तव शापतः ॥५८॥
वज्रकीटाश्च कृमयो वज्रदंष्ट्राश्च तत्र वै। तच्छिलाकुहरे चक्रं करिष्यन्ति मदीयकम् ॥५९॥
एकद्वारे चतुश्चक्रं वनमालाविभूषितम्। नवीननीरदश्यामं लक्ष्मीनारायणाभिधम् ॥६०॥
एकद्वारे चतुश्चक्रं नवीननीरदोपमम्। लक्ष्मीजनार्दनं ज्ञेयं रहितं वनमालया ॥६१॥
द्वारद्वये चतुश्चक्रं गोष्पदेन समन्वितम्। रघुनाथाभिधं ज्ञेयं रहितं वनमालया ॥६२॥
अतिक्षुद्रं द्विचक्रं च नवीनजलदप्रभम्। दधिवामनाभिधं ज्ञेयं गृहिणां च सुखप्रदम् ॥६३॥
अतिक्षुद्रं द्विचक्रं च[1] वनमालाविभूषितम्। विज्ञेयं श्रीधरं देवं श्रीप्रदं गृहिणां सदा ॥६४॥
स्थूलं च वर्तुलाकारं रहितं वनमालया। द्विचक्रं स्फुटमत्यन्तं ज्ञेयं दामोदराभिधम् ॥६५॥

रात का बासी तुलसीपत्र श्राद्ध, व्रत, दान,-प्रतिष्ठा और देव-पूजन में शुद्ध माना जाता है ॥५३॥ पृथ्वी पर गिरा हुआ, जल में गिरा हुआ तथा श्रीविष्णु को अर्पित तुलसी-पत्र धो देने पर अन्य कर्म के लिए शुद्ध हो जाता है ॥५४॥ (हे तुलसी !) तुम वृक्षों की अधिष्ठात्री देवी होकर निरामय गोलोक में भगवान् श्रीकृष्ण के साथ एकान्त में नित्य क्रीड़ा करोगी। और तुम हरि के अंश से भारतवर्ष में नदी की अधिष्ठात्री देवी होकर मेरे अंश से उत्पन्न लवण (खार) सागर की अतिपुण्यदा पत्नी बनोगी ॥५५-५६॥ स्वयं तुम महासाध्वी तुलसी रूप से वैकुण्ठ में मेरे निकट निवास करोगी। वहाँ तुम लक्ष्मी के समान सम्मानित होगी। गोलोक के रास में भी तुम उपस्थित रहोगी, इसमें संशय नहीं ॥५७॥ तुम्हारे शाप के कारण भारत में मैं गण्डकी नदी के तट पर पर्वत रूप में रहूँगा ॥५८॥ वहाँ रहने वाले वज्रोपम कीड़े अपने वज्रसदृश दाँतों से काट-काटकर उस पाषाण में मेरे चक्र का चिह्न करेंगे ॥५९॥ उनमें से एक द्वारवाले चार चक्रवाले, वनमाला से विभूषित और नूतन मेघ के समान श्यामल वर्ण-वाले (शालग्राम) का नाम 'लक्ष्मीनारायण' होगा ॥६०॥ एक द्वार, चार चक्र, नवीन मेघ के समान श्यामल और वनमाला रहित (शालग्राम) का नाम लक्ष्मी-जनार्दन होगा ॥६१॥ दो द्वार, चार चक्र, गोपद चिह्न तथा वनमाला से रहित का नाम 'रघुनाथ' होगा ॥६२॥ बहुत छोटे, दो चक्र वाले तथा नूतन मेघ की प्रभा से पूर्ण का नाम 'दधिवामन' होगा, जो गृहस्थ मनुष्यों को सुख प्रदान करेंगे ॥६३॥ बहुत छोटे, दो चक्रवाले और वनमाला से विभूषित का नाम 'श्रीधर' देव होगा, जो गृही जनों को सदा श्री प्रदान करेंगे ॥६४॥ स्थूल, गोल, वनमाला से रहित और दो अत्यन्त स्पष्ट चक्रवाले शालग्राम का नाम 'दामोदर' होगा ॥६५॥ जो मध्यम श्रेणी का वर्तुलाकार हो, जिसमें दो चक्र तथा तरकस और बाण के चिह्न शोभा पाते हों, एवं जिसके ऊपर बाण से कट जाने का चिह्न

1. क. च नवीननीरदोपमम् ।

मध्यमं वर्तुलाकारं द्विचक्रं बाणविक्षतम्। रणरामाभिधं ज्ञेयं शरतूणसमन्वितम्॥६६॥
मध्यमं सप्तचक्रं च च्छत्रतूणसमन्वितम्। राजराजेश्वरं ज्ञेयं राजसंपत्प्रदं नृणाम्॥६७॥
द्विसप्तचक्रं स्थूलं च नवीनजलदप्रभम्। अनन्ताख्यं च विज्ञेयं चतुर्वर्गफलप्रदम्॥६८॥
चक्राकारं द्विचक्रं च सश्रीकं जलदप्रभम्। सगोपदं मध्यमं च विज्ञेयं मधुसूदनम्॥६९॥
सुदर्शनं चैकचक्रं गुप्तचक्रं गदाधरम्। द्विचक्रं हयवक्त्राभं हयग्रीवं प्रकीर्तितम्॥७०॥
अतीव विस्तृतास्यं च द्विचक्रं विकटं सति। नरसिंहाभिधं ज्ञेयं सद्यो वैराग्यदं नृणाम्॥७१॥
द्विचक्रं विस्तृतास्यं च वनमालासमन्वितम्। लक्ष्मीनृसिंहं विज्ञेयं गृहिणां सुखदं सदा॥७२॥
द्वारदेशे द्विचक्रं च सश्रीकं च समं स्फुटम्। वासुदेवं च विज्ञेयं सर्वकामफलप्रदम्॥७३॥
प्रद्युम्नं सूक्ष्मचक्रं च नवीननीरदप्रभम्। सुषिरे छिद्रबहुलं गृहिणां च सुखप्रदम्॥७४॥
द्वे चक्रे चैकलग्ने च पृष्ठे यत्र तु पुष्कलम्। संकर्षणं तु विज्ञेयं सुखदं गृहिणां सदा॥७५॥
अनिरुद्धं तु पीताभं वर्तुलं चातिशोभनम्। सुखप्रदं गृहस्थानां प्रवदन्ति मनीषिणः॥७६॥
शालग्रामशिला यत्र तत्र संनिहितो हरिः। तत्रैव लक्ष्मीर्वसति सर्वतीर्थसमन्विता॥७७॥
यानि कानि च पापानि ब्रह्महत्यादिकानि च। तानि सर्वाणि नश्यन्ति शालग्रामशिलार्चनात्॥७८॥

हो, उस पाषाण को रण में शोभा पानेवाले 'रणराम' की संज्ञा देनी चाहिए॥६६॥ मध्यम, सात चक्रों, छत्र और तरकस से युक्त का नाम 'राजराजेश्वर' समझना चाहिए। वे मनुष्यों को राज्य-सम्पत्ति प्रदान करते हैं॥६७॥ चौदह चक्रवाले स्थूल और नवीनमेघ के समान कान्तिवाले (शालग्राम) का नाम 'अनन्त' समझना चाहिए, जो (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष रूप) चार प्रकार के फल प्रदान करते हैं॥६८॥ चक्राकार, द्विचक्री, श्री से सम्पन्न, मेघ समान प्रभापूर्ण और गो-खुर के चिह्न से सुशोभित मध्यम श्रेणी के पाषाण को 'मधुसूदन' कहते हैं॥६९॥ उसी भाँति एक चक्र को 'सुदर्शन', गुप्त चक्र को 'गदाधर' तथा दो चक्र और अश्वमुख की आकृति से युक्त पाषाण को 'हयग्रीव' कहते हैं॥७०॥ अति विस्तृत मुखवाले, दो चक्रवाले और विकट आकार वाले को 'नरसिंह' कहते हैं, जो मनुष्यों को तुरन्त वैराग्य प्रदान करते हैं॥७१॥ दो चक्र, विस्तृत मुख एवं वनमाला से विभूषित पाषाण का नाम 'लक्ष्मीनृसिंह' है, जो गृही जनों को सदैव सुख प्रदान करते हैं॥७२॥ जो द्वार देश में दो चक्रों से युक्त हो, तथा जिस पर श्री का चिह्न स्पष्ट दिखाई पड़े, ऐसे पाषाण को भगवान् 'वासुदेव' का विग्रह मानना चाहिए। वह विग्रह सकल कामना-दायक है॥७३॥ सूक्ष्मचक्र, नये मेघ की भाँति प्रभा तथा छोटे-छोटे छिद्रों से सुशोभित पाषाण प्रद्युम्न का स्वरूप है, जो गृही मनुष्यों को सुख प्रदान करता है॥७४॥ जिसमें दो चक्र सटे हुए हों और जिसका पृष्ठभाग विशाल हो, उसे 'संकर्षण' कहते हैं, जो गृहस्थों को सदा सुखी रखता है॥७५॥ पीत वर्ण, गोलाकार और अति सुन्दर पाषाण को मनीषी लोग 'अनिरुद्ध' कहते हैं, जो गृहस्थों को सुख प्रदान करते रहते हैं॥७६॥ शालग्राम की शिला जहाँ रहती है, वहाँ भगवान् विष्णु और समस्त तीर्थों समेत लक्ष्मी निवास करती हैं॥७७॥ शालग्राम शिला के पूजन करने से ब्रह्महत्या आदि जितने पाप हैं, सभी नष्ट हो जाते हैं॥७८॥ शालग्राम के छत्राकार होने से राज्य,

छत्राकारे भवेद्राज्यं वर्तुले च महाश्रियः। दुःखं च शकटाकारे शूलाग्रे मरणं ध्रुवम् ॥७९॥
विकृतास्ये च दारिद्रयं पिङ्गले हानिरेव च। लग्नचक्रे भवेद्व्याधिर्विदीर्णे मरणं ध्रुवम् ॥८०॥
व्रतं दानं प्रतिष्ठा च श्राद्धं च देवपूजनम्। शालग्रामशिलायाश्चैवाधिष्ठानात्प्रशस्तकम् ॥८१॥
स स्नातः सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु दीक्षितः। शालग्रामशिलातोयैर्योऽभिषेकं समाचरेत् ॥८२॥
सर्वदानेषु यत्पुण्यं प्रादक्षिण्ये भुवो यथा। सर्वयज्ञेषु तीर्थेषु व्रतेष्वनशनेषु च ॥८३॥
तस्य स्पर्शं च वाञ्छन्ति तीर्थानि निखिलानि च। जीवन्मुक्तो महापूतो भवेदेव न संशयः ॥८४॥
पाठे चतुर्णां वेदानां तपसां करणे सति। तत्पुण्यं लभते नूनं शालग्रामशिलार्चनात् ॥८५॥
शालग्रामशिलातोयं नित्यं भुङ्क्ते च यो नरः। सुरेप्सितं प्रसादं च जन्ममृत्युजराहरम् ॥८६॥
तस्य स्पर्शं च वाञ्छन्ति तीर्थानि निखिलानि च। जीवन्मुक्तो महापूतोऽप्यन्ते याति हरेः पदम् ॥८७॥
तत्रैव हरिणा सार्धमसंख्यं प्राकृतं लयम्। पश्यत्येव हि दास्ये च निर्मुक्तो दास्यकर्मणि ॥८८॥
यानि कानि च पापानि ब्रह्महत्यादिकानि च। तं च दृष्ट्वा भिया यान्ति वैनतेयमिवोरगाः ॥८९॥
तत्पादपद्मरजसा सद्यः पूता वसुंधरा। पुंसां लक्षं तत्पितॄणां निस्तारस्तस्य जन्मनः ॥९०॥
शालग्रामशिलातोयं मृत्युकाले च यो लभेत्। सर्वपापाद्विनिर्मुक्तो विष्णुलोकं स गच्छति ॥९१॥
निर्वाणमुक्तिं लभते कर्मभोगाद्विमुच्यते। विष्णुपादे प्रलीनश्च भविष्यति न संशयः ॥९२॥

गोलाकार होने से महाश्री, शकट (गाड़ी) के आकार से दुःख एवं शूल के अग्रभाग के समान होने से निश्चित ही मृत्यु की प्राप्ति होती है ॥७९॥ विकृत मुख होने से दारिद्र्य, पिंगलवर्ण से हानि, भग्नचक्र से व्याधि, और फटे हुए शालग्राम से निश्चित मरण की प्राप्ति होती है ॥८०॥ व्रत, दान, प्रतिष्ठा, श्राद्ध तथा देवपूजन आदि में शालग्राम शिला के रहने ही से अमित फल मिलता है ॥८१॥ शालग्राम शिला के जल से जो अभिषेक करता है वह समस्त तीर्थों में स्नान कर लेता है और समस्त यज्ञों की दीक्षाओं से दीक्षित हो जाता है ॥८२॥ सकल पदार्थ दान करने और पृथ्वी की प्रदक्षिणा करने का पुण्य उसे प्राप्त होता है तथा सभी यज्ञों, तीर्थों, व्रतों और तपस्याओं के फल का वह अधिकारी समझा जाता है क्योंकि वह जीवन्मुक्त और महापूत होता है इसमें संशय नहीं ॥८३-८४॥ चारों वेदों के पाठ और तप करने का समस्त पुण्य शालग्राम शिला की पूजा करने से निश्चित प्राप्त होता है ॥८५॥ जो नित्य शालग्राम शिला के जल का पान करता है तथा देवों के प्रिय प्रसाद (को भोग लगाकर) भक्षण करता है, वह जन्म-मरण और बुढ़ापे से रहित हो जाता है। उसके स्पर्श के लिए समस्त तीर्थ लालायित रहते हैं। अतः जीवन्मुक्त और अति पवित्र होकर अन्त में विष्णुधाम को जाता है ॥८६-८७॥ वहाँ भगवान् के साथ रहकर उनकी सेवा करता हुआ असंख्य प्राकृत लयों को देखता है ॥८८॥ उसे देखकर ब्रह्महत्या आदि समस्त पाप, उसी तरह भाग खड़े होते हैं जैसे गरुड़ को देखकर साँप पलायन कर जाते हैं ॥८९॥ उसके चरण-कमल के रज से वसुन्धरा सद्यः पवित्र होती है। उसके पितरों की लाख पीढ़ियाँ तर जाती हैं ॥९०॥ मरण-समय शालग्राम शिला का जल प्राप्त करनेवाला मनुष्य समस्त पापों से मुक्त होकर विष्णुलोक को जाता है ॥९१॥ अनन्तर कर्मफल-भोग से मुक्त होकर वह निर्वाण प्राप्त करता है और भगवान् विष्णु के चरण में अत्यन्त लीन हो जाता है, इसमें संशय नहीं ॥९२॥

शालग्रामशिलां धृत्वा मिथ्यावादं वदेत्तु यः। स याति कूर्मदंष्ट्रं च यावद्वै ब्रह्मणो वयः ॥९३॥
शालग्रामशिलां स्पृष्टा स्वीकारं यो न पालयेत्। स प्रयात्यसिपत्रं च लक्षमन्वन्तराधिकम्[1] ॥९४॥
तुलसीपत्रविच्छेदं शालग्रामे करोति यः। तस्य जन्मान्तरे काले स्त्रीविच्छेदो भविष्यति ॥९५॥
तुलसीपत्रविच्छेदं शङ्खे यो हि करोति च। भार्याहीनो भवेत्सोऽपि रोगी च सप्तजन्मसु ॥९६॥
शालग्रामं च तुलसीं शङ्खमेकत्र एव च। यो रक्षति महाज्ञानी स भवेच्छ्रीहरिप्रियः ॥९७॥
सकृदेव हि यो यस्यां वीर्याधानं करोति यः। तद्विच्छेदे तस्य दुःखं भवेदेव परस्परम् ॥९८॥
त्वं प्रिया शङ्खचूडस्य चैकमन्वन्तरावधि। शङ्खेन सार्धं त्वद्भेदः केवलं दुःखदस्तव ॥९९॥
इत्युक्त्वा श्रीहरिस्तां च विरराम च नारद। सा च देहं परित्यज्य दिव्यरूपं दधार ह ॥१००॥
यथा श्रीश्च तथा सा चाप्युवास हरिवक्षसि। प्रजगाम तया सार्धं वैकुण्ठं कमलापतिः ॥१०१॥
लक्ष्मी सरस्वती गङ्गा तुलसी चापि नारद। हरेः प्रियाश्चतस्रश्च बभूवुरीश्वरस्य च ॥१०२॥
सद्यस्तद्देहजाता च बभूव गण्डकी नदी। हरेरंशेन शैलश्च तत्तीरे पुण्यदो नृणाम् ॥१०३॥
कुर्वन्ति तत्र कीटाश्च शिलां बहुविधां मुने। जले पतन्ति या याश्च जलदाभाश्च निश्चितम् ॥१०४॥

इसीलिए शालग्राम शिला रखकर जो मिथ्या भाषण करता है, उसे ब्रह्मा की आयु पर्यन्त कूर्मदंष्ट्र नामक नरक में रहना पड़ता है ॥९३॥ शालग्राम शिला का स्पर्श करके की गई प्रतिज्ञा का पालन न करने वाला मनुष्य एक लाख मन्वन्तरों के समय तक असिपत्र नामक नरक में रहता है ॥९४॥ जो शालग्राम शिला पर से तुलसीपत्र का विच्छेद (वियोग) करता है, जन्मान्तर में उसे स्त्री से वियोग होता है ॥९५॥ इसी प्रकार जो शंख पर से तुलसीपत्र को हटाता है, वह भार्याहीन तथा सात जन्म तक रोगी होता है ॥९६॥ शालग्राम, तुलसी और शंख इन्हें एकत्र रखकर जो इन (तुलसी-पत्रादि) की रक्षा करता है, वह महाज्ञानी एवं श्री हरि का प्रिय पात्र होता है ॥९७॥ जो पुरुष जिस स्त्री में एकबार भी वीर्याधान कर देता है उसके लिए उसका वियोग परस्पर दुःखदायी होता है ॥९८॥ तुम तो एक मन्वन्तर तक शंखचूड की प्रेयसी बनकर रही हो, इसलिए शंख के साथ तुम्हारा वियोग करना केवल तुम्हें दुःख देना है ॥९९॥ भगवान् श्री विष्णु सादर इतना कह कर मौन हो गये और उसने देह त्याग कर दिव्य रूप धारण किया ॥१००॥ श्री की भाँति वह भी भगवान् के वक्षःस्थल पर निवास करने लगी और कमलापति भगवान् उसके साथ वैकुण्ठ चले गये ॥१०१॥ नारद ! इस प्रकार ईश्वर विष्णु की लक्ष्मी, सरस्वती, गंगा और तुलसी ये चार स्त्रियाँ हुईं ॥१०२॥ तुलसी की देह से उसी क्षण गण्डकी नदी उत्पन्न हो गयी। उसी के तट पर भगवान् के अंश से उत्पन्न शैल अवस्थित है, जो मनुष्यों के लिए पुण्यदायक है ॥१०३॥ मुने ! वहाँ कीड़े (पाषाण को काट-काटकर) अनेक प्रकार की शिलायें बना डालते हैं। मेघ के समान कान्तिवाली वे शिलाएँ (कट-कट कर) निश्चित ही जल में गिरती हैं ॥१०४॥

---

१ क. ०रावधि ।

स्थलस्थाः पिङ्गला ज्ञेयाश्चोपतापाद्धरेरिति। इत्येवं कथितं सर्वं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥१०५॥

इति श्रीब्रह्म० महा० प्रकृति० नारदना० तुलस्यु० एकविंशोऽध्यायः ॥२१॥

अथ द्वाविंशोऽध्यायः

नारद उवाच

तुलसी च जगत्पूज्या [1]पूता नारायणप्रिया। तस्याः पूजाविधानं च स्तोत्रं किं न श्रुतं मया ॥१॥
केन पूज्या स्तुता केन पुरा प्रथमतो मुने। तव पूज्या सा बभूव केन वा वद मामहो ॥२॥

सूत उवाच

नारदस्य वचः श्रुत्वा प्रहस्य[2] गरुडध्वजः। कथां कथितुमारेभे पुण्यरूपां पुरातनीम् ॥३॥

श्रीनारायण उवाच

हरिः संप्राप्य तुलसीं रेमे च रमया सह। रमासमां तां सौभाग्यां चकार गौरवेण च ॥४॥
सेहे लक्ष्मीश्च गङ्गा च तस्याश्च नवसंगमम्। सौभाग्यं गौरवं कोपान्न सेहे च सरस्वती ॥५॥

श्री हरि के ताप से स्थलवर्ती शिलायें ललाई लिये भूरे रंग की होती हैं। इस भाँति मैंने सब कुछ बता दिया है अब और क्या सुनना चाहते हो? ॥१०५॥

श्रीब्रह्मवैवर्त महापुराण के प्रकृति-खण्ड में तुलसी-उपाख्यान नामक इक्कीसवाँ अध्याय समाप्त ॥२१॥

अध्याय २२

तुलसी-पूजन आदि का वर्णन

नारद बोले—नारायण की प्रेयसी होने के नाते तुलसी जगत्पूज्या और परम पवित्र हैं। उनकी पूजा का विधान और स्तोत्र मैंने नहीं सुना है, अतः बताने की कृपा करें ॥१॥ मुने ! पूर्वकाल में तुलसी की पूजा एवं स्तुति किन लोगों ने की थी? और वे आपके लिए भी पूजनीया कैसे हो गईं? यह सब बातें मुझे बतायें ॥२॥

सूत बोले—नारद की बातें सुनकर भगवान् नारायण ने हँसकर पुण्यस्वरूपा उस प्राचीन कथा को कहना आरम्भ किया ॥३॥

नारायण बोले—विष्णु ने तुलसी को पाकर उस रमणी के साथ रमण किया और लक्ष्मी के समान उसे आदरपूर्वक सौभाग्य प्रदान किया ॥४॥ तुलसी के नवसंगम, सौभाग्य और गौरव का सहन तो लक्ष्मी एवं गंगा ने हर्षपूर्वक कर लिया किन्तु कोप के कारण सरस्वती न सह सकीं ॥५॥ अनन्तर भगवान् के समीप ही दोनों में

---

१ क. पूज्या नारायणस्य च। २ क. ०स्य मुनिपुंगव।

सा तां जघान कलहे मानिनी हरिसंनिधौ। व्रीडया स्वापमानाच्च साऽन्तर्धानं चकार ह॥६॥
सर्वसिद्धेश्वरी देवी ज्ञानिनी सिद्धयोगिनी। बभूव दर्शनं कोपात्सर्वत्र च हरेरहो॥७॥
हरिर्न दृष्ट्वा तुलसीं बोधयित्वा सरस्वतीम्। तदनुज्ञां गृहीत्वा च जगाम तुलसीवनम्॥८॥
तत्र गत्वा च स्नात्वा च तुलस्या तुलसीं सतीम्। पूजयामास ध्यात्वा तां स्तोत्रं भक्त्या चकार ह॥९॥
लक्ष्मीं मायाकामवाणीबीजपूर्वं दशाक्षरम्। वृन्दावनीति ङेन्तं च वह्निजायान्तमेव च॥१०॥
श्रीं ह्रीं क्लीं ऐं वृन्दावन्यै स्वाहा॥
अनेन कल्पतरुणा मन्त्रराजेन नारद। पूजयेच्च विधानेन सर्वसिद्धिं लभेन्नरः॥११॥
घृतदीपेन धूपेन सिन्दूरचन्दनेन च। नैवेद्येन च पुष्पेण चोपहारेण नारद॥१२॥
हरिस्तोत्रेण तुष्टा सा चाऽऽविर्भूय महीरुहात्। प्रपन्ना चरणाम्भोजे जगाम शरणं शुचिः॥१३॥
वरं तस्यै ददौ विष्णुर्जगत्पूज्या भवेति च। अहं त्वां च धरिष्यामि स्वमूर्ध्नि वक्षसीति च॥१४॥
सर्वे त्वां धारयिष्यन्ति स्वयं मूर्ध्नि सुरादयः। इत्युक्त्वा तां गृहीत्वा च प्रययौ स्वालयं विभुः॥१५॥

नारद उवाच

किं ध्यानं स्तवनं किंवा किंवा पूजाविधिक्रमः। तुलस्याश्च महाभाग तन्मे व्याख्यातुमर्हसि॥१६॥

कलह आरम्भ हुआ, जिसमें सरस्वती ने तुलसी पर आक्रमण कर दिया। लज्जा और अपने अपमान के कारण तुलसी अन्तर्हित हो गईं॥६॥ ज्ञानसम्पन्ना देवी तुलसी सिद्धयोगिनी एवं सर्वसिद्धेश्वरी थीं। अतः उन्होंने कोप के कारण श्रीहरि की आँखों से अपने को सर्वत्र ओझल कर लिया॥७॥ भगवान् ने सरस्वती को भलीभाँति समझाया और तुलसी को वहाँ न देखकर सरस्वती की आज्ञा से तुलसीवन की यात्रा की॥८॥ वहाँ जाकर स्नान करके भक्तिपूर्वक तुलसी की पूजा की और उसका ध्यान करते हुए स्तोत्र का निर्माण किया॥९॥ लक्ष्मीबीज (श्रीं) मायाबीज (ह्रीं) कामबीज (क्लीं) और वाणीबीज (ऐं)—इन बीजों का पूर्व में उच्चारण करके 'वृन्दावनी' इस शब्द के अन्त में (ङे) विभक्ति लगायी और अन्त में वह्निजाया (स्वाहा) का प्रयोग करके 'श्रीं ह्रीं क्लीं ऐं वृन्दावन्यै स्वाहा' इस दशाक्षर मंत्र का उच्चारण किया। नारद! यह मंत्र राजकल्पतरु है। विधान से इसके द्वारा पूजन करने से मनुष्य को समस्त सिद्धि प्राप्त होती है॥१०-११॥ नारद! घृत का दीपक, धूप, सिन्दूर, चन्दन, नैवेद्य और पुष्पोपहार द्वारा पूजन करने के उपरान्त भगवान् ने तुलसी की स्तुति की। अनन्तर वे प्रसन्न होकर उसी (तुलसी) वृक्ष से प्रकट हो गयीं एवं भगवान् के चरण-कमल की शरणागत बनीं॥१२-१३॥ भगवान् विष्णु ने उन्हें वरदान दिया 'तुम जगत् की पूज्या होगी और मैं तुम्हें अपने शिर तथा वक्षःस्थल पर धारण करूँगा एवं सभी देवगण स्वयं तुम्हें अपने शिर पर धारण करेंगे।' इतना कहकर भगवान् तुलसी को साथ लेकर चले गये॥१४-१५॥

नारद बोले—महाभाग! तुलसी का ध्यान, स्तुति और पूजाविधान बताने की कृपा करें॥१६॥

श्रीनारायण उवाच

अन्तर्हितायां तस्यां च गत्वा च तुलसीवनम्। हरिः संपूज्य तुष्टाव तुलसीं विरहातुरः॥१७॥

श्रीभगवानुवाच

वृन्दारूपाश्च वृक्षाश्च यदैकत्र भवन्ति च। विदुर्बुधास्तेन वृन्दा मत्प्रियां तां भजाम्यहम्॥१८॥
पुरा बभूव या देवी ह्यादौ वृन्दावने वने। तेन वृन्दावनी ख्याता सुभगां तां भजाम्यहम्॥१९॥
असंख्येषु च विश्वेषु पूजिता या निरन्तरम्। तेन विश्वपूजिताख्यां जगत्पूज्यां भजाम्यहम्॥२०॥
असंख्यानि च विश्वानि पवित्राणि यया सदा। तां विश्वपावनीं देवीं विरहेण स्मराम्यहम्॥२१॥
देवा न तुष्टाः पुष्पाणां समूहेन यया विना। तां पुष्पसारां शुद्धां च द्रष्टुमिच्छामि शोकतः॥२२॥
विश्वे यत्प्राप्तिमात्रेण भक्त्यानन्दो भवेद्ध्रुवम्। नन्दिनी तेन विख्याता सा प्रीता भविता हि मे॥२३॥
यस्या देव्यास्तुला नास्ति विश्वेषु निखिलेषु च। तुलसी तेन विख्याता तां यामि शरणं प्रियाम्॥२४॥
कृष्णजीवनरूपा या शश्वत्प्रियतमा सती। तेन कृष्णजीवनीति मम रक्षतु जीवनम्॥२५॥
इत्येवं स्तवनं कृत्वा तत्र तस्थौ रमापतिः। ददर्श तुलसीं साक्षात्पादपद्मे नतां सतीम्॥२६॥
रुदतीमभिमानेन मानिनीं मानपूजिताम्। प्रियां दृष्ट्वा प्रियः शीघ्रं वासयामास वक्षसि॥२७॥
भारत्याज्ञां गृहीत्वा च स्वालयं च ययौ हरिः। भारत्या सह तत्प्रीतिं कारयामास सत्वरम्॥२८॥

नारायण बोले—तुलसी के छिप जाने पर भगवान् ने तुलसी वन में जाकर वियोग दुःख का अनुभव करते हुए, तुलसी की पूजा एवं स्तुति की॥१७॥

भगवान् बोले—जब वृन्दा (तुलसी रूप) वृक्ष एकत्र हो जाते हैं, तब मेरी प्रेयसी (तुलसी) को बुध लोग 'वृन्दा' कहते हैं। मैं उसकी सेवा कर रहा हूँ॥१८॥ पूर्व समय में जो देवी वृन्दावन में प्रकट हुई थी, अतएव जिसे 'वृन्दावनी' कहते हैं, उस सौभाग्यवती देवी की मैं सेवा कर रहा हूँ॥१९॥ असंख्य विश्वों में वह निरन्तर पूजित होती हैं, इसीलिए उसे 'विश्वपूजिता' कहते हैं। मैं उस जगत्पूज्या की पूजा कर रहा हूँ॥२०॥ जिससे असंख्य विश्व सदैव पवित्र रहते हैं, उस 'विश्वपावनी' देवी का मैं विरहातुर होकर स्मरण करता हूँ॥२१॥ जिसके बिना देवगण पुष्पसमूह पाने पर भी प्रसन्न नहीं होते हैं, उस शुद्ध, पुण्यसार को मैं देखने के लिए चिन्तित हूँ॥२२॥ विश्व में जिसकी प्राप्ति मात्र से भक्त परम आनन्दित हो जाता है, इसीलिए 'नन्दिनी' नाम से जिसकी प्रसिद्धि है, वह भगवती तुलसी मुझ पर प्रसन्न हो जाय॥२३॥ प्रिये! समस्त विश्व में जिसकी तुलना नहीं हैं; इसीलिए जिसका नाम 'तुलसी' पड़ा है, उस प्रिया की शरण में मैं जाता हूँ॥२४॥ जो कृष्ण की जीवनस्वरूपा एवं नित्य प्रियतमा है, वह 'कृष्णजीवनी' देवी मेरे जीवन की रक्षा करे॥२५॥ इस प्रकार उनकी स्तुति करके भगवान् वहीं अवस्थित हो गए। अनन्तर उन्होंने अपने चरण-कमलों में विनम्र भाव से स्थित तुलसी को देखा, जो अभिमान वश रुदन कर रही थी। उस मानिनी एवं मानपूजिता प्रिया को देखकर भगवान् ने तुरन्त उन्हें अपनी छाती से लगा लिया॥२६-२७॥ फिर सरस्वती की आज्ञा से वे तुलसी को अपने भवन में ले गये और उसी समय सरस्वती के साथ उनकी मैत्री करायी॥२८॥ अनन्तर विष्णु ने उन्हें वरदान दिया—देवि! तुम विश्वपूज्या होकर सबकी

वरं विष्णुर्ददौ तस्यै विश्वपूज्या भवेति च। शिरोधार्या च सर्वेषां वन्द्या मान्या ममेति च ॥२९॥
विष्णोर्वरेण सा देवी परितुष्टा बभूव ह। सरस्वती तामाश्लिष्य वासयामास सन्निधौ ॥३०॥
लक्ष्मीर्गङ्गा सस्मिता तां समाश्लिष्य च नारद। गृहं प्रवेशयामास विनयेन सतीं मुदा ॥३१॥
वृन्दां वृन्दावनीं विश्वपावनीं विश्वपूजिताम्। पुष्पसारां नन्दिनीं च तुलसीं कृष्णजीवनीम् ॥३२॥
एतन्नामाष्टकं चैतत्स्तोत्रं नामार्थसंयुतम्। यः पठेत्तां च संपूज्य सोऽश्वमेधफलं लभेत् ॥३३॥
कार्तिकीपूर्णिमायां च तुलस्या जन्म मङ्गलम्। तत्र तस्याश्च पूजा च विहिता हरिणा पुरा ॥३४॥
तस्यां यः पूजयेत्तां च भक्त्या च विश्वपावनीम्। सर्वपापाद्विनिर्मुक्तो विष्णुलोकं स गच्छति ॥३५॥
कार्तिके तुलसीपत्रं विष्णवे यो ददाति च। गवामयुतदानस्य फलमाप्नोति निश्चितम् ॥३६॥
अपुत्रो लभते पुत्रं प्रियाहीनो लभेत्प्रियाम्। बन्धुहीनो लभेद्बन्धुं स्तोत्रस्मरणमात्रतः ॥३७॥
रोगी प्रमुच्यते रोगाद्बद्धो मुच्येत बन्धनात्। भयान्मुच्येत भीतस्तु[1] पापान्मुच्येत पातकी ॥३८॥
इत्येवं कथितं स्तोत्रं ध्यानं पूजाविधिं शृणु। त्वमेव देव जानासि काण्वशाखोक्तमेव च ॥३९॥
यद्वक्ष्ये पूजयेत्तां च भक्त्या चाऽऽवाहनं विना। उपचारैः षोडशभिर्ध्यानं पातकनाशनम् ॥४०॥
तुलसीं पुष्पसारां च सतीं पूज्यां मनोहराम्। कृत्स्नपापेध्मदाहाय ज्वलदग्निशिखोपमाम् ॥४१॥

शिरोधार्या और मेरी भी वन्द्या मान्या होओ॥२९॥ इस प्रकार भगवान् विष्णु के वरदान को पाकर वह देवी अत्यन्त प्रसन्न हुईं और सरस्वती ने उनका आलिंगन कर अपने समीप बैठाया॥३०॥ नारद! लक्ष्मी और गंगा ने भी मन्द मुसकान के साथ विनयपूर्वक साध्वीं तुलसी का हाथ पकड़कर उन्हें भवन में प्रवेश कराया॥३१॥ वृन्दा, वृन्दावनी, विश्वपावनी, विश्वपूजिता, पुष्पसारा, नन्दिनी, तुलसी और कृष्णजीवनी—ये तुलसी देवी के आठ नाम हैं। यह सार्थक नामावली स्तोत्र के रूप में परिणत है। जो पुरुष तुलसी की पूजा करके इस नामाष्टक का पाठ करता है, उसे अश्वमेध का फल प्राप्त होता है॥३२-३३॥ कार्तिक की पूर्णिमा के दिन तुलसी का मांगलिक जन्म हुआ था और भगवान् ने सर्वप्रथम उसी दिन उनकी पूजा की थी॥३४॥ अतः जो उस पूर्णिमा के दिन भक्ति-पूर्वक उस विश्वपावनी की पूजा करता है, वह समस्त पापों से मुक्त होकर विष्णुलोक चला जाता है॥३५॥ कार्तिक मास में जो भगवान् विष्णु को तुलसी-पत्र अर्पित करता है, उसे निश्चित रूप से दश सहस्र गोदान का फल प्राप्त होता है॥३६॥ उनके स्तोत्र के स्मरण मात्र से पुत्रहीन को पुत्र, स्त्रीरहित को स्त्री और बन्धुहीन को बन्धु की प्राप्ति होती है॥३७॥ एवं रोगी रोग से मुक्त हो जाता है, बंधन में पड़ा हुआ व्यक्ति बन्धन-मुक्त होता है और भयभीत प्राणी भय से तथा पातकी पातक से मुक्त होता है॥३८॥ इस प्रकार स्तोत्र तुम्हें बता दिया, अब उनका ध्यान और पूजाविधान बता रहा हूँ, सुनो! तुम भी तो वेद जानते ही हो—उसमें काण्वशाखोक्त विधान तुम्हें बता रहा हूँ—बिना आवाहन किये ही तुलसीवृक्ष में भक्तिपूर्वक षोडशोपचार द्वारा तुलसी की पूजा करके उनका पापनाशक ध्यान इस प्रकार करना चाहिए—तुलसी, पुष्पों का साररूप है। वह सती, पूज्य, मनोहर और समस्त पापरूप ईंधन को जलाने के लिए प्रज्वलित अग्निरूप है॥३९-४१॥ मुने! इस देवी की तुलना पुष्पों अथवा

---

१ क. ०स्तु मुच्येताऽऽपन्न आपदः।

पुष्पेषु तुलनाऽप्यस्या [1]नासीद्देवीषु वा मुने। पवित्ररूपा सर्वासु तुलसी सा च कीर्तिता ॥४२॥
शिरोधार्यां च सर्वेषामीप्सितां विश्वपावनीम्। जीवन्मुक्तां मुक्तिदां च भजे तां हरिभक्तिदाम् ॥४३॥
इति ध्यात्वा च संपूज्य स्तुत्वा च प्रणमेद्बुधः। उक्तं तुलस्युपाख्यानं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥४४॥

इति श्रीब्रह्म० महा० प्रकृति० नारदना० तुलस्युपाख्यानं
नाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥२२॥

अथ त्रयोविंशोऽध्यायः

नारद उवाच

तुलस्युपाख्यानमिदं श्रुतमीश सुधोपमम्। यत्तु सावित्र्युपाख्यानं तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥१॥
पुरा येन समुद्भूता सा श्रुता च श्रुतिप्रसूः। केन वा पूजिता देवी प्रथमे कैश्च वाऽपरे ॥२॥

श्रीनारायण उवाच

ब्रह्मणा वेदजननी पूजिता प्रथमे मुने। द्वितीये च देवगणैस्तत्पश्चाद्विदुषां गणैः ॥३॥

देवियों से नहीं हो सकी। इसीलिए उन सबमें पवित्ररूपा इन देवी को तुलसी कहा गया ॥४२॥ यह सभी लोगों की शिरोधार्या, अभीष्ट, विश्व को पावन करने वाली, जीवन्मुक्त, मुक्ति और हरिभक्ति देनेवाली हैं, अतः मैं उनकी सेवा कर रहा हूँ। इस प्रकार उनका ध्यान, पूजन और स्तुति करके विद्वान् लोग उन्हें प्रणाम करें। तुलसी का उपाख्यान तुम्हें सुना दिया है। अब और क्या सुनना चाहते हो? ॥४३-४४॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के दूसरे प्रकृतिखण्ड में तुलसी-उपाख्यान वर्णन नामक
बाईसवाँ अध्याय समाप्त ॥२२॥

अध्याय २३

सावित्री देवी की पूजा-स्तुति का विधान

नारद बोले—प्रभो! तुलसी का यह सुधा-मधुर उपाख्यान तो मैंने आपके द्वारा सुन लिया। अब आप सावित्री का उपाख्यान सुनाने की कृपा करें ॥१॥ देवी सावित्री वेदों की जननी हैं, ऐसा सुना गया है। ये देवी सर्वप्रथम किससे प्रकट हुईं? सबसे पहले इनकी किसने पूजा की और बाद में किन लोगों ने? ॥२॥

नारायण बोले—मुने! सर्वप्रथम ब्रह्मा ने उस वेदमाता की पूजा की, अनन्तर देवों ने और उनके पश्चात् विद्वज्जनों ने उनकी पूजा की ॥३॥

---

१ क. नास्ति वेदेषु वा।

तथा चाश्वपतिः पूर्वं पूजयामास भारते। तत्पश्चात्पूजयामासुर्वर्णाश्चत्वार एव च॥४॥

नारद उवाच

को वा सोऽश्वपतिर्ब्रह्मन्केन वा तेन पूजिता। सर्वपूज्या च सावित्री तन्मे व्याख्यातुमर्हसि॥५॥

श्रीनारायण उवाच

मद्रदेशे महाराजो बभूवाश्वपतिर्मुने। वैरिणां बलहर्ता च मित्राणां दुःखनाशनः॥६॥
आसीत्तस्य महाराज्ञी[1] महिषी धर्मचारिणी। मालतीति च साऽऽख्याता यथा लक्ष्मीर्गदाभृतः॥७॥
सा च राज्ञी महासाध्वी वसिष्ठस्योपदेशतः। चकाराऽऽराधनं भक्त्या सावित्र्याश्चैव नारद॥८॥
प्रत्यादेशं न सा प्राप महिषी न ददर्श ताम्। गृहं जगाम सा दुःखाद्धृदयेन विदूयता॥९॥
राजा तां दुःखितां दृष्ट्वा बोधयित्वा नयेन वै। सावित्र्यास्तपसे भक्त्या जगाम पुष्करं तदा॥१०॥
तपश्चचार तत्रैव संयतः शतवत्सरम्। न ददर्श च सावित्रीं प्रत्यादेशो बभूव ह॥११॥
शुश्रावाऽऽकाशवाणीं च नृपेन्द्रश्चाशरीरिणीम्। गायत्रीदशलक्षं च जपं कुर्विति नारद॥१२॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्र प्राजगाम पराशरः। प्रणनाम नृपस्तं च मुनिर्नृपमुवाच ह॥१३॥

भारतवर्ष में सर्वप्रथम राजा अश्वपति ने उनकी पूजा की। उनके उपरान्त (ब्राह्मणादि) चारों वर्ण उनकी आराधना में संलग्न हो गए॥४॥

नारद बोले—ब्रह्मन्! वह अश्वपति कौन है? और कैसे उसने सर्वपूज्या सावित्री की प्रथम पूजा की? मुझे बताने की कृपा करें॥५॥

नारायण बोले—मुने! महाराज अश्वपति मद्रदेश के अधीश्वर थे। वैरियों के बल के एवं मित्रों के दुःख के नाशक थे॥६॥ उनकी धर्मशीला महारानी का नाम मालती था। वह महाराज के साथ उसी तरह शोभा पाती थी जैसे विष्णु के साथ लक्ष्मी॥७॥ नारद! उस महासती रानी ने वसिष्ठ जी के उपदेश से भक्तिपूर्वक सावित्री की आराधना की॥८॥ किन्तु उस महारानी को देवी की ओर से न तो प्रत्यादेश मिला और न देवी ने साक्षात् दर्शन ही दिये। अतः हार्दिक दुःख प्रकट करती हुई वह अपने घर चली गयी॥९॥ राजा ने उसे दुःखी देखकर नीति द्वारा समझाया और स्वयं उसी सावित्री की भक्तिपूर्वक तपस्या करने के लिए पुष्कर चला गया॥१०॥ वहाँ पहुँचकर उसने संयत होकर सौ वर्षों तक तप किया, उससे उसे सावित्री का दर्शन तो नहीं हुआ, किन्तु आदेश प्राप्त हो गया॥११॥ नारद! उस समय राजा ने आकाशवाणी सुनी कि—'गायत्री का दस लाख जप करो।'॥१२॥ उसी बीच वहाँ पराशर मुनि आ गये। राजा ने उन्हें प्रणाम किया। अनंतर महर्षि ने राजा से कहा॥१३॥

---

१ ख. महाराज्ञो।

पराशर उवाच

सकृज्जपश्च गायत्र्याः पापं दिनकृतं हरेत्। दशधा प्रजपो नृणां दिवारात्र्यघमेव च ॥१४॥
शतधा च जपाच्चैवं पापं मासार्जितं परम्। सहस्रधा जपाच्चैवं कल्मषं वत्सरार्जितम् ॥१५॥
लक्षं जन्मकृतं पापं दशलक्षं त्रिजन्मनः। सर्वजन्मकृतं पापं शतलक्षे विनश्यति ॥१६॥
करोति मुक्तिं विप्राणां जपो दशगुणस्ततः। करं सर्पफणाकारं कृत्वा[1] तद्रन्ध्रमुद्रितम्। ।१७॥
आनम्रमूर्धमचलं प्रजपेत्प्राङमुखो द्विजः। अनामिकामध्यदेशादधो वामक्रमेण च ॥१८॥
तर्जनीमूलपर्यन्तं जपस्यैष क्रमः करे। [2]श्वेतपङ्कजबीजानां स्फाटिकानां च संस्कृताम् ॥१९॥
कृत्वा वा मालिकां राजञ्जपेत्तीर्थे सुरालये। संस्थाप्य मालामश्वत्थपत्रसप्तसु संयतः ॥२०॥
कृत्वा गोरोचनाक्तां च गायत्र्या स्नापयेत्सुधीः। गायत्रीशतकं तस्यां जपेच्च विधिपूर्वकम् ॥२१॥
अथवा पञ्चगव्येन स्नाता माला च संस्कृता। अथ गङ्गोदकेनैव स्नाता वाऽतिसुसंस्कृता ॥२२॥
एवंक्रमेण राजर्षे दशलक्षं जपं कुरु। साक्षाद्द्रक्ष्यसि सावित्रीं त्रिजन्मपातकक्षयात् ॥२३॥
नित्यं नित्यं त्रिसंध्यं च करिष्यसि दिने दिने। मध्याह्ने चापि सायाह्ने प्रातरेव शुचिः सदा ॥२४॥

पराशर बोले—गायत्री का एक बार जप करने से दिनभर का पाप नष्ट होता है, और दश बार जप करने से मनुष्यों के दिनरात्रि के पाप नष्ट होते हैं॥१४ ॥ सौ बार जप करने से एक मास का पाप और सहस्र बार जप करने से एक वर्ष का पाप विनष्ट होता है॥१५॥ एक लाख जप करने से जन्मभर का पाप और दस लाख जप करने से तीन जन्मों के पाप नष्ट होते हैं। उसी प्रकार सौ लाख (१ करोड़) जप करने से सभी जन्मों के पाप नष्ट होते हैं॥१६॥ और उससे दस गुने जप करने से ब्राह्मणों को मुक्ति प्राप्त होती है। द्विज को चाहिए कि वह पूर्वाभिमुख होकर बैठे। हाथ को सर्प के फण के समान कर ले। वह हाथ ऊर्ध्वमुख हो और ऊपर की ओर से कुछ-कुछ मुद्रित (मुँदा सा) रहे। उसे किंचित् झुकाये हुए स्थिर रखे। अनामिका के बिचले पर्व से आरंभ करके नीचे और बायें होते हुए तर्जनी के मूल भाग तक अंगूठे से स्पर्शपूर्वक जप करे। हाथ में जप करने का यही क्रम है। राजन्! श्वेत कमल के बीज या स्फटिक की संस्कारयुक्त माला बनाकर तीर्थ या देवालय में जप करे। उसके पूर्व पीपल के सात पत्तों पर माला को संयतभाव से रखकर उसे गोरोचन से अनुलिप्त करे। फिर गायत्री के उच्चारणपूर्वक विद्वान् माला को स्नान कराये। अनंतर विधिपूर्वक उस पर गायत्री का सौ बार जप करे॥१७-२१॥ अथवा पञ्चगव्य द्वारा गंगाजल से स्नान करा देने पर भी माला का संस्कार हो जाता है॥२२॥ राजर्षे! इस क्रम से गायत्री का दस लाख जप करने से तीनों जन्मों के पातक विनष्ट हो जायेंगे जिससे तुम्हें सावित्री का साक्षात् दर्शन प्राप्त होगा॥२३॥ इस प्रकार प्रतिदिन नित्य तीनों—प्रातः मध्याह्न और सायं—संध्याओं में पवित्र होकर सदैव जप करना चाहिए॥२४॥ क्योंकि संध्या (कर्म) रहित पुरुष अपवित्र होता है, इसीलिए सभी कर्मों में वह अयोग्य

---

१ ख. ०त्वा तु ऊर्ध्वमु०। २ क. ०तचम्पकवर्णाभां स्फा ०।

संध्याहीनोऽशुचिर्नित्यमनर्हः सर्वकर्मसु। यदह्ना कुरुते कर्म न तस्य फलभाग्भवेत् ॥२५॥
नोपतिष्ठति यः पूर्वां नोपास्ते यश्च पश्चिमाम्। स शूद्रवद्बहिष्कार्यः सर्वस्माद्द्विजकर्मणः॥२६॥
यावज्जीवनपर्यन्तं यस्त्रिसंध्यं करोति च। स च सूर्यसमो विप्रस्तेजसा तपसा सदा॥२७॥
तत्पादपद्मरजसा सद्यः पूता वसुंधरा। जीवन्मुक्तः स तेजस्वी संध्यापूतो हि यो द्विजः॥२८॥
तीर्थानि च पवित्राणि तस्य स्पर्शनमात्रतः। ततः पापानि यान्त्येव वैनतेयादिवोरगाः॥२९॥
न गृह्णन्ति सुराः पूजां पितरः पिण्डतर्पणम्। स्वेच्छया चरतश्चैव त्रिसंध्यरहितस्य च॥३०॥
विष्णुमन्त्रविहीनश्च त्रिसंध्यरहितो द्विजः। एकादशीविहीनश्च विषहीनो यथोरगः॥३१॥
हरेरनैवेद्यभोजी धावको वृषवाहकः। शूद्रान्नभोजी विप्रश्च विषहीनो यथोरगः॥३२॥
शवदाही च शूद्राणां यो विप्रो वृषलीपतिः। शूद्राणां सूपकारश्च विषहीनो यथोरगः ॥३३॥
शूद्राणां च प्रतिग्राही शूद्रयाजी च यो द्विजः। असिजीवी मषीजिवी विषहीनो यथोरगः॥३४॥
यो विप्रोऽवीरान्नभोजी ऋतुस्नातान्नभोजकः। भगजीवी वार्धुषिको विषहीनो यथोरगः ॥३५॥
यः कन्याविक्रयी विप्रो यो हरेर्नामविक्रयी। यो विद्याविक्रयी भूप विषहीनो यथोरगः॥३६॥
सूर्योदये योऽन्नभोजी मत्स्यभोजी च यो द्विजः। शिलापूजादिरहितो विषहीनो यथोरगः॥३७॥

कहा जाता है। और दिन में वह जो कर्म करता है, उसका फल भी उसे नहीं होता है॥२५॥ जो ब्राह्मण प्रातःकाल और सायंकाल में संध्योपासन नहीं करता है, वह समस्त ब्राह्मणोचित कर्मों से बहिष्कृत कर देने योग्य है॥२६॥ जीवनपर्यन्त त्रिकाल संध्या करने वाले द्विज में तप के प्रभाव से सूर्य के समान तेजस्विता आ जाती है॥२७॥ ऐसे द्विज के चरणकमल के रज से यह पृथ्वी सद्यः पवित्र हो जाती है। संध्या से पवित्र होनेवाला ब्राह्मण तेजस्वी और जीवन्मुक्त होता है॥२८॥ उसके स्पर्शमात्र से तीर्थ पवित्र हो जाते हैं। उसके समस्त पाप उसी तरह भाग खड़े होते हैं जैसे गरुड़ के भय से साँप॥२९॥ तीनों संध्याओं से रहित तथा मनमाना आचरण करने वाले द्विज की पूजा देवगण स्वीकार नहीं करते हैं और पितर लोग उसके द्वारा किये गये पिण्ड और तर्पण नहीं स्वीकारते हैं। ॥३०॥ भगवान् विष्णु के मन्त्र (दीक्षा) से हीन, तीनों संध्याओं से रहित और एकादशी व्रत न करने वाला ब्राह्मण विषहीन सर्प की भाँति होता है॥३१॥ भगवान् विष्णु को बिना समर्पण किए भोजन करनेवाला, धावक (हरकारा), बैल की सवारी करने वाला और शूद्रों का अन्न खाने वाला ब्राह्मण विषहीन सर्प की भाँति होता है॥३२॥ शूद्रों के शवों को जलाने वाला, शूद्र जाति की स्त्री का पति और शूद्रों का भोजन बनाने वाला ब्राह्मण विषहीन सर्प की भाँति होता है॥३३॥ शूद्रों से दान लेने वाला, उनके यहाँ यज्ञ कराने वाला, असि (तलवार) से जीविका चलाने वाला और पटवारी का काम करने वाला ब्राह्मण विषहीन साँप के समान होता है॥३४॥ पतिपुत्रहीन विधवा स्त्री का अन्न खानेवाला, ऋतुस्नाता स्त्री का अन्न खानेवाला, स्त्री को व्यभिचारिणी बनाकर जीविका चलाने वाला एवं सूदखोर ब्राह्मण विषहीन साँप के समान होता है॥३५॥ राजन्! कन्याविक्रय, भगवान् के नाम का विक्रय और विद्याविक्रय करने वाला ब्राह्मण विषहीन साँप के समान होता है॥३६॥ सूर्य के उदय-काल में भोजन करने वाला, मछली खाने वाला और (शालग्राम) शिला की पूजा आदि से रहित ब्राह्मण विषहीन साँप के समान होता

इत्युक्त्वा च मुनिश्रेष्ठः सर्वं पूजाविधिक्रमम्। तमुवाच च सावित्र्या ध्यानादिकमभीप्सितम् ॥३८॥
दत्त्वा सर्वं नृपेन्द्राय प्रययौ स्वालयं मुनिः। राजा संपूज्य सावित्रीं ददर्श वरमाप च ॥३९॥

नारद उवाच

किंवा ध्यानं च सावित्र्याः किंवा पूजाविधानकम्। स्तोत्रं मन्त्रं च किं दत्त्वा प्रययौ स पराशरः ॥४०॥
नृपः केन विधानेन संपूज्य श्रुतिमातरम्। वरं च किंवा संप्राप वद सोऽश्वपतिर्नृपः ॥४१॥

श्रीनारायण उवाच

ज्येष्ठे [1]शुक्लत्रयोदश्यां शुद्धे काले च संयतः। व्रतमेतच्चतुर्दश्यां व्रती भक्त्या समाचरेत् ॥४२॥
व्रतं चतुर्दशाब्दं च द्विसप्तफलसंयुतम्। दत्त्वा द्विसप्तनैवेद्यं पुष्पधूपादिकं तथा ॥४३॥
वस्त्रं यज्ञोपवीतं च भोज्यं च विधिपूर्वकम्। संस्थाप्य मङ्गलघटं फलशाखासमन्वितम् ॥४४॥
गणेशं च दिनेशं च वह्निं विष्णुं शिवं शिवाम्। संपूज्य पूजयेदिष्टं घट आवाहिते मुने ॥४५॥
शृणु ध्यानं च सावित्र्याश्चोक्तं माध्यंदिने च यत्। स्तोत्रं पूजाविधानं च मन्त्रं च सर्वकामदम् ॥४६॥
तप्तकाञ्चनवर्णाभां ज्वलन्तीं ब्रह्मतेजसा। ग्रीष्ममध्याह्नमार्तण्डसहस्रसमसुप्रभाम् ॥४७॥
ईषद्धास्यप्रसन्नास्यां रत्नभूषणभूषिताम्। वह्निशुद्धांशुकाधानां भक्तानुग्रहकारिकाम् ॥४८॥

है ॥३७॥ इतना कहकर मुनिश्रेष्ठ ने उन्हें समस्त पूजाविधान का क्रम और सावित्री के अभीष्ट ध्यान आदि बता दिये ॥३८॥ इस भाँति मुनि ने राजेन्द्र को सब कुछ देकर अपने घर की यात्रा की और अनन्तर राजा ने भी सावित्री की पूजा करके उनका दर्शन और वरदान प्राप्त किया ॥३९॥

नारद बोले—सावित्री का वह कौन ध्यान, कौन पूजाविधान और कौन स्तोत्र और कौन मंत्र हैं जिन्हें देकर पराशर चले गये ॥४०॥ राजा अश्वपति ने किस विधान से वेदमाता (सावित्री की) पूजा की और उसने कौन-सा वरदान प्राप्त किया? बताने की कृपा करें ॥४१॥

नारायण बोले—ज्येष्ठ मास की कृष्ण त्रयोदशी तथा चतुर्दशी के दिन व्रत करके भक्तिपूर्वक व्रती को शुद्ध समय में भक्ति के साथ सावित्री की पूजा करनी चाहिए ॥४२॥ चौदह वर्ष तक इस व्रत का पालन करते हुए चौदह फल, चौदह नैवेद्य, पुष्प, धूपादि, वस्त्र, यज्ञोपवीत और भोज्य वस्तु समर्पित करना चाहिए। अनन्तर फल, पल्लव-युत मंगलकलश की स्थापना करके गणेश, सूर्य, अग्नि, विष्णु, शिव और पार्वती की पूजा करे। उस कलश पर अपनी इष्टदेवी की आवाहनपूर्वक अर्चना करे। हे मुने! यजुर्वेद की माध्यन्दिनी शाखा के अनुसार सावित्री का ध्यान, स्तोत्र, पूजाविधान और समस्त कामनाओं को सफल करने वाला मंत्र बता रहा हूँ, सुनो! ॥४३-४६॥ वह देवी तपाये हुए सुवर्ण की भाँति कान्ति वाली, ब्रह्मतेज से उद्दीप्त, ग्रीष्मकालीन मध्याह्न के सहस्रों सूर्य के समान अति-प्रभापूर्ण, मन्द मुसकान समेत प्रसन्न मुख, रत्नों के आभूषणों से भूषित, अग्निविशुद्ध वस्त्र धारण किये हुई, भक्त

---

१ ख. कृष्ण०।

सुखदां मुक्तिदां शान्तां कान्तां च जगतां विधेः। सर्वसंपत्स्वरूपां च प्रदात्रीं सर्वसंपदाम्॥४९॥
वेदाधिष्ठातृदेवीं च वेदशास्त्रस्वरूपिणीम्। वेदे बीजस्वरूपां च भजे त्वां वेदमातरम्॥५०॥
ध्यात्वा ध्यानेन चानेन दत्त्वा पुष्पं स्वमूर्धनि। पुनर्ध्यात्वा घटे भक्त्या देवीमावाहयेद्व्रती॥५१॥
दत्त्वा षोडशोपचारं वेदोक्तमन्त्रपूर्वकम्। संपूज्य स्तुत्वा प्रणमेदेवं देवीं विधानतः॥५२॥
आसनं पाद्यमर्घ्यं च स्नानीयं चानुलेपनम्। धूपं दीपं च नैवेद्यं ताम्बूलं शीतलं जलम्॥५३॥
वसनं भूषणं माल्यं गन्धमाचमनीयकम्। मनोहरं सुतल्पं च देयान्येतानि षोडश॥५४॥
दारुसारविकारं च हेमादिनिर्मितं च वा। देवाधारं पुण्यदं च मया[1] तुभ्यं निवेदितम्॥५५॥
तीर्थोदकं च पाद्यं च पुण्यदं प्रीतिदं महत्। पूजाङ्गभूतं शुद्धं च मया भक्त्या निवेदितम्॥५६॥
पवित्ररूपमर्घ्यं च दूर्वापुष्पाक्षतान्वितम्। पुण्यदं शङ्खतोयाक्तं मया तुभ्यं निवेदितम्॥५७॥
सुगन्धि धात्रीतैलं च देहसौन्दर्यकारणम्। मया निवेदितं भक्त्या स्नानीयं प्रतिगृह्यताम्॥५८॥
मलयाचलसंभूतं देहशोभाविवर्धनम्। सुगन्धयुक्तं सुखदं मया तुभ्यं निवेदितम्॥५९॥
गन्धद्रव्योद्भवः पुण्यः प्रीतिदो दिव्यगन्धदः। मया निवेदितो भक्त्या धूपोऽयं प्रतिगृह्यताम्॥६०॥

के ऊपर अनुग्रह करने के लिए कातर रहने वाली, सुख देने वाली, मुक्ति देने वाली, शान्त और जगत्‌रचयिता की कान्ता हैं। वे समस्त सम्पत्तिरूपा, समस्तसम्पत्तिदायिनी, वेदों की अधिष्ठात्री देवी, वेदशास्त्रस्वरूपिणी एवं वेदों में बीजस्वरूप से रहने वाली हैं। उन वेदमाता की मैं सेवा कर रहा हूँ॥४७-५०॥ इस प्रकार ध्यान करते हुए व्रती अपने शिर पर पुष्प रखकर पुनः ध्यान करे और उस कलश में भक्तिपूर्वक देवी का आवाहन करे॥५१॥ पश्चात् वेदानुसार मंत्रों के उच्चारणपूर्वक सविधान षोडशोपचार द्वारा देवी की अर्चना और स्तुति करके उन्हें प्रणाम करे॥५२॥ आसन, पाद्य, अर्घ्य और स्नान का जल, लेपन, धूप, दीप, नैवेद्य, ताम्बूल, शीतल जल, वस्त्र, भूषण, माला, चन्दन, आचमन, और अति मनोहर शय्या—ये देने योग्य सोलह उपचार हैं॥५३-५४॥ निम्नलिखित मंत्रों से सोलहों वस्तुओं को अर्पित करना चाहिए—काष्ठ के सारतत्त्व से बना हुआ अथवा सुवर्ण आदि धातुओं का बना आसन, जो देव के बैठने योग्य एवं पुण्यप्रद है, मैं सदा के लिए समर्पित कर रहा हूँ॥५५॥ तीर्थ जल को पाद्य (पादप्रक्षालन जल) के रूप में मैं भक्तिपूर्वक समर्पित कर रहा हूँ, जो पुण्यप्रद, महान् प्रीतिप्रद, पूजा का अंगभूत एवं शुद्ध है॥५६॥ इस पवित्र अर्घ्य को, जो दूर्वा, पुष्प, अक्षत से युक्त, पुण्यप्रद और शंख-जल से मिश्रित है, आपको अर्पित कर रहा हूँ। ॥५७॥ सुगन्धित तथा देह-सौन्दर्यकारी उस आँवले के तेल को मैं भक्तिपूर्वक स्नान के हेतु आपको अर्पित कर रहा हूँ, स्वीकार करने की कृपा करें॥५८॥ मलयाचल में उत्पन्न, देह की शोभा को बढ़ाने वाला, सुखद एवं सुगन्धि-युक्त चन्दन मैं आपको अर्पित कर रहा हूँ॥५९॥ गन्धद्रव्यों से बना हुआ, पुण्यस्वरूप, प्रीति तथा दिव्य गन्ध प्रकट करने वाला भक्तिपूर्वक आपको अर्पित कर रहा हूँ, स्वीकार करने की कृपा करें॥६०॥ जगत् के लिए दर्शनीय,

---

१ ख. नित्यं।

जगतां दर्शनीयं च दर्शनं दीप्तिकारणम्। अन्धकारध्वंसबीजं मया तुभ्यं निवेदितम्॥६१॥
तुष्टिदं पुष्टिदं चैव प्रीतिदं क्षुद्विनाशनम्। पुण्यदं स्वादुरूपं च नैवेद्यं प्रतिगृह्यताम्॥६२॥
ताम्बूलं च वरं रम्यं कर्पूरादिसुवासितम्। तुष्टिदं पुष्टिदं चैव मया भक्त्या निवेदितम्॥६३॥
सुशीतलं वासितं च पिपासानाशकारणम्। जगतां जीवरूपं च जीवनं प्रतिगृह्यताम्॥६४॥
देहशोभास्वरूपं च सभाशोभाविवर्धनम्। कार्पासजं च कृमिजं वसनं प्रतिगृह्यताम्॥६५॥
काञ्चनादिभिराबद्धं श्रीयुक्तं श्रीकरं सदा। सुखदं पुण्यदं चैव भूषणं प्रतिगृह्यताम्॥६६॥
नानापुष्पलताकीर्णं बहुभासा समन्वितम्। प्रीतिदं पुण्यदं चैव माल्यं वै प्रतिगृह्यताम्॥६७॥
सर्वमङ्गलरूपश्च सर्वमङ्गलदो वरः। पुण्यप्रदश्च गन्धाढ्यो गन्धश्च प्रतिगृह्यताम्॥६८॥
शुद्धं शुद्धिप्रदं चैव पुण्यदं प्रीतिदं महत्। रम्यमाचनीयं च मया दत्तं प्रगृह्यताम्॥६९॥
रत्नसारादिनिर्माणं पुष्पचन्दनसंयुतम्। सुखदं पुण्यदं चैव सुतल्पं प्रतिगृह्यताम्॥७०॥
नानावृक्षसमुद्भूतं नानारूपसमन्वितम्। फलस्वरूपं फलदं फलं च प्रतिगृह्यताम्॥७१॥
सिन्दूरं च वरं रम्यं भालशोभाविवर्धनम्। भूषणं भूषणानां च सिन्दूरं प्रतिगृह्यताम्॥७२॥
विशुद्धग्रन्थिसंयुक्तं पुण्यसूत्रविनिर्मितम्। पवित्रं वेदमन्त्रेण यज्ञसूत्रं च गृह्यताम्॥७३॥
द्रव्याण्येतानि मूलेन दत्त्वा स्तोत्रं पठेत्सुधीः। ततः प्रणम्य विप्राय व्रती दद्याच्च दक्षिणाम्॥७४॥

दृष्टि का सहायक, प्रकाश का कारण तथा अन्धकार-नाश का मूल कारण दीप मैं आपको अर्पित कर रहा हूँ॥६१॥ तुष्टि, पुष्टि, एवं प्रीति प्रदान करनेवाला क्षुधाविनाशक, पुण्यप्रद तथा स्वादिष्ठ नैवेद्य अर्पित कर रहा हूँ, स्वीकार करने की कृपा करें॥६२॥ परमोत्तम, रमणीक, कर्पूरादि से सुवासित तथा तुष्टि-पुष्टि-दायक ताम्बूल भक्तिपूर्वक अर्पित कर रहा हूँ ॥६३॥ अत्यन्त शीतल, सुगन्धित, पिपासा-नाशक और जगत् का प्राणरूप (जल) अर्पित कर रहा हूँ, स्वीकार करने की कृपा करें॥६४॥ देह की शोभा का स्वरूप, सभा में शरीर की शोभा का वर्द्धक, सूती और रेशमी वस्त्र अर्पित कर रहा हूँ, स्वीकार करें॥६५॥ सुवर्ण आदि धातुओं का बना हुआ, शोभासम्पन्न, शोभाकारक, दा सुखद और पुण्यप्रद भूषण अर्पित कर रहा हूँ, स्वीकार करने की कृपा करें॥६६॥ अनेक पुष्पलताओं से विभू-स षित, अत्यन्त प्रकाशपूर्ण, प्रीतिदायक और पुण्यप्रद माला स्वीकार करने की कृपा करें॥६७॥ समस्त मंगल स्वरूप, समस्त मंगलों का प्रदाता, श्रेष्ठ, पुण्यप्रद एवं सुगन्धित गन्ध अर्पित कर रहा हूँ, स्वीकार करें॥६८॥ शुद्ध, शुद्धि-दाता, शुद्ध रहनेवालों के लिए महान् प्रीतिप्रद और स्वच्छ आचमनीय जल मैं समर्पित कर रहा हूँ, स्वीकार करने की कृपा करें॥६९॥ रत्न-सार आदि की बनी हुई, पुष्प चन्दन-युत, सुखद और पुण्यप्रद इस सुन्दर शय्या को अर्पित कर रहा हूँ, स्वीकार करें॥७०॥ अनेक वृक्षों से उत्पन्न, अनेक रूपवाले, फल (भोग) स्वरूप एवं फलप्रद यह फल स्वीकार करने की कृपा करें॥७१॥ श्रेष्ठ, रम्य, भाल की शोभा का वर्द्धक, भूषणों का पूरक यह सिन्दूर ग्रहण करने की कृपा करें॥७२॥ अति शुद्ध ग्रन्थियों (गांठों) से युक्त, पुण्यसूत्र से रचित, और वेदमन्त्र द्वारा पवित्र किया हुआ यह यज्ञोपवीत आप स्वीकार करने की कृपा करें॥७३॥ इस प्रकार मूलमन्त्र द्वारा इन वस्तुओं को अर्पित कर विद्वान् व्रती स्तोत्र का पाठ करे और अनन्तर प्रणाम करके ब्राह्मणों को दक्षिणा प्रदान करे॥७४॥ लक्ष्मी, माया

सावित्रीति चतुर्थ्यन्तं वह्निजायान्तमेव च। लक्ष्मीमायाकामपूर्वं मन्त्रमष्टाक्षरं विदुः ॥७५॥
श्रीं ह्रीं क्लीं सावित्र्यै स्वाहा।
माध्यंदिनोक्तं स्तोत्रं च सर्ववाञ्छाफलप्रदम्। विप्रजीवनरूपं च निबोध कथयामि ते ॥७६॥
कृष्णेन दत्ता सावित्री गोलोके ब्रह्मणे पुरा। न याति सा तेन सार्धं ब्रह्मलोकं तु नारद ॥७७॥
ब्रह्मा कृष्णाज्ञया भक्त्या पर्यष्टौद्वेदमातरम्। तदा सा परितुष्टा च ब्रह्माणं चकमे सती ॥७८॥

ब्रह्मोवाच

नारायणस्वरूपे च नारायणि सनातनि। नारायणात्समुद्भूते प्रसन्ना भव सुन्दरि ॥७९॥
तेजः स्वरूपे परमे परमानन्दरूपिणि। द्विजातीनां जातिरूपे प्रसन्ना भव सुन्दरि ॥८०॥
नित्ये नित्यप्रिये देवि नित्यानन्दस्वरूपिणि। सर्वमङ्गलरूपेण प्रसन्ना भव सुन्दरि ॥८१॥
सर्वस्वरूपे विप्राणां मन्त्रसारे परात्परे। सुखदे मोक्षदे देवि प्रसन्ना भव सुन्दरि ॥८२॥
विप्रपापेध्मदाहाय ज्वलदग्निशिखोपमे। ब्रह्मतेजःप्रदे देवि प्रसन्ना भव सुन्दरि ॥८३॥
कायेन मनसा वाचा यत्पापं कुरुते द्विजः। तत्ते स्मरणमात्रेण भस्मीभूतं भविष्यति ॥८४॥
इत्युक्त्वा जगतां धाता तत्र तस्थौ च संसदि। सावित्री ब्रह्मणा सार्धं ब्रह्मलोकं जगाम सा ॥८५॥

और काम में क्रमशः 'श्रीं ह्रीं क्लीं' बीज समेत सावित्री शब्द के चतुर्थ्यन्त पद (सावित्र्यै) के अन्त में अग्निस्त्री (स्वाहा) शब्द रख देने से 'श्रीं ह्रीं क्लीं सावित्र्यै स्वाहा' मंत्र बनता है। सावित्री के इसी अष्ठाक्षर मन्त्र को विद्वानों ने मूलमंत्र कहा है ॥७५॥ अब माध्यन्दिनी शाखा के अनुसार सावित्री का सकलकामनादायक एवं ब्राह्मणों के लिए जीवनस्वरूप स्तोत्र बता रहा हूँ, सुनो ॥७६॥ नारद! भगवान् श्री कृष्ण ने सर्वप्रथम गोलोक में ब्रह्मा को सावित्री प्रदान की थी किन्तु उसने उनके साथ ब्रह्मलोक जाना स्वीकार नहीं किया ॥७७॥ पश्चात् भगवान् श्रीकृष्ण की आज्ञा से ब्रह्मा ने जब भक्तिपूर्वक उस वेदमाता की स्तुति की, तब वह सती प्रसन्न होकर ब्रह्मा को चाहने लगी ॥७८॥

ब्रह्मा बोले—हे नारायण स्वरूप वाली, हे नारायणि, हे सनातनि! तुम नारायण से उत्पन्न हुई हो! हे सुन्दरि! प्रसन्न हो जाओ ॥७९॥ तुम परम तेजः स्वरूप और परमानन्द रूप हो, हे द्विजातियों की जातिस्वरूप सुन्दरि! प्रसन्न हो जाओ ॥८०॥ हे देवि! तुम नित्या, नित्यप्रिया और नित्यानन्दस्वरूपा हो। समस्त मंगलरूपों से तुम प्रसन्न हो जाओ ॥८१॥ हे देवि! तुम ब्राह्मणों के लिए सर्वस्व, मन्त्रों का साररूप और श्रेष्ठातिश्रेष्ठ हो। हे सुन्दरि! तुम सुख और मोक्ष प्रदान करती हो। मुझ पर प्रसन्न हो जाओ ॥८२॥ हे देवि! ब्राह्मणों के पाप-रूपी इंधन को जलाने के लिए तुम जलती हुई अग्निशिखा हो और ब्रह्मतेज प्रदायिनी हो। हे सुन्दरि! प्रसन्न हो जाओ ॥८३॥ ब्राह्मण शरीर, मन एवं वाणी से जो पाप करता है, वह केवल तुम्हारे स्मरणमात्र से भस्म हो जाता है ॥८४॥ जगत् के विधाता ब्रह्मा उस सभा में इस प्रकार कह कर चुप हो गये। अनन्तर सावित्री भी ब्रह्मा के

अनेन स्तवराजेन संस्तूयाश्वपतिर्नृपः । ददर्श तां च सावित्रीं वरं प्राप मनोगतम् ॥८६॥
स्तवराजमिदं पुण्यं[1] त्रिःसंध्यायां च यः पठेत् । पाठे चतुर्णां वेदानां यत्फलं तल्लभेद्ध्रुवम् ॥८७॥

इति श्रीब्रह्म० महा० प्रकृति० नारदना० सावित्र्युपाख्याने सावित्रीस्तोत्रकथनं नाम त्रयोविंशोऽध्यायः ॥२३॥

अथ चतुर्विंशोऽध्यायः

श्रीनारायण उवाच

स्तुत्वा सोऽश्वपतिस्तेन संपूज्य विधिपूर्वकम् । ददर्श तत्र तां देवीं सहस्रार्कसमप्रभाम् ॥१॥
उवाच सा तं राजानं प्रसन्ना सस्मिता सती । यथा माता स्वपुत्रं च द्योतयन्ती दिशस्त्विषा ॥२॥

सावित्र्युवाच

जानामि ते महाराज यत्ते मनसि वर्तते । वाञ्छितं तव पत्न्याश्च सर्वं दास्यामि निश्चितम् ॥३॥

साथ ब्रह्मलोक को चली गयी ॥८५॥ इसी स्तवराज द्वारा अश्वपति ने सावित्री की स्तुति की । तब उन्हें उनका दर्शन प्राप्त हुआ और मनोनीत वरदान भी मिला ॥८६॥ जो तीनों संध्याओं में इस स्तवराज का पाठ करेगा, उसे निश्चित रूप से चारों वेदों के पाठ करने का फल मिलेगा ॥८७॥

श्री ब्रह्मवैवर्तमहापुराण के सावित्री-उपाख्यान के प्रसंग में सावित्री स्तोत्र कथन नामक तेईसवाँ अध्याय समाप्त ॥२३॥

अध्याय २४

राजा अश्वपति द्वारा सावित्री की उपासना आदि

नारायण बोले—राजा अश्वपति ने उसी स्तवराज द्वारा स्तुति और विधिपूर्वक पूजन करके उन देवी का दर्शन किया, जो सहस्रसूर्य के समान प्रभापूर्ण थीं ॥१॥ साध्वी सावित्री अत्यन्त प्रसन्न होकर हँसती हुई राजा अश्वपति से इस प्रकार बोलीं, मानों माता अपने पुत्र से बात कर रही हो। उस समय देवी सावित्री की प्रभा से चारों दिशाएँ उद्भासित हो रही थीं ॥२॥

सावित्री बोली—महाराज तुम्हारे मन की बात मैं जानती हूँ। इसलिए तुम्हारा और तुम्हारी पत्नी का मनोरथ मैं निश्चित रूप से सफल करूँगी ॥३॥ तुम्हारी पतिव्रता रानी कन्या की अभिलाषा करती है और तुम

---

[1] क ०ण्यं संध्यां कृत्वा च ।

साध्वी कन्याभिलाषं च करोति तव कामिनी । त्वं प्रार्थयसि पुत्रं च भविष्यति च ते क्रमात् ।।४।।
इत्युक्त्वा सा महादेवी ब्रह्मलोकं जगाम ह । राजा जगाम स्वगृहं तत्कन्याऽऽदौ बभूव ह ।।५।।
आराधनाच्च सावित्र्या बभूव कमला [1]कला । सावित्रीति च तन्नाम चकाराश्वपतिर्नृपः ।।६।।
कालेन सा वर्धमाना बभूव च दिने दिने । रूपयौवनसंपन्ना शुक्ले चन्द्रकला यथा ।।७।।
सा वरं वरयामास द्युमत्सेनात्मजं तदा । सावित्री[2] सत्यवन्तं च नानागुणसमन्वितम् ।।८।।
राजा तस्मै ददौ तां च रत्नभूषणभूषिताम् । स च सार्धं कौतुकेन तां गृहीत्वा गृहं ययौ ।।९।।
स च संवत्सरेऽतीते सत्यवान्सत्यविक्रमः । जगाम फलकाष्ठार्थं प्रहर्षं पितुराज्ञया ।।१०।।
जगाम तत्र सावित्री तत्पश्चाद्दैवयोगतः । निपत्य वृक्षाद्दैवेन प्राणांस्तत्याज सत्यवान् ।।११।।
यमस्तज्जीवपुरुषं बध्वाऽङ्गुष्ठसमं मुने । गृहीत्वा गमनं चक्रे तत्पश्चात्प्रययौ सती ।।१२।।
पश्चात्तां सुन्दरीं दृष्ट्वा यमः संयमिनीपतिः । उवाच मधुरं साध्वीं साधूनां प्रवरो महान् ।।१३।।

यम उवाच

अहो क्व यासि सावित्रि गृहीत्वा मानुषीं तनुम् । यदि यास्यसि कान्तेन सार्धं देहं तदा त्यज ।।१४।।
गन्तुं मर्त्यो न शक्नोति गृहीत्वा पाञ्चभौतिकम् । देहं च यमलोकं च नश्वरं नश्वरः सदा ।।१५।।

पुत्र की कामना कर रहे हो। क्रमशः दोनों बातें पूरी होंगी ।।४।। इतना कहकर वह महादेवी ब्रह्मलोक में चली गयीं और राजा भी अपने घर लौट आया। अनन्तर पहले कन्या का जन्म हुआ ।।५।। सावित्री की आराधना करने के नाते राजा अश्वपति के यहाँ जिस लक्ष्मी की कला का जन्म हुआ था राजा ने उसका नाम 'सावित्री' रखा ।।६।। शुक्ल पक्ष की चन्द्रकला की भाँति वह कन्या दिन-प्रतिदिन समयानुसार बढ़ने लगी और थोड़े ही समय में रूप-यौवनसम्पन्न हो गयी ।।७।। अनन्तर सावित्री ने (पतिरूप में) सत्यवान् का वरण किया, जो द्युमत्सेन का पुत्र, सत्य-निष्ठ एवं अनेक गुणों से सम्पन्न था ।।८।। राजा ने रत्नों के भूषणों से भूषित करके सावित्री सत्यवान् को समर्पित कर दी और वह भी उसे साथ लेकर अत्यन्त कौतुक से अपने घर चले गये ।।९।। एक वर्ष के अनन्तर सत्यनिष्ठ सत्यवान् ने पिता की आज्ञा से फल-मूल और ईंधन लाने के लिए हर्ष के साथ वन में प्रस्थान किया ।।१०।। दैवयोग से सावित्री भी उनके पीछे चल पड़ी। उधर दैवयोग से सत्यवान् वृक्ष से गिर पड़ा। उसके प्राण निकल गये ।।११।। मुने ! यमराज ने उसके अंगुष्ठ-सदृश जीवात्मा को सूक्ष्म-शरीर के साथ बाँधकर यमपुरी के लिए प्रस्थान किया। उसके पीछे सती सावित्री भी चलने लगी। साधुप्रवर एवं संयमिनी पुरी के स्वामी यम ने उस सती सुन्दरी को पीछे आते देख कर उससे मधुर वाणी में कहा ।।१२-१३।।

यम बोले—अहो सावित्री ! तुम इस मानव शरीर से कहाँ जा रही हो ? यदि तुम अपने कान्त के साथ जाना चाहती हो तो अपने शरीर का त्याग कर दो ।।१४।। इस पाञ्चभौतिक (पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश) से बने इस नश्वर शरीर को लेकर कोई मनुष्य यमपुरी नहीं जा सकता है ।।१५।। इस भारत में तुम्हारे पति का समय

---

१ क. लया ।   २ क. सत्यवर्णं सत्यशीलं मा० ।

पूर्णश्च भर्तुस्ते कालो ह्यभवद्भारते सति। स्वकर्मफलभोगार्थं सत्यवान्याति मद्गृहम्॥१६॥
कर्मणा जायते जन्तुः कर्मणैव प्रलीयते। सुखं दुःखं भयं शोकं कर्मणैव प्रपद्यते॥१७॥
कर्मणेन्द्रो भवेज्जीवो ब्रह्मपुत्रः स्वकर्मणा। स्वकर्मणा हरेर्दासो जन्मादिरहितो भवेत्॥१८॥
स्वकर्मणा सर्वसिद्धिममरत्वं लभेद्ध्रुवम्। लभेत्स्वकर्मणा विष्णोः सालोक्यादिचतुष्टयम्॥१९॥
कर्मणा ब्राह्मणत्वं च मुक्तत्वं च स्वकर्मणा। सुरत्वं मनुजत्वं च राजेन्द्रत्वं लभेन्नरः॥२०॥
कर्मणा च मुनीन्द्रत्वं तपस्वित्वं च कर्मणा। कर्मणा क्षत्रियत्वं च वैश्यत्वं च स्वकर्मणा॥२१॥
कर्मणा चैव शूद्रत्वमन्त्यजत्वं स्वकर्मणा। स्वकर्मणा च म्लेच्छत्वं लभते नात्र संशयः॥२२॥
स्वकर्मणा जङ्गमत्वं स्थावरत्वं स्वकर्मणा। स्वकर्मणा च शैलत्वं वृक्षत्वं च स्वकर्मणा॥२३॥
स्वकर्मणा पशुत्वं च पक्षित्वं च स्वकर्मणा। स्वकर्मणा क्षुद्रजन्तुः कृमित्वं च स्वकर्मणा॥२४॥
स्वकर्मणा च सर्पत्वं गन्धर्वत्वं स्वकर्मणा। स्वकर्मणा राक्षसत्वं किन्नरत्वं स्वकर्मणा॥२५॥
स्वकर्मणा च यक्षत्वं कूष्माण्डत्वं स्वकर्मणा। स्वकर्मणा च प्रेतत्वं वेतालत्वं स्वकर्मणा॥२६॥
भूतत्वं च पिशाचत्वं डाकिनीत्वं स्वकर्मणा। दैत्यत्वं दानवत्वं चाप्यसुरत्वं स्वकर्मणा॥२७॥
कर्मणा पुण्यवाञ्जीवो महापापी स्वकर्मणा। कर्मणा सुन्दरोऽरोगी महारोगी च कर्मणा॥२८॥
कर्मणा चाङ्गहीनत्वं बधिरश्च स्वकर्मणा। कर्मणा चान्धः काणश्च कुत्सितश्च स्वकर्मणा॥२९॥
कर्मणा नरकं यान्ति जीवाः स्वर्गं स्वकर्मणा। कर्मणा शक्रलोकं च सूर्यलोकं स्वकर्मणा॥३०॥

पूरा हो गया है। अतः कर्मफल भोग करने के लिए सत्यवान् मेरे लोक जा रहा है॥१६॥ क्योंकि कर्म से जीव उत्पन्न होता है और कर्म से ही उसकी मृत्यु भी होती है तथा सुख, दुःख, भय और शोक कर्म से ही उसे प्राप्त होते हैं॥१७॥ कर्म द्वारा ही यह जीव इन्द्र होता है, कर्म से ब्रह्मा का पुत्र होता है, और कर्म द्वारा भगवान का दास बनकर जन्म-मरण रहित होता है॥१८॥ अपने कर्म से ही समस्त सिद्धियाँ, अमरत्व की प्राप्ति होती है एवं कर्म द्वारा भगवान् विष्णु के सालोक्य आदि चारों मोक्ष प्राप्त होते हैं॥१९॥ मनुष्य कर्म से ब्राह्मणत्व, मुक्ति, देवत्व, मानवत्व और राजेन्द्रत्व प्राप्त करता है॥२०॥ कर्म से ही मुनीन्द्रत्व, तपस्वित्व, क्षत्रियत्व, वैश्यत्व, शूद्रत्व, चाण्डालत्व और म्लेच्छत्व की प्राप्ति होती है, इसमें सन्देह नहीं है॥२१-२२॥ मनुष्य अपने स्वकर्म से जंगम (चलने-फिरने वाला) और अपने कर्म से स्थावर (अचल) होता है। अपने कर्म से पर्वत, अपने कर्म से वृक्ष, अपने कर्म से पशु और अपने ही कर्म से पक्षी होता है॥२३½॥ अपने कर्म से क्षुद्र जन्तु, अपने कर्म से कीड़े, अपने कर्म से सर्प, अपने कर्म से गन्धर्व, अपने कर्म से राक्षस, अपने कर्म से किन्नर, अपने कर्म से यक्ष, अपने कर्म से कूष्माण्ड, अपने कर्म से वेताल, अपने कर्म से प्रेत तथा भूत, पिशाच एवं डाकिनी भी अपने कर्म से ही होता है॥२४-२६½॥ अपने कर्म से दैत्य, दानव, असुर और अपने ही कर्म से जीव पुण्यात्मा एवं महापापी भी होता है। कर्म से सुन्दर, नीरोग तथा कर्म से महारोगी, कर्म से अन्धा, काना और कर्म से कुत्सित (निन्दित) होता है॥२७-२९॥ कर्म से ही जीवगण नरक जाते हैं और कर्म से ही स्वर्ग। कर्म से इन्द्रलोक, कर्म से सूर्यलोक, कर्म से चन्द्रलोक, कर्म से अग्नि-लोक, कर्म से वायु-

कर्मणा चन्द्रलोकं च वह्निलोकं स्वकर्मणा। कर्मणा वायुलोकं च कर्मणा वरुणालयम् ॥३१॥
[1]तथा कुबेरलोकं च नरो याति स्वकर्मणा। कर्मणा ध्रुवलोकं च शिवलोकं स्वकर्मणा ॥३२॥
याति नक्षत्रलोकं च सत्यलोकं स्वकर्मणा। जनोलोकं तपोलोकं महर्लोकं स्वकर्मणा ॥३३॥
स्वकर्मणा च पातालं [2]ब्रह्मलोकं स्वकर्मणा। कर्मणा भारतं पुण्यं [3]सर्वेषामीप्सितं परम् ॥३४॥
कर्मणा याति वैकुण्ठं गोलोकं च निरामयम्। कर्मणा चिरजीवी च [4]क्षणायुश्च स्वकर्मणा ॥३५॥
कर्मणा कोटिकल्पायुः क्षीणायुश्च स्वकर्मणा। जीवसंसारमात्रायुर्गर्भे मृत्युः स्वकर्मणा ॥३६॥
इत्येवं कथितं सर्वं मया[5] तत्त्वं च सुन्दरि। कर्मणा ते मृतो भर्ता गच्छ वत्से यथासुखम् ॥३७॥

इति श्रीब्रह्म० महा० प्रकृति० नारदना० सावित्र्यु० सावित्रीयमसंवादे
कर्मणः सर्वहेतुत्वप्रदर्शनं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥२४॥

अथ पञ्चविंशोऽध्यायः

श्रीनारायण उवाच

यमस्य वचनं श्रुत्वा सावित्री च पतिव्रता। तुष्टाव परया भक्त्या तमुवाच मनस्विनी ॥१॥

लोक तथा कर्म से वरुणलोक में जाता है ॥३०-३१॥ कर्म से नर कुबेरलोक, कर्म से ध्रुव लोक, कर्म से शिव लोक और कर्म से ही नक्षत्र लोक, सत्यलोक, जनलोक, तपोलोक तथा महर्लोक भी प्राप्त करता है ॥३२-३३॥ अपने कर्म से पाताल, अपने कर्म से ब्रह्मलोक और कर्म से पवित्र एवं सबके अत्यन्त अभिलषणीय भारतवर्ष में जन्म लेता है ॥३४॥ कर्म से वैकुण्ठ तथा निर्दोष गोलोक की प्राप्ति होती है। कर्म से चिरायु और कर्म से क्षणिक जीवन प्राप्त होता है ॥३५॥ कर्म से करोड़ों कल्प की आयु, कर्म से क्षीण आयु, कर्म से संसार में आने भर की आयु और कर्म से ही गर्भ में मृत्यु प्राप्त होती है ॥३६॥ हे सुन्दरि! इस प्रकार मैंने समस्त तत्त्वों को बता दिया है। वत्से! कर्म से ही तुम्हारा पति मृतक हुआ है। अतः सुखपूर्वक लौट जाओ ॥३७॥

श्री ब्रह्मवैवर्तमहापुराण के दूसरे प्रकृतिखण्ड में कर्म का सर्वकारणत्व वर्णन
नामक चौबीसवाँ अध्याय समाप्त ॥२४॥

अध्याय २५

यमराज से सावित्री का प्रश्न

श्रीनारायण बोले—यमराज की बातें सुनकर पतिव्रता एवं मनस्विनी सावित्री ने अनन्य भक्ति से उनकी स्तुति की और निवेदन किया ॥१॥

---

१ क. ब्रह्मकु०। २ क. रसातलं। ३ ख. ०र्वेप्सितवरप्रदम्। ४ क. च लक्षायु०। ५ क. महत्त०।

सावित्र्युवाच

किं कर्म वा शुभं धर्मराज किंवाऽशुभं नृणाम् । कर्म निर्मूलयन्त्येव केन वा साधवो जनाः ॥२॥
कर्मणां बीजरूपः कः को वा कर्मफलप्रदः । किं कर्म तद्भवेत्केन को वा तद्धेतुरेव च ॥३॥
को वा कर्मफलं भुङक्ते को वा निर्लिप्त एव च । को वा देही कश्च देहः को वाऽत्र कर्मकारकः ॥४॥
किं वा ज्ञानं मनो बुद्धिः के वा प्राणाः शरीरिणाम् । कानीन्द्रियाणि किं तेषां लक्षणं देवताश्च काः ॥५॥
भोक्ता भोजयिता को वा को भोगः का च निष्कृतिः । को जीवः परमात्मा कस्तन्मेव्याख्यातु-
महंसि ॥६॥

यम उवाच

[1]वेदेन विहितं कर्म तन्मन्ये मङ्गलं परम् । अवैदिकं तु यत्कर्म तदेवाशुभमेव च ॥७॥
अहैतुकी विष्णुसेवा संकल्परहिता सताम् । [2]कर्मनिर्मूलनात्मा व सा चैव हरिभक्तिदा ॥८॥
हरिभक्तो नरो यश्च स च मुक्तः श्रुतौ श्रुतम् । जन्ममृत्युजराव्याधिशोकभीतिविवर्जितः ॥९॥
मुक्तिश्च द्विविधा साध्वि श्रुत्युक्ता सर्वसंमता । निर्वाणपददात्री च हरिभक्तिप्रदा नृणाम् ॥१०॥
हरिभक्तिस्वरूपां च मुक्तिं वाञ्छन्ति वैष्णवाः । अन्ये निर्वाणरूपां च मुक्तिमिच्छन्ति साधवः ॥११॥

सावित्री बोली—हे धर्मराज ! मनुष्यों का कौन-सा कर्म शुभ है और कौन-सा अशुभ है ? तथा सज्जन लोग किसके द्वारा कर्म का उन्मूलन करते हैं ? ॥२॥ कर्मों का बीजरूप कौन-सा है ? कर्म का फल कौन देता है ? कर्म किसे कहते हैं ? और वह किसके द्वारा होता है ? उसका कारण कौन है ? ॥३॥ कर्मफल का भोग कौन करता है ? कौन (उससे) निर्लिप्त रहता है ? देही कौन है ? देह कौन है ? और कर्म कौन करता है ? ॥४॥ ज्ञान, मन, बुद्धि, किसे कहते हैं, शरीरधारियों के प्राण कौन हैं ? इन्द्रियां कौन हैं ? उनके लक्षण क्या हैं ? और उनके देवता कौन हैं ? ॥५॥ भोक्ता (भोग करनेवाला) कौन है ? भोजयिता (भोग करानेवाला) कौन है ? और भोग कौन है ? और उससे छुटकारा मिलने का उपाय क्या है ? जीव कौन है ? और परमात्मा कौन है ? (—यह सारी बातें आप) मुझे बताने की कृपा करें ॥६॥

यम बोले—वेद विहित कर्म परम मङ्गलमय है और वेद में जिसका स्थान नहीं है वही अशुभ कर्म है ॥७॥ अहैतुकी (अकारण) विष्णु सेवा सज्जनों के कर्म का नाश करने वाली है और वही हरिभक्ति भी प्रदान करती है ॥८॥ भगवान् का भक्त मनुष्य मुक्त होता है । इसीलिए उसे जन्म, मृत्यु, जरा, व्याधि, शोक और भय नहीं होता है, ऐसा वेद में सुना गया है ॥९॥ पतिव्रते ! वेद में सर्वसम्मत से दो प्रकार की मुक्ति बतायी गयी है। उसमें एक मनुष्यों को निर्वाणपद प्रदान करती है और दूसरी भगवान् विष्णु की भक्ति ॥१०॥ वैष्णव जन भगवान् की भक्ति रूप मुक्ति चाहते हैं और अन्य साधु वर्ग निर्वाण रूप मुक्ति की कामना करते हैं ॥११॥ प्रकृति से परे रहने वाले

---

१ क. वेदप्रणिहितो धर्मः कर्म तन्मङ्ग० । २ क. ०निर्मलरूपा च सा चै० ।

कर्मणो बीजरूपश्च संततं तत्फलप्रदः। कर्मरूपश्च भगवाञ्छ्रीकृष्णः प्रकृतेः परः॥१२॥
सोऽपि तद्धेतुरूपश्च कर्म तेन भवेत्सति। जीवः कर्मफलं भुङ्क्त आत्मा निर्लिप्त एव च॥१३॥
आत्मनः प्रतिबिम्बं च देही जीवः स एव च। पाञ्चभौक्तिकरूपश्च देहो नश्वर एव च॥१४॥
पृथिवी वायुराकाशो जलं तेजस्तथैव च। एतानि सूत्ररूपाणि सृष्टिः सृष्टिविधौ हरेः॥१५॥
कर्ता भोक्ता च देही च स्वात्मा भोजयिता सदा। भोगो विभवभेदश्च निष्कृतिर्मुक्तिरेव च॥१६॥
सदसद्भेदबीजं च ज्ञानं नानाविधं भवेत्। विषयाणां विभागानां भेदबीजं च कीर्तितम्॥१७॥
बुद्धिर्विवेचनारूपा ज्ञानसंदीपनी श्रुतौ। वायुभेदाश्च वै प्राणा बलरूपाश्च देहिनाम्॥१८॥
इन्द्रियाणां वै प्रवरमीश्वराणां समूहकम्। प्रेरकं कर्मणां चैव दुर्निवार्यं च देहिनाम्॥१९॥
अनिरूप्यमदृश्यं च ज्ञानभेदं मनः स्मृतम्। लोचनं श्रवणं घ्राणं त्वग्जिह्वादिकमिन्द्रियम्॥२०॥
अङ्गिनामङ्गरूपं च प्रेरकं सर्वकर्मणाम्। रिपुरूपं मित्ररूपं सुखदं दुःखदं सदा॥२१॥
सूर्यो वायुश्च पृथिवी वाण्याद्या देवताः स्मृताः। प्राणदेहादिभृद्यो हि स जीवः परिकीर्तितः॥२२॥
परमात्मा परं ब्रह्म निर्गुणः प्रकृतेः परः। कारणं कारणानां च श्रीकृष्णो भगवान्स्वयम्॥२३॥
इत्येवं कथितं सर्वं [1]मया पृष्टं यथागमम्। ज्ञानिनां ज्ञानरूपं च गच्छ वत्से यथासुखम्॥२४॥

भगवान् श्रीकृष्ण ही कर्मों के बीज रूप, उसके फलदाता और कर्मरूप हैं॥१२॥ एवं वही कर्मों के हेतु रूप भी हैं। वे सदैव वर्तमान रहते हैं, अतः उन्हीं के द्वारा कर्म की प्राप्ति होती है। कर्मों के फल का भोक्ता जीव है और आत्मा उससे निर्लिप्त रहता है॥१३॥ आत्मा का प्रतिबिम्ब ही देही और जीव कहलाता है। पाँच भूतों के नश्वर रूप को देह कहते हैं॥१४॥ भगवान् के सृष्टि विधान में पृथिवी, वायु, आकाश, जल और तेज, यही सृष्टि के सूत्र हैं॥१५॥ देही (जीवात्मा) कर्ता, भोक्ता है और आत्मा (परमात्मा) भोजयिता (भोग कराने वाला) है। अनेक भाँति के विभव भोग हैं तथा उनसे पृथक् होने को मुक्ति कहते हैं॥१६॥ सत्-असत् भेद का बीज रूप ज्ञान अनेक प्रकार का होता है। घट, पट आदि विषय तथा उनका भेद ज्ञान के भेद में कारण कहा गया है॥१७॥ विवेचनमयी शक्ति को बुद्धि कहते हैं। वेद में ज्ञानबीज नाम से इसकी प्रसिद्धि है। वायु के ही विभिन्न रूप प्राण हैं। इन्हीं के प्रभाव से प्राणियों के शरीर में शक्ति का संचार होता है। जो इन्द्रियों में प्रमुख, परमात्मा का अंश, संशयात्मक , कर्मों का प्रेरक, प्राणियों के लिए दुर्निवार्य, अनिरूप्य, अदृश्य तथा बुद्धि का एक भेद है, उसे 'मन' कहा गया है। यह शरीरधारियों का अंग तथा सम्पूर्ण कर्मों का प्रेरक है। यही इन्द्रियों को विषयों में लगा कर दुःखी बनाने के कारण शत्रु रूप हो जाता है और सत्कार्य में लगा कर सुखी बनाने के कारण मित्र रूप है। आँख, कान, नाक, त्वचा और जिह्वा आदि इन्द्रियाँ हैं। सूर्य, वायु और पृथिवी एवं वाणी आदि इन्द्रियों के देवता हैं। प्राण और देह आदि के धारण करने वाले को 'जीव' कहते हैं। स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण को परमात्मा एवं परब्रह्म कहते हैं, जो निर्गुण, प्रकृति से परे और समस्त कारणों के कारण हैं। वत्से ! इस प्रकार मैंने शास्त्रानुसार तुम्हारे प्रश्नों का उत्तर दे दिया है, जो ज्ञानियों के लिए ज्ञानरूप है। अब यथासुख चली जाओ॥१८-२४॥

---

१ क. त्वया।

सावित्र्युवाच

त्यक्त्वा क्व यामि कान्तं वा त्वां वा ज्ञानार्णवं बुधम् । प्रश्नं यद्यत्करोमि त्वां तद्भवान्व-
क्तुमर्हति ॥२५॥
कां कां योनिं याति जीवः कर्मणा केन वा यम । केन वा कर्मणा स्वर्गं केन वा नरकं पितः ॥२६॥
केन वा कर्मणा मुक्तिः केन भक्तिर्भवेद्धरेः । केन वा कर्मणा रोगी चारोगी केन कर्मणा ॥२७॥
केन वा दीर्घजीवी च केनाल्पायुश्च कर्मणा । केन वा कर्मणा दुःखी केन वा कर्मणा सुखी ॥२८॥
अङ्गहीनश्च काणश्च बधिरः केन कर्मणा । अन्धो वा कृपणो[1] वाऽपि प्रमत्तः केन कर्मणा ॥२९॥
क्षिप्तोऽतिलुब्धकश्चौरः[2] केन वा नरघातकः । केन[3] सिद्धिमवाप्नोति सालोक्यादिचतुष्टयम् ॥३०॥
केन वा ब्राह्मणत्वं च तपस्वित्वं च केन वा । स्वर्गभोगादिकं केन वैकुण्ठं केन कर्मणा ॥३१॥
गोलोकं केन वा ब्रह्मन्सर्वोत्कृष्टं निरामयम् । नरकं वा कतिविधं किंसंख्यं नाम किं तथा ॥३२॥
को वा कं नरकं याति कियन्तं तेषु तिष्ठति । पापिनां कर्मणा केन को वा व्याधिः प्रजायते ॥३३॥
यद्यदस्ति मया पृष्टं तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥३४॥

इति श्रीब्रह्म० महा० प्रकृति० नारदना० कर्मविपाके यमोक्त्यनन्तरं
सावित्रीप्रश्नो नाम पञ्चविंशोऽध्यायः ॥२५॥

सावित्री बोली—पति को तथा ज्ञान के सागर आप विद्वान् को छोड़ कर मैं कहाँ जाऊँ? मैं जो-जो प्रश्न पूछती हूँ, आप उसे बताने की कृपा करें ॥२५॥ हे यम! किन-किन कर्मों द्वारा यह जीव किन-किन योनियों में जाता है? हे पिता! किस कर्म द्वारा इसे स्वर्ग तथा नरक की प्राप्ति होती है ॥२६॥ किस कर्म से मुक्ति मिलती है? किस कर्म से भगवान् की भक्ति होती है? मनुष्य किस कर्म से रोगी होता है तथा किस कर्म से नीरोग रहता है ॥२७॥ किस कर्म से दीर्घजीवी होता है और किस कर्म से अल्पायु होता है। किस कर्म से दुःखी होता है और किस कर्म से सुखी ॥२८॥ किस कर्म से अंगहीन, काना, बहरा, अन्धा, कृपण और पागल होता है ॥२९॥ किस कर्म से अत्यन्त लोभी, महान् व्याध और नरघाती होता है? सिद्धि और सालोक्यादि मुक्ति प्राप्त होने में कौन कर्म सहायक हैं? ॥३०॥ किस कर्म से प्राणी ब्राह्मण और तपस्वी होता है? किस कर्म से स्वर्ग के भोग मिलते हैं? और किस कर्म से वैकुण्ठ की प्राप्ति होती है ॥३१॥ ब्रह्मन्! किस कर्म से गोलोक मिलता है? जो सभी लोकों से उत्कृष्ट एवं निरामय है। कितने प्रकार के नरक हैं? उनकी संख्या और नाम क्या हैं? ॥३२॥ कौन (जीव) किस नरक में जाता है? उसमें कितने दिन रहता है? और पापियों को किस कर्म से कौन रोग प्राप्त होता है? ये जितनी बातें मैंने पूछी हैं, आप बताने की कृपा करें ॥३३-३४॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के प्रकृतिखण्ड में सावित्री-प्रश्न-वर्णन नामक
पचीसवाँ अध्याय समाप्त ॥२५॥

---

१ क. षिङ्गलो वा। २ ख. ०कश्चैव के०। ३ ०न स्वर्गम०।

अथ षड्विंशोऽध्यायः

श्रीनारायण उवाच

सावित्रीवचनं श्रुत्वा जगाम विस्मयं यमः। प्रहस्य वक्तुमारेभे कर्मपाकं च जीविनाम्॥१॥

यम उवाच

कन्या द्वादशवर्षीया वत्से त्वं वयसाऽधुना। ज्ञानं ते सर्वविदुषां योगिनां ज्ञानिनां परम्॥२॥
सावित्रीवरदानेन त्वं सावित्रीकला सति। प्राप्ता पुरा भूभृता च तपसा तत्समा शुभे॥३॥
यथा श्रीः श्रीपतेः क्रोडे भवानी च भवोरसि। यथा राधा च श्रीकृष्णे सावित्री ब्रह्मवक्षसि॥४॥
धर्मोरसि यथा मूर्तिः शतरूपा मनौ यथा। कर्दमे देवहूतिश्च वसिष्ठेऽरुन्धती यथा॥५॥
अदितिः कश्यपे चापि यथाऽऽहल्या च गौतमे। यथा शची महेन्द्रे च यथा चन्द्रे च रोहिणी॥६॥
यथा रतिः कामदेवे यथा स्वाहा हुताशने। यथा स्वधा च पितृषु यथा संज्ञा दिवाकरे॥७॥
वरुणानी च वरुणे यज्ञे च दक्षिणा यथा। यथा धरा वराहे च देवसेना च कार्तिके॥८॥
सौभाग्या सुप्रिया त्वं च भव सत्यवति प्रिये। इति तुभ्यं वरं दत्तमपरं च यदीप्सितम्॥
वृणु देवि महाभागे सर्वं दास्यामि निश्चितम् ॥९॥

अध्याय २६

सावित्री-धर्मराज के प्रश्नोत्तर

नारायण बोले—सावित्री की बातें सुनकर यमराज को आश्चर्य हुआ। उन्होंने हँसकर जीवों के कर्म-विपाक (कर्मों के फल) कहना आरम्भ किया॥१॥

यम बोले—वत्से! यद्यपि तुम इस समय बारह वर्ष की कन्या हो, किन्तु तुम्हारा ज्ञान प्राचीन विद्वानों, योगियों एवं श्रेष्ठ ज्ञानियों के समान है॥२॥ भद्रे! (तुम्हारे पिता) राजा ने पूर्व काल में तप करके सावित्री के वरदान से उन्हीं की कला के रूप में तुम्हें प्राप्त किया है॥३॥ अतः जिस प्रकार विष्णु के अङ्क में लक्ष्मी, शिव की गोद में भवानी, श्रीकृष्ण के अङ्क में राधा, ब्रह्मा के अङ्क में सावित्री, धर्म के अङ्क में मूर्ति, मनु के अङ्क में शतरूपा, कर्दम के अङ्क में देवहूति, वसिष्ठ के अङ्क में अरुन्धती॥४-५॥ कश्यप के अङ्क में अदिति, गौतम के अङ्क में अहल्या, इन्द्र के अङ्क में इन्द्राणी, चन्द्रमा के अङ्क में रोहिणी, कामदेव के वक्ष पर रति, अग्नि के अङ्क में स्वाहा, पितरों के साथ स्वधा, दिवाकर के साथ संज्ञा॥६-७॥ वरुण के अङ्क में वरुणानी, यज्ञ के अङ्क में दक्षिणा, वराहावतार भगवान् के अङ्क में पृथिवी और कार्तिकेय के साथ देवसेना सुशोभित होती हैं उसी प्रकार, हे प्रिये! तुम भी सत्यवान् की परम प्रेयसी एवं सौभाग्यशालिनी बनो। मैंने यह तुम्हें वरदान दिया है। हे देवि! हे महाभागे! इसके अतिरिक्त भी जो तुम्हें अभीष्ट हो, वह वर माँगो। मैं निश्चित रूप से तुम्हें सब वरदान दूँगा॥८-९॥

सावित्र्युवाच

सत्यवदौरसेनैव पुत्राणां शतकं मम । भविष्यति महाभाग वरमेतन्मदीप्सितम् ॥१०॥
मत्पितुः पुत्रशतकं श्वशुरस्य च चक्षुषी । राज्यलाभो भवत्वेवं वरमेवं मदीप्सितम् ॥११॥
अन्ते सत्यवता सार्धं यास्यामि हरिमन्दिरम् । समतीते लक्षवर्षे देहीमं मे जगत्प्रभो ॥१२॥
जीवकर्मविपाकं च श्रोतुं कौतूहलं च मे । विश्वविस्तारबीजं च तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥१३॥

यम उवाच

भविष्यति महासाध्वि सर्वं मानसिकं तव । जीवकर्मविपाकं च कथयामि निशामय ॥१४॥
शुभानामशुभानां च कर्मणां जन्म भारते । पुण्यक्षेत्रेऽत्र सर्वत्र नान्यत्र भुञ्जते जनाः ॥१५॥
सुरा दैत्या दानवाश्च गन्धर्वा राक्षसादयः । नराश्च कर्मजनका न सर्वे समजीविनः ॥१६॥
विशिष्टजीविनः कर्म भुञ्जते सर्वयोनिषु । शुभाशुभं च सर्वत्र स्वर्गेषु नरकेषु च ॥१७॥
विशेषतो मानवाश्च भ्रमन्ति सर्वयोनिषु । शुभाशुभं भुञ्जते च कर्म पूर्वार्जितं परम् ॥१८॥
शुभेन कर्मणा यान्ति ते स्वर्गादिकमेव च । कर्मणा चाशुभेनैव भ्रमन्ति नरकेषु च ॥१९॥
कर्मनिर्मूलने मुक्तिः सा चोक्ता द्विविधा मता । निर्वाणरूपा सेवा च कृष्णस्य परमात्मनः ॥२०॥

सावित्री बोली—हे महाभाग ! सत्यवान् के द्वारा मेरे सौ पुत्र उत्पन्न हों, यह मेरी बड़ी अभिलाषा है तथा हमारे पिता के सौ पुत्र हों, श्वशुर की आँखें ठीक हो जायँ और मुझे राज्य लाभ हो, यह मेरी अभिलाषा पूरी कीजिए ॥१०-११॥ जगत्प्रभो ! (सत्यवान् के साथ) एक लाख वर्षों तक (परम सुखानुभव) करने के अनन्तर उनके साथ विष्णु लोक जाऊँ, मुझे यह भी वरदान दीजिए ॥१२॥ प्रभो ! मुझे जीव का कर्मविपाक तथा विश्व से तर जाने का उपाय भी सुनने के लिए मन में महान् कौतूहल हो रहा है, अतः आप यह मी बताएँ ॥१३॥

यम बोले—महापतिव्रते ! तुम्हारे सभी मनोरथ सफल होंगे। अब जीवों का कर्म-फल बता रहा हूँ, सुनो ! इस पुण्य क्षेत्र भारत में शुभ और अशुभ कर्मों का जन्म होता है और इसी क्षेत्र में लोग कर्मों के फल भोगते हैं अन्यत्र नहीं ॥१४-१५॥ देव, दैत्य, दानव, गन्धर्व, राक्षस और मनुष्य सभी कर्मों के फल भोगते हैं, परन्तु सब का जीवन समान नहीं है ॥१६॥ उनमें से मानव ही कर्म का जनक होता है अर्थात् मनुष्य-योनि में ही शुभाशुभ कर्म किये जाते हैं, जिनका फल सर्वत्र स्वर्गों तथा नरकों में भी भोगना पड़ता है। विशेषतः मानव ही सब योनियों में कर्मों का फल भोगते हैं और सभी योनियों में भटकते हैं। वे पूर्वजन्म का किया हुआ शुभाशुभ कर्म भोगते हैं। शुभ कर्म के प्रभाव से वे स्वर्गलोक में जाते हैं और अशुभ कर्म से उन्हें नरक में भटकना पड़ता है। कर्म का निर्मूलन हो जाने पर मुक्ति होती है। पतिव्रते ! मुक्ति दो प्रकार की बतलायी गई है—एक निर्वाणरूपा और दूसरी परमात्मा श्रीकृष्ण की सेवारूपा। बुरे कर्म से प्राणी रोगी होता है और शुभ कर्म से नीरोग। वह अपने शुभाशुभ कर्म के अनुसार दीर्घजीवी, अल्पायु, सुखी एवं दुःखी होता है। कुत्सित कर्म से ही प्राणी अंगहीन, अंधे, बहरे आदि

रोगी कुकर्मणा जीवश्चारोगी शुभकर्मणा । दीर्घजीवी च क्षीणायुः सुखी दुःखी च निश्चितम् ।।२१।।
अन्धादयश्चाङ्गहीनाः कुत्सितेन च कर्मणा । सिद्ध्यादिकमवाप्नोति सर्वोत्कृष्टेन कर्मणा ।।२२।।
सामान्यं कथितं सर्वं विशेषं शृणु सुन्दरि । सुदुर्लभं सुभोग्यं च पुराणेषु श्रुतिष्वपि ।।२३।।
दुर्लभा मानवी जातिः सर्वजातिषु भारते । सर्वाभ्यो ब्राह्मणः श्रेष्ठः प्रशस्तः सर्वकर्मसु ।।२४।।
विष्णुभक्तो द्विजश्चैव गरीयान्भारते ततः । निश्कामश्च सकामश्च वैष्णवो द्विविधः सति ।।२५।।
सकामश्च प्रधानश्च निष्कामो भक्त एव च । कर्मभोगी सकामश्च निष्कामो निरुपद्रवः ।।२६।।
स याति देहं त्यक्त्वा च पदं विष्णोर्निरामयम् । पुनरागमनं नास्ति तेषां निष्कामिणां सति ।।२७।।
ये सेवन्ते च द्विभुजं कृष्णमात्मानमीश्वरम् । गोलोकं यान्ति ते भक्ता दिव्यरूपविधारिणः ।।२८।।
ये च नारायणं भक्ताः सेवन्ते च चतुर्भुजम् । वैकुण्ठं यान्ति ते सर्वे दिव्यरूपविधारिणः ।।२९।।
सकामिनो वैष्णवाश्च गत्वा वैकुण्ठमेव च । भारतं पुनरायान्ति तेषां जन्म द्विजातिषु ।।३०।।
कालेन ते च निष्कामा भविष्यन्ति क्रमेण च । भक्तिं च निर्मलां बुद्धिं तेभ्यो दास्यति निश्चितम् ।।३१।।
ब्राह्मणाद्वैष्णवादन्ये सकामाः सर्वजन्मसु । न तेषां निर्मला बुद्धिर्विष्णुभक्तिविवर्जिताः। ।३२।।
तीर्थाश्रिता द्विजा ये च तपस्यानिरताः सति । ते यान्ति ब्रह्मलोकं च पुनरायान्ति भारतम् ।।३३।।
स्वधर्मनिरता विप्राः सूर्यभक्ताश्च भारतं । व्रजन्ति सूर्यलोकं तं पुनरायान्ति भारतम् ।।३४।।

होते हैं। उत्तम कर्म के फलस्वरूप सिद्धि आदि की प्राप्ति होती है ।।१७-२१।। इस प्रकार मैंने सामान्य कर्म फल बता दिया है, अब विशेष बातें सुनो। जिसे पुराणों और श्रुतियों में अत्यन्त दुर्लभ बताया गया है।।२२-२३।। सभी जातियों के लिए भारत में मनुष्य का जन्म पाना परम दुर्लभ है। साध्वी ! उन सब जातियों में ब्राह्मण श्रेष्ठ हैं, जो सभी कर्मों के लिए प्रशस्त कहे गए हैं। भारत में विष्णुभक्त द्विज सबसे श्रेष्ठ होते हैं। निष्काम और सकाम भेद से वैष्णव दो प्रकार के होते हैं ।।२४-२५।। सकाम वैष्णव कर्म प्रधान होते हैं और निष्काम वैष्णव केवल भक्त। सकाम वैष्णव कर्मों का फल भोगता है और निष्काम वैष्णव शुभाशुभ भोग के उपद्रव से दूर रहता है ।।२६।। वह निष्काम (भक्त) देह त्यागने पर निरामय विष्णु लोक को प्राप्त करता है और निष्काम होने के नाते उसका यहाँ पुनः आगमन नहीं होता है ।।२७।। जो भक्त दो भुजाधारी पूर्णब्रह्म परमेश्वर श्रीकृष्ण की उपासना करते हैं वे अन्त में दिव्य रूप धारण करके गोलोक में जाते हैं ।।२८।। जो भक्त चतुर्भुज भगवान् विष्णु की सेवा करते हैं, वे दिव्य रूप धारण करके वैकुण्ठ लोक में जाते हैं ।।२९।। किन्तु सकाम वैष्णव वैकुण्ठ में जाकर पुनः यहाँ भारत में लौट आते हैं और द्विजातियों में जन्म ग्रहण करते हैं ।।३०।। समय पाकर क्रमशः वे भी निष्काम भक्त होते हैं, क्योंकि भगवान् उन्हें भी भक्ति और निर्मल बुद्धि निश्चित रूप से प्रदान करते हैं ।।३१।। ब्राह्मण वैष्णव से अन्य लोग सभी जन्मों में सकाम वैष्णव ही होते हैं किन्तु भगवान् विष्णु की भक्ति से रहित होने के कारण उनकी बुद्धि निर्मल नहीं होती है ।।३२।। तीर्थ में रह कर जो ब्राह्मण तपस्या में लीन रहते हैं, वे ब्रह्मलोक को जाते हैं और (पुण्य भोग के पश्चात्) पुनः यहाँ भारत में आते हैं ।।३३।। भारत में स्वधर्म में संलग्न रहते हुए जो ब्राह्मण सूर्य के भक्त होते हैं, वे सूर्य-लोक को जाते हैं तथा (पुण्य भोग के पश्चात्) पुनः भारत में आते हैं ।।३४।। इसी प्रकार **स्वधर्माचरण**

स्वधर्मनिरता विप्राः शैवाः शाक्ताश्च गाणपाः । तं यान्ति शिवलोकं च पुनरायान्ति भारतम् ।।३५।।
ये विप्रा अन्यदेवेष्टाः स्वधर्मनिरताः सति । ते गत्वा शक्रलोकं च पुनरायान्ति भारतम् ।।३६।।
हरिभक्ताश्च निष्कामाः स्वधर्मरहिता द्विजाः । तेऽपि यान्ति हरेर्लोकं क्रमाद्भक्तिबलादहो ।।३७।।
स्वधर्मरहिता विप्रा देवान्यसेविनः सदा । भ्रष्टाचाराश्च [1]वामाश्च ते यान्ति नरकं ध्रुवम् ।।३८।।
स्वधर्मनिरताश्चैवं वर्णाश्चत्वार एव च । भवन्त्येव शुभस्यैव कर्मणः फलभागिनः ।।३९।।
स्वधर्मरहितास्ते च नरकं यान्ति हि ध्रुवम् । भारते च भवन्त्येव कर्मणः फलभागिनः ।।४०।।
स्वधर्मनिरता विप्राः स्वधर्मनिरताय च । कन्यां ददति विप्राय चन्द्रलोकं व्रजन्ति ते ।।४१।।
वसन्ति तत्र ते साध्वि यावदिन्द्राश्चतुर्दश । सालंकृताया दानेन द्विगुणं फलमुच्यते ।।४२।।
सकामा यान्ति तल्लोकं न निष्कामाश्च वैष्णवा । ते प्रयान्ति विष्णुलोकं फलसंधानवर्जिताः ।।४३।।
गव्यं च रजतं भार्यां वस्त्रं सस्यं फलं जलम् । ये ददत्येव विप्रेभ्यस्तल्लोकं हि व्रजन्ति च ।।४४।।
वसन्ति ते[2] च तल्लोकं यावन्मन्वन्तरं सति । कालं च सुचिरं वासं कुर्वन्ति तत्र ते जनाः ।।४५।।
ये ददति सुवर्णं च गां च ताम्रादिकं सति । ते यान्ति सूर्यलोकं च शुचये ब्राह्मणाय च ।।४६।।

करते हुए जो ब्राह्मण शिव, शक्ति (दुर्गा) और गणेश के भक्त होते हैं, वे शिवलोक में जाते हैं और (पुण्य भोग के पश्चात्) पुनः भारत में लौट आते हैं ।।३५।। जो ब्राह्मण अन्य किसी देव को इष्ट मान कर स्वधर्मानुष्ठानपूर्वक उसकी आराधना करते हैं, वे इन्द्रलोक में जाते हैं और (पुण्य भोग के पश्चात्) पुनः भारत में आते हैं ।।३६।। निष्काम कर्म करने वाले ब्राह्मण, जो भगवान् के भक्त हैं किन्तु अपने (जातीय) धर्म से रहित हैं, वे भी क्रमशः अपनी भक्ति के बल से विष्णु के ही लोक में जाते हैं ।।३७।। जो ब्राह्मण स्वधर्म से रहित हैं, देवेतर की सेवा करते हैं तथा भ्रष्टाचारी और वामाचारी हैं, वे निश्चित ही नरक में जाते हैं ।।३८।। इस प्रकार चारों वर्णों के लोग अपने-अपने (जातीय) कर्मों में संलग्न रहें तो उन्हें शुभ कर्मों का ही फलभागी जानना चाहिए ।।३९।। यदि वे अपने-अपने धर्मों से च्युत होते हैं तो निश्चित ही नरक में जाते हैं क्योंकि भारत में कर्मों का फलभागी होना ही पड़ता है ।।४०।। स्वधर्मानुष्ठान करने वाले ब्राह्मण यदि अपनी कन्या स्वधर्माचारी को देते हैं, तो वे चन्द्रलोक में जाते हैं ।।४१।। और वहाँ चौदह इन्द्रों के समय तक रहते हैं। साध्वी ! यदि कन्या को अलङ्कार आदि से विभूषित करके दान में दिया जाय तो उससे दुगुना फल प्राप्त होता है ।।४२।। किन्तु कामना वाले ब्राह्मण ही वहाँ जाते हैं, निष्काम वैष्णव नहीं। वे तो फल की आशा से पृथक् रहने के कारण भगवान् विष्णु के ही लोक में जाते हैं ।।४३।। गौ के दूध, घी आदि एवं चाँदी, भार्या, वस्त्र, अनाज, फल और जल का दान करने वाले भी उसी लोक में जाते हैं ।।४४।। और मन्वन्तर के समय तक वे वहाँ रहते हैं। इस प्रकार वे वहाँ अति चिरकाल तक निवास करते हैं ।।४५।। पवित्र (सदाचारी) ब्राह्मण को सुवर्ण, गौ एवं ताँबे आदि का दान करने वाले पुरुष सूर्यलोक में जाते हैं ।।४६।। वे वहाँ

---

१ ख. ०बालाश्च। २ क. ते विष्णलोकं।

वसन्ति तत्र ते लोके वर्षाणामयुतं सति। विपुलं सुचिरं वासं कुर्वन्ति च निरामयाः ॥४७॥
ददाति भूमिं विप्रेभ्यो धान्यानि विपुलानि च। स याति विष्णुलोकं च श्वेतद्वीपं मनोहरम् ॥४८॥
तत्रैव निवसत्येव यावच्चन्द्रदिवाकरौ। विपुलं विपुले वासं करोति पुण्यवान्सति ॥४९॥
गृहं ददति विप्राय ये जना भक्तिपूर्वकम्। ते यान्ति सुरलोकं च चिरं तत्र भवन्ति ते ॥५०॥
गृहरेणुप्रमाणाब्दं दानं पुण्यदिने यदि। विपुलं विपुले वासं कुर्वन्ति मानवाः सति ॥५१॥
यस्मै यस्मै च देवाय यो ददाति गृहं नरः। स याति तस्य लोकं च रेणुमानाब्दमेव च ॥५२॥
सौधे चतुर्गुणं पुण्यं पूर्ते शतगुणं फलम्। प्रकृष्टेऽष्टगुणं तस्मादित्याह कमलोद्भवः ॥५३॥
यो ददाति तडागं च सर्वभूताय भारते। स याति जनलोकं च वर्षाणामयुतं सति ॥५४॥
वाप्यां फलं शतगुणं प्राप्नोति मानवस्ततः। तथा सेतुप्रदानेन तडागस्य फलं लभेत् ॥५५॥
धनुश्चतुःसहस्रेण दैर्घ्यमानेन निश्चितम्। न्यूना वा तावती प्रस्थे सा वापी परिकीर्तिता ॥५६॥
दशवापीसमा कन्या यदि पात्रे प्रदीयते। फलं ददाति द्विगुणं यदि सालंकृता भवेत् ॥५७॥
यत्फलं च तडागे च पङ्कोद्धारेण तत्फलम्। वाप्याश्च पङ्कोद्धारेण वापीतुल्यफलं लभेत् ॥५८॥
अश्वत्थवृक्षमारोप्य प्रतिष्ठां च करोति यः। स याति तपसो लोकं वर्षाणामयुतं परम् ॥५९॥

दश सहस्र वर्षों तक निवास करते हैं। अनन्तर बिना किसी बाधा के पुनः चिरकाल तक वास करते हैं ॥४७॥ ब्राह्मण को भूमि और विपुल धान्य देने वाले व्यक्ति विष्णुलोक में तथा मनोरम श्वेत द्वीप में जाते हैं ॥४८॥ वहाँ चन्द्रमा और सूर्य के समय तक निवास करते हुए वे पुण्यवान् व्यक्ति उस विपुल स्थान में चिरकाल तक निवास करते हैं ॥४९॥ ब्राह्मण को भक्तिपूर्वक गृह दान देने वाले व्यक्ति देवलोक में जाकर चिर निवास करते हैं ॥५०॥ यदि किसी शुभ अवसर पर वह, वही दान करता है, तो वह उस गृह के रजकण जितने वर्षों तक उस दान के फलस्वरूप उस विशाल लोक में चिर निवास करता है ॥५१॥ इस प्रकार जो मनुष्य जिस देव के निमित्त गृह दान करता है, उस देव के लोक में उस गृह के रेणु प्रमाण वर्षों तक वह निवास करता है ॥५२॥ अपने घर पर दान करने की अपेक्षा देव-मन्दिर में दान करने से चौगुना, पूतकर्म (वापी, कूप, तड़ाग आदि के निर्माण) के अवसर पर करने से सौगुना तथा किसी श्रेष्ठ तीर्थस्थान में करने से आठगुना फल होता है—ऐसा ब्रह्मा ने कहा है ॥५३॥ भारत में समस्त प्राणियों के हितार्थ जो तड़ाग बनवा कर दान करता है, वह दश सहस्र वर्षों तक जन-लोक में निवास करता है ॥५४॥ बावली का दान करने से मनुष्य को सदा सौगुना फल मिलता है। सेतु (पुल) दान करने से तड़ाग के दान का पुण्यफल प्राप्त होता है ॥५५॥ तड़ाग का प्रमाण चार सहस्र धनुष (१ धनुष= ४हाथ चौड़ा और उतना ही लम्बा) निश्चित किया गया है। इससे जो लघु प्रमाण में है, उसे बावली कहते हैं ॥५६॥ किसी (सु) पात्र को कन्या दान देने पर दश बावलियाँ दान करने का पुण्य प्राप्त होता है। यदि (आभूषण आदि से) अलंकृत करके कन्या का दान किया जाता है, तो उससे दुगुना फल मिलता है ॥५७॥ वापी और तड़ाग बनवाने से जो पुण्य होता है, वही पुण्य उसके जीर्णोद्धार (कीचड़ दूर कराने) से होता है ॥५८॥ पीपल का वृक्ष लगा कर जो उसकी प्रतिष्ठा करता है, वह दश सहस्र वर्षों तक तपोलोक में निवास करता है ॥५९॥ सावित्री !

पुष्पोद्यानं यो ददाति सावित्रि सर्वभूतये। स वसेद्ध्रुवलोके च वर्षाणामयुतं ध्रुवम् ॥६०॥
यो ददाति विमानं च विष्णवे भारते सति। विष्णुलोके वसेत्सोऽपि यावन्मन्वन्तरं परम् ॥६१॥
चित्रयुक्ते च विपुले फलं तस्य चतुर्गुणम्। रथार्धं शिबिकादाने फलमेव लभेद्ध्रुवम् ॥६२॥
यो ददाति भक्तियुक्तो हरये दोलमन्दिरम्। विष्णुलोके वसेत्सोऽपि यावन्मन्वन्तरं परम् ॥६३॥
राजमार्गं सौधयुक्तं यः करोति पतिव्रते। वर्षाणामयुतं सोऽपि शक्रलोके महीयते ॥६४॥
ब्राह्मणेभ्योऽपि देवेभ्यो दाने समफलं लभेत्। यच्च दत्तं हि तद्भोक्तुं दत्तं नोपतिष्ठते ॥६५॥
भुक्त्वा स्वर्गादिकं सौख्यं पुनरायान्ति भारते। लभेद्विप्रकुलेष्वेव क्रमेणैवोत्तमादिषु ॥६६॥
भारते पुण्यवान्विप्रो भुक्त्वा स्वर्गादिकं परम्। पुन सोऽपि भवेद्विप्रो न पुनः क्षत्रियादयः ॥६७॥
क्षत्रियो वापि वैश्यो वा कल्पकोटिशतेन च। तपसा ब्राह्मणत्वं च न प्राप्नोति श्रुतौ श्रुतम् ॥६८॥
स्वधर्मरहिता विप्रा नानायोनिं व्रजन्ति च। भुक्त्वा च कर्मभोगं च विप्रयोनिं लभेत्पुनः ॥६९॥
नाऽभुक्तं क्षीयते कर्म कल्पकोटिशतैरपि। अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम् ॥७०॥

समस्त प्राणियों के हित के लिए जो पुष्पवाटिका (फुलवाड़ी) का दान करता है, वह ध्रुवलोक में दश सहस्र वर्षों तक निश्चित रूप से निवास करता है ॥६०॥ भारतवर्ष में जो भगवान् विष्णु के लिए विमान (रथ) का दान करता है, वह एक मन्वन्तर के समय तक विष्णुलोक में निवास करता है ॥६१॥ चित्र-विचित्र एवं विशाल रथ का दान करने पर उससे चौगुने पुण्य और शिबिका (पालकी) दान करने पर रथ का आधा पुण्यफल प्राप्त होता है, इसमें सन्देह नहीं ॥६२॥ जो भक्तिपूर्वक भगवान् विष्णु को मन्दिराकार झूला समर्पित करता है, वह मन्वन्तर के समय तक विष्णुलोक में निवास करता है ॥६३॥ हे पतिव्रते! जो सड़क बनवाता और उसमें लोगों के ठहरने के लिए महल (धर्मशाला) बनवा देता है, वह दश सहस्र वर्षों तक इन्द्रलोक में पूजित होता है ॥६४॥ इस प्रकार ब्राह्मणों और देवों को दान देने से दान का फल समान ही होता है। जो पूर्व जन्म में दिया गया है, वही जन्मान्तर में प्राप्त होता है। जो नहीं दिया गया है, वह कैसे प्राप्त हो सकता है ॥६५॥ ऐसे व्यक्ति स्वर्ग आदि के सुख का अनुभव करने के उपरान्त यहाँ भारतवर्ष में क्रमशः (दान के अनुसार) उत्तम-मध्यम आदि ब्राह्मणों के कुल में ही जन्म ग्रहण करते हैं। भारत के निवासी पुण्यवान् ब्राह्मण स्वर्ग आदि लोकों के उत्तम सुखों का अनुभव करके पुनः यहाँ ब्राह्मण कुल में ही उत्पन्न होते हैं। किन्तु क्षत्रिय आदि के लिए ऐसा नियम नहीं है ॥६६-६७॥ क्षत्रिय और वैश्य सौ करोड़ कल्प में भी तप करने के द्वारा ब्राह्मणत्व नहीं प्राप्त कर सकते हैं, ऐसा वेद में सुना गया है ॥६८॥ अपने धर्म-कर्म से रहित ब्राह्मण अनेक योनियों में घूमते हैं और वहाँ कर्म भोगों को भोगने के अनन्तर पुनः ब्राह्मण कुल में उत्पन्न होते हैं ॥६९॥ सैकड़ों करोड़ कल्पों के व्यतीत होने पर भी बिना भोग किये कर्म नष्ट नहीं होता है। शुभ तथा अशुभ कर्मों का फल अवश्यमेव भोगना पड़ता है ॥७०॥ देवता तथा तीर्थ की सहायता और

देवतीर्थे सहायेन कायव्यूहेन शुध्यति । एतत्ते कथितं[1] सर्वं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥७१॥

इति श्रीब्रह्म० महा० नारदना० प्रकृति० सावित्र्यु० कर्मविपाके
कर्मानुरूपस्थानगमनं नाम षड्विंशोऽध्यायः ॥२६॥

अथ सप्तविंशोऽध्यायः

सावित्र्युवाच

प्रयान्ति स्वर्गमन्यं च येन येनैव कर्मणा । मानवाः पुण्यवन्तश्च तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥१॥

यम उवाच

अन्नदानं च विप्राय यः करोति च भारते । अन्नप्रमाणवर्षं च शक्रलोके महीयते ॥२॥
अन्नदानात्परं दानं न भूतं न भविष्यति । नात्र पात्रपरीक्षा स्यान्न कालनियमः क्वचित् ॥३॥
देवेभ्यो ब्राह्मणेभ्यो वा ददाति चाऽऽसनं यदि । महीयते वह्निलोके वर्षाणामयुतं ध्रुवम् ॥४॥
यो ददाति च विप्राय दिव्यां धेनुं पयस्विनीम् । तल्लोममानवर्षं च वैकुण्ठे च महीयते ॥५॥

कायव्यूह से प्राणी शुद्ध हो जाता है। पतिव्रते ! ये सब बातें तुम्हें बता दी गईं, अब पुनः क्या सुनना चाहती हो ? ॥७१॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के प्रकृति-खण्ड में सावित्री-उपाख्यान के कर्म-विपाक-प्रकरण में
कर्मानुरुपस्थान में जाने का वर्णन नामक छब्बीसवाँ अध्याय समाप्त ॥२६॥

अध्याय २७

सावित्री-धर्मराज के प्रश्नोत्तार

सावित्री बोली—पुण्यवान् मनुष्य जिन-जिन कर्मों द्वारा स्वर्ग तथा अन्य लोकों को प्राप्त करते हैं, उन्हें बताने की कृपा करें ॥१॥

यम बोले—भारतवर्ष में जो ब्राह्मण को अन्नदान देता है, वह दान किये हुए अन्न में जितने दाने होते हैं उतने वर्षों तक इन्द्रलोक में पूजित होता है ॥२॥ क्योंकि अन्नदान से उत्तम दूसरा दान न हुआ है और न होगा। इसमें (लेने वाले) पात्र की परीक्षा नहीं की जाती और (देने के लिए) समय का कोई नियम भी नहीं है ॥३॥ देवों या ब्राह्मणों को आसन प्रदान करने पर, दश सहस्र वर्षों तक अग्निलोक में रहने की सुविधा प्राप्त होती है ॥४॥ जो ब्राह्मणों को दूध देनेवाली दिव्य गौ का दान देता है, वह उस (गाय) के लोमप्रमाण वर्षों तक वैकुण्ठ लोक में

---

१ क. ०तं किंचित्किं।

चतुर्गुणं पुण्यदिने तीर्थे शतगुणं फलम् । दानं नारायणक्षेत्रे फलं कोटिगुणं भवेत् ॥६॥
गां यो ददाति विप्राय भारते भक्तिपूर्वकम् । वर्षाणामयुतं चैव चन्द्रलोके महीयते ॥७॥
यश्चोभयमुखीदानं करोति ब्राह्मणाय च । तल्लोममानवर्षं च वैकुण्ठे च महीयते ॥८॥
यो ददाति ब्राह्मणाय शालिग्रामं सवस्त्रकम् । महीयते स वैकुण्ठे यावच्चन्द्रदिवाकरौ ॥९॥
यो ददाति ब्राह्मणाय च्छत्रं च सुमनोहरम् । वर्षाणामयुतं सोऽपि मोदते वरुणालये ॥१०॥
विप्राय पादुकायुग्मं यो ददाति च भारते । महीयते वायुलोके वर्षाणामयुतं सति ॥११॥
यो ददाति ब्राह्मणाय शय्यां दिव्यां मनोहराम् । महीयते चन्द्रलोके यावच्चन्द्रदिवाकरौ ॥१२॥
यो ददाति प्रदीपं च देवाय ब्राह्मणाय च । यावन्मन्वन्तरं सोऽपि [1]ब्रह्मलोके महीयते ॥१३॥
संप्राप्य मानवीं योनिं चक्षुष्मांश्च भवेद्ध्रुवम् । न याति यमलोकं च तेन पुण्येन सुन्दरि ॥१४॥
करोति गजदानं च यो हि विप्राय भारते । यावदिन्द्रादिदेवस्य लोके चार्धासने वसेत् ॥१५॥
भारते योऽश्वदानं च करोति ब्राह्मणाय च । मोदते वारुणे लोके यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥१६॥
प्रकृष्टां शिबिकां यो हि ददाति ब्राह्मणाय च । महीयते विष्णुलोके यावन्मन्वन्तरं सति ॥१७॥
यो ददाति च विप्राय व्यजनं श्वेतचामरम् । महीयते वायुलोके वर्षाणामयुतं ध्रुवम् ॥१८॥

पूजित होता है ॥५॥ किसी पुण्य अवसर पर उसका दान करने से चौगुना पुण्य, तीर्थ में दान करने से सौगुना और नारायण क्षेत्र में दान करने से करोड़ गुना फल मिलता है ॥६॥ भारतवर्ष में जो भक्तिपूर्वक ब्राह्मण को गौ प्रदान करता है, वह चन्द्रलोक में दश सहस्र वर्षों तक पूजित होता है ॥७॥ जो ब्राह्मण को उभयमुखी (ब्याती हुई) गाय प्रदान करता है, वह उसके लोम प्रमाण वर्षों तक वैकुण्ठ में निवास करता है ॥८॥ जो वस्त्र समेत शालग्राम की मूर्ति ब्राह्मण को अर्पित करता है, वह चन्द्र-सूर्य के समय तक वैकुण्ठ में सम्मानपूर्वक रहता है ॥९॥ जो ब्राह्मण को अति मनोरम छत्र समर्पित करता है, वह भी दस सहस्र वर्षों तक वरुण लोक में आनन्दपूर्ण जीवन बिताता है ॥१०॥ भारतवर्ष में ब्राह्मण को पादुकाएँ प्रदान करने वाला दश सहस्र वर्षों तक वायुलोक में सम्मान प्राप्त करता है ॥११॥ दिव्य एवं मनोहर शय्या का दान ब्राह्मण को समर्पित करने से मनुष्य चन्द्रलोक में चन्द्र-सूर्य के समय तक सम्मान प्राप्त करता है ॥१२॥ सुन्दरी ! जो व्यक्ति देवता और ब्राह्मण को दीप प्रदान करता है, वह ब्रह्मलोक में मन्वन्तर के समय तक पूजित होता है ॥१३॥ उस पुण्य से उसके नेत्रों में ज्योति बनी रहती है और वह यमलोक में नहीं जाता है ॥१४॥ भारत में जो ब्राह्मण को गज प्रदान करता है, वह इन्द्र आदि देवों के लोक में उनके समय तक उनके सिंहासन के आधे भाग पर सुशोभित रहता है ॥१५॥ भारत में ब्राह्मण को जो अश्व प्रदान करता है, वह चौदहों इन्द्रों के समय तक वरुण लोक में आनन्द का अनुभव करता है ॥१६॥ जो ब्राह्मण को सुन्दर शिविका (पालकी) प्रदान करते हैं, वे विष्णु लोक में मन्वन्तर के समय तक सम्मानित होते हैं ॥१७॥ जो ब्राह्मण को श्वेत चामर (चँवर) अर्पित करता है, वह दश सहस्र वर्षों तक वायुलोक में पूजित होता है ॥१८॥ जो भारत में ब्राह्मण

---

१ क. वह्निलो० ।

धान्याचलं यो ददाति ब्राह्मणाय च भारते। स च धान्यप्रमाणाब्दं विष्णुलोके महीयते॥१९॥
ततः स्वयोनिं संप्राप्य चिरजीवी भवेत्सुखी। दाता ग्रहीता तौ द्वौ च ध्रुवं वैकुण्ठगामिनौ॥२०॥
सततं श्रीहरेर्नाम भारते यो जपेन्नरः। स एव चिरजीवी च ततो मृत्युः पलायते॥२१॥
यो नरो भारते वर्षे दोलनं कारयेद्धरेः। पूर्णिमारजनीशेषे जीवन्मुक्तो भवेन्नरः॥२२॥
इह लोके सुखं भुक्त्वा यात्यन्ते विष्णुमन्दिरम्। निश्चितं निवसेत्तत्र शतमन्वन्तरावधि॥२३॥
फलमुत्तरफाल्गुन्यां ततोऽपि द्विगुणं भवेत्। कल्पान्तजीवी स भवेदित्याह कमलोद्भवः॥२४॥
तिलदानं ब्राह्मणाय यः करोति च भारते। तिलप्रमाणवर्षं च मोदते विष्णुमन्दिरे॥२५॥
ततः स्वयोनिं संप्राप्य चिरजीवी भवेत्सुखी। ताम्रपात्रस्थदानेन द्विगुणं च फलं लभेत्॥२६॥
सालंकृतां च भोग्यां च सवस्त्रां सुन्दरीं प्रियाम्। यो ददाति ब्राह्मणाय भारते च पतिव्रताम्॥२७॥
महीयते चन्द्रलोके यावदिन्द्राश्चतुर्दश। तत्र स्वर्वेश्यया सार्धं मोदते च दिवानिशम्॥२८॥
ततो गन्धर्वलोके च वर्षाणामयुतं सति। दिवानिशं कौतुकेन चोर्वश्या सह मोदते॥२९॥
ततो जन्मसहस्रं च प्राप्नोति सुन्दरीं प्रियाम्। सतीं सौभाग्ययुक्तां च कोमलां प्रियवादिनीम्॥३०॥
ददाति सफलं वृक्षं ब्राह्मणाय च यो नरः। फलप्रमाणवर्षं च शक्रलोके महीयते॥३१॥

को धान का पर्वत अर्पित करता है, वह धान के दानों के बराबर वर्षों तक विष्णुलोक में प्रतिष्ठित होता है॥१९॥ पश्चात् पुनः मनुष्य योनि में उत्पन्न होकर सुखी तथा चिरजीवी होता है। इस प्रकार दाता (देनेवाला) और गृहीता (लेनेवाला) दोनों ही (अन्त में) निश्चित रूप से वैकुण्ठ में जाते हैं॥२०॥ भारत में जो मनुष्य निरन्तर श्री विष्णु भगवान् के नाम का जप करता है, वह चिरजीवी होता है तथा उसे देखते ही मृत्यु भाग जाती है॥२१॥ भारत में जो मनुष्य पूर्णिमा की रात्रि में भगवान् श्रीकृष्ण के निमित्त झूला (हिंडोला) अर्पित करता है, वह जीवन्मुक्त होता है॥२२॥ इस लोक में सुखानुभव करने के अनन्तर वह विष्णुलोक में जाता है और वहाँ सौ मन्वन्तरों के समय तक निश्चित रूप से निवास करता है॥२३॥ उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र में दोलोत्सव मनाने से दुगुना फल प्राप्त होता है और ऐसा व्यक्ति कल्पान्त पर्यन्त जीवित रहता है, ऐसा ब्रह्मा ने कहा है॥२४॥ जो भारत में ब्राह्मण को तिल अर्पित करता है, वह उस तिल के दाने के बराबर वर्षों तक भगवान् विष्णु के धाम में आनन्द प्राप्त करता है॥२५॥ अनन्तर वह मनुष्य-योनि में उत्पन्न होकर चिरकाल तक सुखी जीवन व्यतीत करता है। ताँबे के पात्र में तिल रखकर दान करने से दुगुना फल प्राप्त होता है॥२६॥ जो अपनी प्रियतमा सुन्दरी स्त्री को, जो भोग के उपयुक्त एवं पतिव्रता हो, सुन्दर वस्त्र तथा अलङ्कारों से विभूषित करके ब्राह्मण को समर्पित करता है वह चौदहों इन्द्रों के समय तक चन्द्रलोक में पूजित होता है और वहाँ अप्सराओं के साथ दिनरात आनन्द का जीवन व्यतीत करता है॥२७-२८॥ अनन्तर दश सहस्र वर्षों तक गन्धर्व लोक में उर्वशी के साथ दिनरात आमोद-प्रमोद करता है॥२९॥ उसके पश्चात् सहस्रों जन्मों तक (इस लोक में) अत्यन्त सुन्दरी प्रियतमा प्राप्त करता है, जो पतिव्रता, सौभाग्यशालिनी, अतिकोमलाङ्गी एवं मधुरभाषिणी होती है॥३०॥ जो ब्राह्मण को फलयुक्त वृक्ष प्रदान करता है, वह फल के बराबर वर्षों तक इन्द्र-लोक में पूजित होता है॥३१॥ अनन्तर मनुष्य योनि में

पुनः स्वयोनिं संप्राप्य लभते सुतमुत्तमम् । सफलानां च वृक्षाणां सहस्रं च प्रशंसितम् ॥३२॥
केवलं फलदानं च ब्राह्मणाय ददाति यः । सुचिरं स्वर्गवासं च कृत्वा याति च भारतम् ॥३३॥
नानाद्रव्यसमायुक्तं नानासस्यसमन्वितम् । ददाति यश्च विप्राय भारते विपुलं गृहम् ॥३४॥
कुबेरलोके वसति स च मन्वन्तरावधि । ततः स्वयोनिं संप्राप्य महांश्च धनवान्भवेत् ॥३५॥
यो जनः सस्यसंयुक्तां भूमिं च रुचिरां सति । ददाति भक्त्या विप्राय पुण्यक्षेत्रे च वा सति ॥३६॥
महीयते स वैकुण्ठे मन्वन्तरशतं ध्रुवम् । पुनः स्वयोनिं संप्राप्य महांश्च भूमिवान्भवेत् ॥३७॥
तं न त्यजति भूमिश्च जन्मनां शतकं परम् । श्रीमांश्च धनवांश्चैव पुत्रवांश्च प्रजेश्वरः ॥३८॥
सप्रजं च प्रकृष्टं च ग्रामं दद्याद्द्विजातये । लक्षमन्वन्तरं चैव वैकुण्ठे स महीयते ॥३९॥
पुनः स्वयोनिं संप्राप्य ग्रामलक्षं लभेद्ध्रुवम् । न जहाति च तं पृथ्वी जन्मनां लक्षमेव च ॥४०॥
सप्रजं सुप्रकृष्टं च पक्वसस्यसमन्वितम् । नानापुष्करिणीवृक्षं फलभोगसमन्वितम् ॥४१॥
नगरं यश्च विप्राय ददाति भारते भुवि । महीयते स वैकुण्ठे दशलक्षेन्द्रकालकम् ॥४२॥
पुनः स्वयोनिं संप्राप्य राजेन्द्रो भारते भवेत् । नगराणां च नियुतं लभते नात्र संशयः ॥४३॥
धरा तं न जहात्येव जन्मनां नियुतं ध्रुवम् । परमैश्वर्यसंयुक्तो भवेदेव महीतले ॥४४॥

उत्पन्न होकर परमोत्तम पुत्र प्राप्त करता है। फल लगे वृक्षों के दान की महिमा सहस्रगुण अधिक बतायी गई है॥३२॥ जो ब्राह्मण को केवल फल का ही दान करता है, वह अतिचिरकाल तक स्वर्गनिवास करके पुनः भारतवर्ष में जन्म पाता है। भारतवर्ष में रहनेवाला जो पुरुष अनेक द्रव्यों से सम्पन्न तथा भाँति-भाँति के धान्यों से भरे-पूरे विशाल भवन ब्राह्मण को दान करता है, वह उसके फल-स्वरूप दीर्घकाल तक कुबेर के लोक में वास पाता है। तत्पश्चात् मनुष्ययोनि में जन्म पाकर वह महान् धनवान् होता है। ॥३३-३५॥ जो मनुष्य पुण्य क्षेत्र में या अन्यत्र फूली-फली मनोहर भूमि किसी ब्राह्मण को भक्तिपूर्वक अर्पित करता है, वह वैकुण्ठ लोक में सौ मन्वन्तरों के समय तक प्रतिष्ठित होता है, और पुनः अन्त में मनुष्ययोनि में उत्पन्न होकर महान 'भूमिस्वामी' बनता है ॥३६-३७॥ सैकड़ों जन्मों तक भूमि उसका त्याग नहीं करती है और वह सदैव श्रीमान्, धनवान् एवं पुत्रवान् राजा बना रहता है॥३८॥ जो प्रजाओं समेत परमोत्तम ग्राम ब्राह्मण को समर्पित करता है, वह वैकुण्ठ में एक लाख मन्वन्तर के समय तक पूजित होता है ॥३९॥ पुनः मानवकुल में उत्पन्न होकर एक लाख ग्रामों का अधीश्वर होता है और लाखों जन्मों तक पृथ्वी उसका त्याग नहीं करती है ॥४०॥ भारत के भूतल पर जो प्रजाओं से सुशोभित अत्यन्त उन्नत, पकी हुई फसलों से सम्पन्न और अनेक बावलियों, फूले-फले वृक्षों से परिपूर्ण नगर ब्राह्मण को प्रदान करता है, वह दश लाख इन्द्रों के समय तक वैकुण्ठ में पूजित होता है॥४१-४२॥ पुनः मनुष्यकुल में उत्पन्न होकर भारत का राजाधिराज होता है और एक लाख नगर उसके अधीन रहते हैं, इसमें संशय नहीं॥४३॥ ऐसे पुरुष को दस हजार जन्मों तक पृथ्वी नहीं छोड़ती है (अर्थात् वह पृथिवीपति होता है)। इस भूतल पर वह सदैव परम ऐश्वर्य से सम्पन्न रहता है॥४४॥ जो भक्तिपूर्वक ब्राह्मण को सौ नगर का देश समर्पित करता

नगराणां च शतकं[1] देशं यो हि द्विजातये। [2]सुप्रकृष्टप्रजायुक्तं ददाति भक्तिपूर्वकम् ॥४५॥
वापीतडागसंयुक्तं नानावृक्षसमन्वितम्। महीयते स वैकुण्ठे कोटिमन्वन्तरावधि ॥४६॥
पुनः स्वयोनिं संप्राप्य जम्बूद्वीपपतिर्भवेत्। परमैश्वर्यसंयुक्तो यथा शक्रस्तथा भुवि ॥४७॥
मही तं न जहात्येव जन्मनां कोटिमेव च। कल्पान्तजीवी स भवेद्राजराजेश्वरो महान् ॥४८॥
स्वाधिकारं समग्रं च यो ददाति द्विजातये। चतुर्गुणं फलं चातो भवेत्तस्य न संशयः ॥४९॥
जम्बूद्वीपं यो ददाति ब्राह्मणाय पतिव्रते। फलं शतगुणं चातो भवेत्तस्य न संशयः ॥५०॥
सप्तद्वीपमहीदातुः सर्वतीर्थानुसेविनः। सर्वेषां तपसां कर्तुः सर्वोपवासकारिणः ॥५१॥
सर्वदानप्रदातुश्च सर्वसिद्धेश्वरस्य च। अन्त्येव पुनरावृत्तिर्न भक्तस्य हरेरहो ॥५२॥
असंख्यब्रह्मणां पातं पश्यन्ति वैष्णवाः सति। निवसन्ति हि गोलोके वैकुण्ठे वा हरेः पदे ॥५३॥
विष्णुमन्त्रोपासकश्च विहाय मानवीं तनुम्। बिभर्ति दिव्यरूपं च जन्ममृत्युजरापहम् ॥५४॥
लब्ध्वा विष्णोश्च सारूप्यं विष्णुसेवां करोति च। स च पश्यति गोलोके ह्यसंख्यं प्राकृतं लयम् ॥५५॥
नश्यन्ति देवाः सिद्धाश्च विश्वानि निखिलानि च। कृष्णभक्ता न नश्यन्ति जन्ममृत्युजराहराः ॥५६॥

है, जो अत्यन्त उन्नत एवं प्रजाओं से सुशोभित और बावली, तालाब एवं अनेक भाँति के वृक्षों से विभूषित हो, वह करोड़ों मन्वन्तरों के समय तक वैकुण्ठ में प्रतिष्ठित होता है। अनन्तर मानव-कुल में उत्पन्न होकर 'जम्बूद्वीप' का 'अधीश्वर' होता है और इन्द्र की भाँति इस भूतल पर महान् ऐश्वर्य का उपभोग करता है॥४५-४७॥ करोड़ों जन्मों तक पृथिवी उसका त्याग नहीं करती है। वह चिरजीवी तथा महाराजाधिराज होता है॥४८॥ जो अपना समस्त अधिकार ब्राह्मण को सर्मपित करता है, वह चौगुने फल का भागी होता है, इसमें संशय नहीं॥४९॥ पतिव्रते! जो ब्राह्मण को जम्बूद्वीप अर्पित करता है, उसे सौगुने फल प्राप्त होते है, इसमें संदेह नहीं॥५०॥ सातों द्वीप समेत इस भूमण्डल का दान करने वाले, समस्त तीर्थों की सेवा करने वाले, समस्त तपस्याओं में संलग्न रहने वाले, सम्पूर्ण उपवास-व्रत के पालक, सर्वस्व दान करने वाले तथा सम्पूर्ण सिद्धियों के पारंगत भी पुनः इस संसार में लौट कर आते हैं (अर्थात् जन्म ग्रहण करते हैं), किन्तु, आश्चर्य है कि भगवान् के भक्त यहाँ लौटकर नहीं आते (अर्थात् उनका पुनर्जन्म नहीं होता है)॥५१-५२॥ वे वैष्णव गोलोक अथवा भगवान् विष्णु के वैकुण्ठ स्थान में रहते हैं और वहीं से असंख्य ब्रह्मा का पात (उत्पत्ति और विलय) देखा करते हैं॥५३॥ भगवान् विष्णु के मन्त्र की उपासना करने वाले पुरुष अपने मानव-शरीर का त्याग कर जन्म, मृत्यु और जरा से रहित दिव्यरूप धारण करते हैं॥५४॥ वहाँ वे विष्णु का सारूप्य पाकर गोलोक में भगवान् कृष्ण की सेवा करते हैं और असंख्य प्राकृत लय को देखते रहते हैं॥५५॥ देवगण, सिद्धगण तथा समस्त विश्व का नाश हो जाता है, किन्तु भगवान् श्रीकृष्ण का भक्त नष्ट नहीं होता। जन्म, मृत्यु एवं जरा उसके पास नहीं फटकती॥५६॥ जो कार्तिक मास में भगवान् को

---

१ क. च नियुतं दे०। २ क. ०प्रसन्नप्र०।

कार्तिके तुलसीदानं करोति हरये च यः। युगं पत्रप्रमाणं च मोदते हरिमन्दिरे ॥५७॥
पुनः स्वयोनिं संप्राप्य हरिभक्तिं लभेद्ध्रुवम्। सुखी च चिरजीवी च स भवेद्भारते भुवि ॥५८॥
घृतप्रदीपं हरये कार्तिके यो ददाति च। पलप्रमाणं वर्षं च मोदते हरिमन्दिरे॥५९॥
पुनः स्वयोनिं संप्राप्य विष्णुभक्तिं लभेद्ध्रुवम्। महाधनाढ्यः स भवेच्चक्षुष्मांश्चैव दीप्तिमान् ॥६०॥
माघे यः स्नाति गङ्गायामरुणोदयकालतः। युगषष्टिसहस्राणि मोदते हरिमन्दिरे ॥६१॥
पुनः स्वयोनिं संप्राप्य विष्णुभक्ति लभेद्ध्रुवम्। जितेन्द्रियाणां प्रवरः स भवेद्भारते भुवि ॥६२॥
माघे यः स्नाति गङ्गायां प्रयागे चारुणोदये। वैकुण्ठे मोदते सोऽपि लक्षमन्वन्तरावधि ॥६३॥
पुनः स्वयोनिं संप्राप्य विष्णुमन्त्रं लभेद्ध्रुवम्। त्यक्त्वा च मानुषं देहं पुनर्याति हरेः पदम् ॥६४॥
नास्ति तत्पुनरावृत्तिर्वैकुण्ठाच्च महीतले। करोति हरिदास्यं च लब्ध्वा सारूप्यमेव च ॥६५॥
नित्यस्नायी च गङ्गायां स पूतः सूर्यवद्भुवि। पदे पदेऽश्वमेधस्य लभते निश्चितं फलम् ॥६६॥
तस्यैव पादरजसा सद्यः पूता वसुंधरा। मोदते स च वैकुण्ठे यावच्चन्द्रदिवाकरौ ॥६७॥
पुनः स्वयोनिं संप्राप्य तपस्विप्रवरो भवेत्। स्वधर्मनिरतः शुद्धो विद्वांश्च सुजितेन्द्रियः ॥६८॥
मीनकर्कटयोर्मध्ये गाढं तपति भास्करे। भारते यो ददात्येव जलमेव सुवासितम् ॥६९॥

तुलसी दान करता है, वह उन पत्रों की संख्या के बराबर युगों तक भगवान् के धाम में आनन्द-जीवन प्राप्त करता है।।५७।। अनन्तर मानव-कुल में जन्म ग्रहण करके निश्चित ही हरिभक्त होता है और इस भारत भूतल पर सुखी रहकर चिरजीवन व्यतीत करता है।।५८।। जो कार्तिक में भगवान् को घृत का दीपक अर्पित करता है, वह जितने पल दीपक जलता है उतने वर्षों तक भगवान् के धाम में आनन्द प्राप्त करता है।।५९।। और अन्त में मानव कुल में उत्पन्न होकर भगवान् विष्णु की भक्ति निश्चित रूप से प्राप्त करता है तथा यहाँ महाधनवान्, नेत्र ज्योति से युक्त एवं कान्तिमान् होकर रहता है।।६०।। जो माघ मास में अरुणोदय के समय गंगा स्नान करता है, वह भगवान् विष्णु के धाम में साठ सहस्र युगों तक आनन्द प्राप्त करता है।।६१।। पश्चात् मानव-कुल में उत्पन्न होकर भगवान् का निःसन्देह भक्त होता है और भारत में जितेन्द्रिय-शिरोमणि होता है।।६२।। माघ मास में प्रयाग क्षेत्र की गंगा में अरुणोदय के समय स्नान करने वाला व्यक्ति एक लाख मन्वन्तरों के समय तक वैकुण्ठ में आनन्द प्राप्त करता है।।६३।। अनन्तर मानव-कुल में उत्पन्न होकर भगवान् विष्णु का मन्त्र निश्चित रूप से प्राप्त करता है और अन्त में इस मानव-शरीर का त्याग कर पुनः विष्णुलोक में चला जाता है। फिर उसे वैकुण्ठलोक से इस महीतल पर कभी नहीं आना पड़ता है। वहाँ सारूप्य मोक्ष प्राप्त कर वह भगवान् का पार्षद हो जाता है।।६४-६५।। जो गंगा में नित्य स्नान करता है, वह इस भूतल पर सूर्य के समान पवित्र होता है और उसे पग-पग पर अश्वमेध का फल प्राप्त होता है।।६६।। उसके चरण-रज से वसुन्धरा सद्यः पवित्र हो जाती है तथा वह स्वयं वैकुण्ठ-लोक में सूर्य-चन्द्रमा के समय तक आनन्दानुभव करता है।।६७।। पश्चात् मानव-कुल में उत्पन्न होकर वह श्रेष्ठ तपसी, स्वधर्मपरायण, शुद्ध, विद्वान् एवं जितेन्द्रिय होता है।।६८।। जो मीन और कर्कट के मध्यवर्तीकाल में सूर्य के बहुत तपने पर भारतवर्ष में सुवासित जल का दान करता है, वह वैकुण्ठ में चौदह इन्द्रों के काल तक आनन्द भोगता रहता है। फिर मनुष्य

मोदते स च वैकुण्ठे यावदिन्द्राश्चतुर्दश। पुनः स्वयोनिं संप्राप्य सुखी निष्कपटो[1] भवेत् ॥७०॥
वैशाखे हरये भक्त्या यो ददाति च चन्दनम्। युगषष्टिसहस्राणि मोदते विष्णुमन्दिरे।
पुनः स्वयोनिं संप्राप्य रूपवांश्च सुखी भवेत् ॥७१॥
(यज्ञसूत्रेण तत्पुण्यं लभते नात्र संशयः। वैकुण्ठे मोदते सोऽपि कृष्णभक्तिं लभेद्ध्रुवम्) ॥७२॥
वैशाखे सक्तुदानं च यः करोति द्विजातये। सक्तुरेणुप्रमाणाब्दं मोदते विष्णुमन्दिरे ॥७३॥
करोति भारते यो हि कृष्णजन्माष्टमीव्रतम्। शतजन्मकृतात्पापान्मुच्यते नात्र संशयः ॥७४॥
वैकुण्ठे मोदते सोऽपि यावदिन्द्राश्चतुर्दश। पुनः स्वयोनिं संप्राप्य कृष्णभक्तिं लभेद्ध्रुवम् ॥७५॥
इहैव भारते वर्षे शिवरात्रिं करोति यः। मोदते शिवलोके च सप्तमन्वन्तरावधि ॥७६॥
शिवाय शिवरात्रौ च बिल्वपत्रं ददाति यः। पत्रप्रमाणं च युगं मोदते शिवमन्दिरे ॥७७॥
पुनः स्वयोनिं संप्राप्य शिवभक्तिं लभेद्ध्रुवम्। विद्यावान्पुत्रवाञ्छ्रीमान्प्रजावान्भूमिमान्भवेत् ॥७८॥
चैत्रमासेऽथवा माघे शंकरं योऽर्चयेद्व्रती। करोति नर्तनं भक्त्या वेत्रपाणिर्दिवानिशम् ॥७९॥
मासं वाऽप्यर्धमासं वा दश सप्त दिनानि वा। दिनमानं युगं सोऽपि शिवलोके महीयते ॥८०॥

योनि में जन्म पाकर कपटरहित एवं सुखी होता है ॥६९-७०॥ वैशाख मास में भगवान् को जो चन्दन अर्पित करता है, वह भगवान् के लोक में साठ सहस्र युगों तक आनन्दानुभव करता है और पुनः मानव-कुल में उत्पन्न होकर रूपवान् एवं सुखी होता है ॥७१॥ (यज्ञोपवीत दान करने से भी निःसन्देह वही पुण्य होता है और वह व्यक्ति वैकुण्ठ में आनन्द प्राप्त करता है तथा निश्चित रूप से कृष्ण-भक्ति भी उसे मिलती है।) ॥७२॥ वैशाख मास में जो द्विजातियों को सतुआ दान करता है, वह सत्तूकण के बराबर वर्षों तक विष्णु-धाम में आनन्द प्राप्त करता है ॥७३॥ भारतवर्ष में जो श्रीकृष्ण-जन्माष्टमी व्रत करता है वह सैकड़ों जन्मों के पाप से मुक्त हो जाता है, इसमें संशय नहीं ॥७४॥ वह भी वैकुण्ठ में चौदहों इन्द्रों के समय तक आनन्द-जीवन व्यतीत करता है। पश्चात् यहाँ मानवकुल में जन्म पाकर भगवान् श्रीकृष्ण की भक्ति निश्चित रूप से प्राप्त करता है ॥७५॥ इस भारतवर्ष में ही शिवरात्रि का व्रत करनेवाला व्यक्ति सात मन्वन्तरों के समय तक शिव-लोक में आनन्द प्राप्त करता है ॥७६॥ शिवरात्रि के दिन जो भगवान् शिव को विल्वपत्र अर्पित करता है, वह पत्र-संख्या के बराबर युगों तक शिवलोक में आनन्द प्राप्त करता है ॥७७॥ पश्चात मानव-कुल में उत्पन्न होकर निश्चित रूप से शिवभक्ति प्राप्त करता है और विद्या, पुत्र, श्री, प्रजा और भूमि से सदैव सम्पन्न रहता है ॥७८॥ चैत्र मास अथवा माघ मास में जो व्रत रखकर भगवान् शंकर की अर्चना करता है तथा हाथ में बेंत लेकर उनके सम्मुख रात-दिन सात दिन तक भक्तिपूर्वक नृत्य करता है वह चाहे एक दिन, आधा मास, दस दिन, सात दिन अथवा दो ही दिन या एक ही दिन ऐसा क्यों न करे, उसे दिन की संख्या के बराबर युगों तक शिवलोक में प्रतिष्ठा प्राप्त होती है ॥७९-८०॥ भारतवर्ष में जो मनुष्य रामनवमी

---

१ क. निष्कण्टको भ०।

श्रीरामनवमीं यो हि करोति भारते नरः। सप्तमन्वन्तरं यावन्मोदते विष्णुमन्दिरे ॥८१॥
पुनः स्वयोनिं संप्राप्य रामभक्तिं लभेद्ध्रुवम्। जितेन्द्रियाणां प्रवरो महांश्च धार्मिको भवेत् ॥८२॥
शारदीयां महापूजां प्रकृतेर्यः करोति च। महिषैश्छागलैर्मेषैरिक्षुकूष्माण्डकैस्तथा ॥८३॥
नैवेद्यैरुपहारैश्च धूपदीपादिभिस्तथा। नृत्यगीतादिभिर्वाद्यैर्नानाकौतुकमङ्गलैः ॥८४॥
शिवलोके वसेत्सोऽपि सप्तमन्वन्तरावधि। पुनः स्वयोनिं संप्राप्य[1] बुद्धिं च निर्मलां लभेत् ॥८५॥
अचलां श्रियमाप्नोति पुत्रपौत्रादिवर्धिनीम्। महाप्रभावयुक्तश्च गजवाजिसमन्वितः ॥८६॥
राजराजेश्वरः सोऽपि भवेदेव न संशयः। भाद्रशुक्लाष्टमीं प्राप्य महालक्ष्मीं च योऽर्चयेत् ॥८७॥
नित्यं भक्त्या पक्षमेकं पुण्यक्षेत्रे च भारते। दत्त्वा तस्यै प्रकृष्टानि चोपचाराणि षोडश ॥८८॥
वैकुण्ठे मोदते सोऽपि यावच्चन्द्रदिवाकरौ। पुनः स्वयोनिं संप्राप्य राजराजेश्वरो भवेत् ॥८९॥
कार्तिके पूर्णिमायां च कृत्वा तु रासमण्डलम्। गोपानां शतकं कृत्वा गोपीनां शतकं तथा ॥९०॥
शिलायां प्रतिमायां वा श्रीकृष्णं राधया सह। भारते पूजयेद्दत्त्वा चोपचाराणि षोडश ॥९१॥
गोलोके च वसेत्सोऽपि यावद्वै ब्रह्मणो वयः। भारतं पुनरागत्य कृष्णभक्तिं लभेद् ध्रुवम् ॥९२॥
क्रमेण सुदृढां भक्तिं लब्ध्वा मन्त्रं हरेरपि। देहं त्यक्त्वा च गोलोकं पुनरेव प्रयाति सः ॥९३॥

व्रत सुसम्पन्न करता है, वह विष्णुलोक में सात मन्वन्तरों के समय तक आनन्द प्राप्त करता है ॥८१॥ पुनः मानव-कुल में उत्पन्न होकर निश्चित रूप से राम-भक्ति प्राप्त करता है तथा जितेन्द्रिय शिरोमणि एवं महान् धार्मिक होता है ॥८२॥ शारदीय नवरात्र में जो महादुर्गा की महापूजा करता है जिसमें भैंसा, बकरी, भेंड़ा, ऊख, कूष्माण्ड (कुम्हड़ा) आदि नैवेद्यों, उपहारों तथा धूप-दीप आदि से महापूजा करता है, साथ ही नृत्य-गीत, वाद्य आदि के द्वारा अनेक भाँति के मंगलमय उत्सव मनाता है, वह भी शिवलोक में सात मन्वन्तरों के समय तक निवास करता है और अन्त में पुनः मानव-कुल में उत्पन्न होकर निर्मल बुद्धि प्राप्त करता है, उसे पुत्र-पौत्रादि की अभिवृद्धि तथा अचल श्री की प्राप्ति होती है और वह स्वयं महाप्रभावशाली होकर गजराजों और अश्वों से सम्पन्न राजराजेश्वर होता है, इसमें संशय नहीं। पुण्यक्षेत्र भारत में भाद्रपद की शुक्ल-अष्टमी के अवसर पर जो एक पक्ष तक नित्य भक्तिभाव से महालक्ष्मी की उपासना करता है, सोलह प्रकार के उत्तम उपचारों से भलीभाँति पूजा करने में संलग्न रहता है, वह वैकुण्ठ धाम में चन्द्र और सूर्य के समय तक आनन्द प्राप्त करता है और पुनः मनुष्ययोनि में उत्पन्न होकर राजराजेश्वर होता है ॥८३-८९॥ भारत में कार्तिक मास की पूर्णिमा के दिन रासमण्डल की रचना करने के उपरान्त सौ गोप और सौ गोपियों समेत राधाकृष्ण की पाषाणमयी प्रतिमा की षोडशोपचार से पूजा करने वाला व्यक्ति ब्रह्मा की आयु पर्यन्त गोलोक में निवास करता है और पश्चात् पुनः भारतवर्ष में जन्म लेकर निश्चित ही हरिभक्ति प्राप्त करता है ॥९०-९२॥ इस प्रकार क्रमशः वह भगवान् विष्णु की मन्त्रसमेत दृढ़ भक्ति प्राप्त कर अन्त में इस शरीर के छूटने पर पुनः गोलोक में चला जाता है ॥९३॥ वहाँ भगवान् श्रीकृष्ण का सारूप्य मोक्ष प्राप्त कर उनका पार्षद बन जाता है। उसकी न

---

१ क. राजराजेश्वरो भवेत्।

तत्र कृष्णस्य सारूप्यं संप्राप्य पार्षदो भवेत्। पुनस्तत्पतनं नास्ति जरामृत्युहरो महान् ॥९४॥
शुक्लां वाप्यथवा कृष्णां करोत्येकादशीं च यः। वैकुण्ठे मोदते सोऽपि यावद्वै ब्रह्मणो वयः ॥९५॥
भारतं पुनरागत्य हरिभक्तिं लभेद्ध्रुवम्। पुनर्याति च वैकुण्ठं न तस्य पतनं भवेत् ॥९६॥
भाद्रे शुक्ले च द्वादश्यां यः शक्रं पूजयेन्नरः। षष्टिवर्षसहस्राणि शक्रलोके महीयते ॥९७॥
रविवारेऽर्कसंक्रान्त्यां सप्तम्यां शुक्लपक्षतः। संपूज्यार्कं हविष्यान्नं यः करोति च भारते ॥९८॥
महीयते सोऽर्कलोके यावच्चन्द्रदिवाकरौ। भारतं पुनरागत्य [1]चारोगी श्रीयुतो भवेत् ॥९९॥
ज्येष्ठशुक्लचतुर्दश्यां सावित्रीं यो हि पूजयेत्। महीयते ब्रह्मलोके सप्तमन्वन्तरावधि ॥१००॥
पुनर्महीं समागत्य श्रीमानतुलविक्रमः। चिरजीवी भवेत्सोऽपि ज्ञानवान्संपदा युतः ॥१०१॥
माघस्य शुक्लपञ्चम्यां पूजयेद्यः सरस्वतीम्। संयतो भक्तितो दत्त्वा चोपचाराणि षोडश ॥१०२॥
महीयते स वैकुण्ठे यावद्ब्रह्मदिवानिशम्। संप्राप्य च पुनर्जन्म स भवेत्कविपण्डितः ॥१०३॥
गां सुवर्णादिकं यो हि ब्राह्मणाय ददाति च। नित्यं जीवनपर्यन्तं भक्तियुक्तश्च भारते ॥१०४॥
गवां लोमप्रमाणाब्दं द्विगुणं विष्णुमन्दिरे। मोदते हरिणा सार्धं क्रीडाकौतुकमङ्गलैः ॥१०५॥

तो जरा-मृत्यु होती है और न वहाँ से उसका पतन ही होता है ॥९४॥ शुक्लपक्ष अथवा कृष्णपक्ष की एकादशी तिथि का व्रत रहने वाला भी ब्रह्मा की आयु पर्यन्त वैकुण्ठ में आनन्द प्राप्त करता है ॥९५॥ और अन्त में भारतवर्ष में जन्म लेने पर निश्चित रूप से भगवान् विष्णु की भक्ति प्राप्त करता है। जिसके प्रभाव से वह यहाँ से पुनः वैकुण्ठ में जाता है और वहाँ से उसका कभी पतन नहीं होता है ॥९६॥ भादों मास की शुक्ल-द्वादशी के दिन जो इन्द्र की पूजा करता है, वह साठ सहस्र वर्षों तक इन्द्रलोक में आनन्द-जीवन प्राप्त करता है ॥९७॥ जो व्यक्ति भारतवर्ष में रविवार, सूर्य संक्रान्ति और शुक्ल पक्ष की सप्तमी के दिन सूर्य की पूजा करके हविष्यान्न दान करता है, वह चन्द्र-सूर्य के समय तक सूर्य-लोक में सम्मानित होता है और अन्त में भारत आने पर नीरोग एवं श्रीसम्पन्न होता है ॥९८-९९॥ ज्येष्ठ मास की शुक्ल-चतुर्दशी के दिन जो सावित्री देवी की पूजा करता है, वह ब्रह्मलोक में सात मन्वन्तरों के समय तक पूजित होता है ॥१००॥ अन्त में यहाँ जन्मग्रहण करने पर श्रीमान्, अतुल पराक्रमी, चिरजीवी, ज्ञानी एवं महान् धनी होता है ॥१०१॥ माघ मास की शुक्ल-पञ्चमी के दिन संयत होकर जो भक्तिभाव के साथ षोडशोपचार से सरस्वती देवी की अर्चना करता है, वह ब्रह्मा के समय तक वैकुण्ठ में रात्रिदिन पूजित होता है और अन्त में पुनः जन्म ग्रहण करने पर कवि पण्डित होता है ॥१०२-१०३॥ भारत में जो मनुष्य अपने जीवनकाल तक प्रतिदिन भक्तिपूर्वक ब्राह्मण को गौ या सुवर्णदान अर्पित करता है, वह उन गौओं के लोमों के दुगुने वर्षों तक विष्णु-लोक में भगवान् के साथ क्रीड़ा एवं मंगल कौतुक करते हुए आनन्द जीवन व्यतीत करता है ॥१०४-१०५॥

---

१ क. कृष्णभक्तिं लभेद्ध्रुवम्।

ततः पुनरिहाऽऽगत्य विष्णुभक्तिं लभेद्ध्रुवम्। ततः पुनरिहाऽऽगत्य राजराजेश्वरो भवेत्।
गोमांश्च पुत्रवान्विद्वाञ्ज्ञानवान्सर्वतः सुखी। ॥१०६॥
भोजयेद्यो हि मिष्टान्नं ब्राह्मणेभ्यश्च भारते। विप्रलोमप्रमाणाब्दं मोदते विष्णुमन्दिरे॥१०७॥
ततः पुनरिहाऽऽगत्य स सुखी धनवान्भवेत्। विद्वान्सुचिरजीवी च श्रीमानतुलविक्रमः॥१०८॥
यो वक्ति वा ददात्येव हरेर्नामानि भारते। युगं नामप्रमाणं च विष्णुलोके महीयते॥१०९॥
ततः पुनरिहाऽऽगत्य विष्णुभक्तिं लभेद्ध्रुवम्। यदि नारायणक्षेत्रे फलं कोटिगुणं लभेत्॥११०॥
नाम्नां कोटिं हरेर्यो हि क्षेत्रे नारायणे जपेत्। सर्वपापविनिर्मुक्तो जीवन्मुक्तो भवेद्ध्रुवम्॥१११॥
लभते न पुनर्जन्म वैकुण्ठे स महीयते। लभेद्विष्णोश्च सारूप्यं न तस्य पतनं भवेत्॥११२॥
यः शिवं पूजयेन्नित्यं कृत्वा लिङ्गं च पार्थिवम्। यावज्जीवनपर्यन्तं स याति शिवमन्दिरम्॥११३॥
मृदां रेणुप्रमाणाब्दं शिवलोके महीयते। ततः पुनरिहाऽऽगत्य राजेन्द्रो भारते भवेत्॥११४॥
शिलां च योऽर्चयेन्नित्यं शिलातोयं च भक्षति। महीयते स वैकुण्ठे यावद्वै ब्रह्मणः शतम्॥११५॥
ततो लब्ध्वा पुनर्जन्म हरिभक्तिं सुदुर्लभाम्। महीयते विष्णुलोके न तस्य पतनं भवेत्॥११६॥
तपांसि चैव सर्वाणि व्रतानि निखिलानि च। कृत्वा तिष्ठति वैकुण्ठे[1] यावदिन्द्राश्चतुर्दश॥११७॥

पुनः अन्त में यहाँ आने पर निश्चित रूप से विष्णुभक्ति प्राप्त करता है। पश्चात् पुनः विष्णुलोक से लौटकर वह राजाधिराज, प्रशस्त गौओं से युक्त, पुत्रवान्, विद्वान्, ज्ञानवान् तथा सब प्रकार से सुखी होता है॥१०६॥ भारत में जो ब्राह्मणों को मिष्टान्न (मिठाई) भोजन कराता है, वह ब्राह्मणों के लोम जितने वर्षों तक विष्णुलोक में आनन्द प्राप्त करता है। पश्चात् यहाँ आने पर वह सुखी, धनी, विद्वान्, अतिचिरजीवी, श्रीमान् और अतुल पराक्रमी होता है॥१०७-१०८॥ भारत में जो भगवान् विष्णु के नामों को कहता रहता है या (लिखकर) देता है, वह नाम-संख्या के बराबर युगों तक विष्णुलोक में पूजित होता है॥१०९॥ पुनः यहाँ आने पर निश्चित ही भगवान् की भक्ति प्राप्त करता है। यदि नारायण क्षेत्र में उसने यह पुण्य कर्म किया है, तो उसे करोड़ गुना अधिक फल प्राप्त होता है॥११०॥ जो नारायण क्षेत्र में भगवान् के नामों का करोड़ बार जप करता है, वह समस्त पापों से मुक्त होकर जीवन्मुक्त हो जाता है, यह ध्रुव है॥१११॥ उसका पुनर्जन्म नहीं होता है। वह वैकुण्ठ में पूजित होता है। पश्चात् विष्णु का सारूप्य मोक्ष प्राप्त करने से उसका कभी वहाँ से पतन नहीं होता है॥११२॥ जो व्यक्ति नित्य पार्थिव शिवलिंग बनाकर शिवजी की पूजा करता है और जीवन भर इस नियम का पालन करता है, वह भगवान शिव के लोक में जाता है और (पार्थिव शिवलिंग की) मृत्तिका के रेणु-कण जितने वर्षों तक वहाँ प्रतिष्ठित होता है। पश्चात् पुनः भारतवर्ष में आने पर राजेन्द्र-पद को सुशोभित करता है॥११३-११४॥ जो व्यक्ति (शालग्राम) शिला का नित्य पूजन करता है और उनका चरणोदक लेता है, वह सौ ब्रह्मा के समय तक वैकुण्ठ में पूजित होता है। पश्चात् पुनः भारतवर्ष में आने पर भगवान् की अतिदुर्लभ भक्ति प्राप्त करके पुनः विष्णुलोक में जाता है और वहाँ से उसका पतन कभी नहीं होता है॥११५-११६॥ सकल तप और समस्त व्रतों का अनुष्ठान करके मनुष्य वैकुण्ठ में चौदहों इन्द्रों के समय तक निवास करता है॥११७॥ अनन्तर यहाँ भारत में जन्म लेकर राजेन्द्र होता है और अन्त में

---

१ क. वर्द्धं ब्रह्मणां शतम्।

ततो लब्ध्वा पुनर्जन्म राजेन्द्रो भारते भवेत्। ततो मुक्तो भवेत्पश्चात्पुनर्जन्म न विद्यते ॥११८॥
यः स्नाति सर्वतीर्थेषु भुवः कृत्वा प्रदक्षिणाम्। स च निर्वाणतां याति न तज्जन्म भवेद्भुवि ॥११९॥
पुण्यक्षेत्रे भारते च योऽश्वमेधं करोति च। अश्वलोमप्रमाणाब्दं शक्रस्यार्धासने वसेत् ॥१२०॥
चतुर्गुणं राजसूये फलमाप्नोति मानवः। नरमेधेऽश्वमेधार्धं गोमेधे च तदेव च ॥१२१॥
पुत्रेष्टौ च तदर्धं च सुपुत्रं च लभेद्ध्रुवम्। लभते लाङ्गलेष्टौ च गोमेधसदृशं फलम् ॥१२२॥
तत्समानं च विप्रेष्टौ वृद्धियागे च तत्फलम्। पद्मयज्ञे तदर्धं च फलमाप्नोति मानवः ॥१२३॥
विशोके च विशोकं च पद्मार्धं स्वर्गमश्नुते। विजये विजयी राजा स्वर्गं पद्मसमं लभेत् ॥१२४॥
प्राजापत्ये प्रजालाभो भूवृद्धिर्भूभृतां भवेत्। इह राजश्रियं लब्ध्वा पद्मार्धं स्वर्गमश्नुते ॥
ऋद्धियागे महैश्वर्यं स्वर्गं पद्मसमं भवेत् ॥१२५॥
विष्णुयज्ञः प्रधानं च सर्वयज्ञेषु सुन्दरि। ब्रह्मणा च कृतः पूर्वं महासंभारसंयुतः ॥१२६॥
बभूव कलहो यत्र दक्षशंकरयोःसति। शेपुश्च नन्दिनं विप्रा नन्दी विप्रांश्च कोपतः ॥१२७॥
यतो हेतोर्दक्षयज्ञं बभञ्ज चन्द्रशेखरः। चकार विष्णुयज्ञं च पुरा दक्षप्रजापतिः ॥१२८॥
धर्मश्च कश्यपश्चैव शेषश्चापि च कर्दमः। स्वायंभुवो मनुश्चैव तत्पुत्रश्च प्रियव्रतः ॥१२९॥
शिवः सनत्कुमारश्च कपिलश्च ध्रुवस्तथा। राजसूयसहस्राणां समृद्धया च क्रतुर्भवेत् ॥१३०॥

मुक्त हो जाता है। फिर उसका जन्म नहीं होता है॥११८॥ जो पृथिवी की परिक्रमा करते हुए समस्त तीर्थों में स्नान करता है, वह 'निर्वाण पद' प्राप्त करता है, और पृथ्वी पर उसका जन्म नहीं होता है॥११९॥ जो इस पुण्य क्षेत्र भारत में अश्वमेध यज्ञ सम्पन्न करता है, वह अश्व के लोम जितने वर्षों तक इन्द्र के आधे सिंहासन पर सुशोभित होता है॥१२०॥ राजसूय यज्ञ करने पर मनुष्य को अश्वमेध का चौगुना फल प्राप्त होता है, नरमेध यज्ञ में उसका आधा और गोमेध यज्ञ में भी उतना ही फल प्राप्त होता है॥१२१॥ पुत्रेष्टि यज्ञ में उसका आधा फल तथा उत्तम पुत्र प्राप्त होता है। और लाङ्गलेष्टि यज्ञ में गोमेध के समान फल प्राप्त होता है। उसी प्रकार विप्रेष्टि और वृद्धि-याग में उसके समान फल प्राप्त होता है, पद्मयज्ञ में मानव को उसका आधा फल प्राप्त होता है॥१२२-१२३॥ विशोक यज्ञ करने वाला व्यक्ति विगतशोक होकर पद्मयज्ञ के आधे फलस्वरूप स्वर्ग प्राप्त करता है। विजय यज्ञ करने वाला राजा विजयी होकर पद्मयज्ञ के समान फल प्राप्त करते हुए स्वर्ग-सुख का उपभोग करता है॥१२४॥ प्राजापत्य यज्ञ सम्पन्न करने पर राजाओं को प्रजालाभ और भूमिवृद्धि होती है। यहाँ राज्यलक्ष्मी का सुखोपभोग करके अन्त में पद्मयज्ञ के आधे फलस्वरूप स्वर्ग प्राप्त करता है। ऋद्धि याग के महान् ऐश्वर्य और पद्म के समान फलस्वरूप स्वर्ग प्राप्त होता है॥१२५॥ सुन्दरि! समस्त यज्ञों में भगवान विष्णु का यज्ञ सर्वप्रधान है। जिसे पूर्व समय में ब्रह्मा ने बड़े धूमधाम से सम्पन्न किया था॥१२६॥ जहाँ भगवान् शंकर और दक्ष का झगड़ा हुआ था, जिसमें क्रुद्ध होकर ब्राह्मणों ने नन्दी को शाप दिया था और नन्दी ने ब्राह्मणों को तथा जिसके कारण चन्द्र-शेखर ने दक्ष का यज्ञ भंग किया था, वहाँ पूर्व समय में दक्षप्रजापति ने विष्णु यज्ञ ही किया था॥१२७-१२८॥ उसी प्रकार धर्म, कश्यप, शेष, कर्दम, स्वायम्भुव मनु, उनके पुत्र प्रियव्रत, शिव, सनत्कुमार, कपिल और ध्रुव ने भी विष्णु-यज्ञ सम्पन्न किया था। समृद्धि होने पर ही सहस्रों राजसूय यज्ञ सम्पन्न किया जा सकता है। किन्तु विष्णुयज्ञ करने

राजसूयसहस्राणां फलमाप्नोति निश्चितम्। विष्णुयज्ञात्परो यज्ञो नास्ति वेदे फलप्रदः॥१३१॥
बहुकल्पान्तजीवी च जीवन्मुक्तो भवेद्ध्रुवम्। ज्ञानेन तेजसा चैव विष्णुतुल्यो भवेदिह॥१३२॥
देवानां च यथा विष्णुर्वैष्णवानां यथा शिवः। शास्त्राणां च यथा वेदा आश्रमाणां च ब्राह्मणाः॥१३३॥
तीर्थानां च यथा गङ्गा पवित्राणां च वैष्णवाः। एकादशी व्रतानां च पुष्पाणां तुलसी यथा॥१३४॥
नक्षत्राणां यथा चन्द्रः पक्षिणां गरुडो यथा। यथा स्त्रीणां च प्रकृतिराधाराणां वसुंधरा॥१३५॥
शीघ्रगानां चेन्द्रियाणां चञ्चलानां यथा मनः। प्रजापतीनां ब्रह्मा च प्रजेशानां प्रजापतिः॥१३६॥
बृन्दावनं वनानां च वर्षाणां भारतं यथा। श्रीमतां च यथा श्रीश्च विदुषां च सरस्वती॥१३७॥
पतिव्रतानां दुर्गा च सौभाग्यानां च राधिका। विष्णुयज्ञस्तथा वत्से यज्ञेषु च महानिति॥१३८॥
अश्वमेधशतेनैव शक्रत्वं लभते ध्रुवम्। सहस्रेण विष्णुपदं संप्राप पृथुरेव च॥१३९॥
स्नानं च सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु दीक्षणम्। सर्वेषां च व्रतानां च तपसां फलमेव च॥१४०॥
पाठश्चतुर्णां वेदानां प्रादक्षिण्यं भुवस्तथा। फलं बीजमिदं सर्वं मुक्तिदं कृष्णसेवनम्॥१४१॥
पुराणेषु च वेदेषु चेतिहासेषु सर्वतः। निरूपितं सारभूतं कृष्णपादाम्बुजार्चनम्॥१४२॥
तद्वर्णनं च तद्ध्यानं तन्नामगुणकीर्तनम्। तत्स्तोत्रं स्मरणं चैव वन्दनं जप एव च॥१४३॥
तत्पादोदकनैवेद्यभक्षणं नित्यमेव च। सर्वसंमतमित्येवं सर्वेप्सितमिदं सति॥१४४॥

से सहस्रों राजसूय यज्ञों के फल प्राप्त होते हैं। अतएव विष्णुयज्ञ से बढ़कर फल देने वाला कोई यज्ञ नहीं है, ऐसा वेद में बताया गया है॥१२९-१३१॥ उसे सुसम्पन्न करने से मनुष्य बहुत कल्पों का जीवन तथा निश्चित जीवन्मुक्ति प्राप्त करता है और यहाँ ज्ञान एवं तेज में भगवान् विष्णु के समान होता है॥१३२॥ जिस प्रकार देवों में भगवान् विष्णु, वैष्णवों में शिव, शास्त्रों में वेद, आश्रमों में ब्राह्मण, तीर्थों में गंगा, पवित्रों में वैष्णव, व्रतों में एकादशी, पुष्पों में तुलसी, नक्षत्रों में चन्द्रमा, पक्षियों में गरुड़, स्त्रियों में प्रकृति, आधारों में पृथिवी, शीघ्रगामी तथा चंचल इन्द्रियों में मन, प्रजापतियों में ब्रह्मा, प्रजा-प्रभुओं में प्रजापति, वनों में वृन्दावन, वर्षों में भारत, श्रीमानों में श्री, विद्वानों में सरस्वती, पतिव्रताओं में दुर्गा और सौभाग्यों में श्री राधिका जी श्रेष्ठ हैं, उसी प्रकार हे वत्से! समस्त यज्ञों में विष्णुयज्ञ महान श्रेष्ठ है॥१३३-१३८॥ इस प्रकार सौ अश्वमेध यज्ञ सुसम्पन्न करने से इन्द्रपद प्राप्त होता है। राजा पृथु ने एक सहस्र अश्वमेधयज्ञ सुसम्पन्न करने के द्वारा विष्णु पद प्राप्त किया था॥१३९॥ इसलिए समस्त तीर्थों के स्नान, समस्त यज्ञों की दीक्षा, सम्पूर्ण व्रतों एवं सभी भाँति की तपस्याओं, चारों वेदों के पाठ और सम्पूर्ण पृथिवी की प्रदक्षिणा के फल का बीज एकमात्र भगवान् श्रीकृष्ण की सेवा है, जो मुक्ति प्रदान करती है॥१४०-१४१॥ क्योंकि पुराणों, वेदों एवं सभी इतिहासों में यही निष्कर्ष (निचोड़) बताया गया है कि 'किसी भाँति भगवान् श्रीकृष्ण के चरण कमल की अर्चना करो'॥१४२॥ इस प्रकार उन्हीं का वर्णन, उन्हीं का ध्यान, उनके नामों और गुणों का गान, उन्हीं का स्तोत्र, स्मरण, वन्दन एवं जप करके नित्य उन्हीं के चरणोदक नैवेद्य का भक्षण करना चाहिये। सभी मनोरथ सफल करने के नाते यह सर्वसम्मत से कहा गया है॥१४३-१४४॥ इसलिए भगवान् श्रीकृष्ण को ही भजो,

भज कृष्णं परं ब्रह्म निर्गुणं प्रकृतेः परम्। गृहाण स्वामिनं वत्से सुखं गच्छ स्वमन्दिरम्॥१४५॥
एतत्ते कथितं सर्वं विपाकं[1] कर्मणां नृणाम्। सर्वेप्सितं सर्वमतं परं तत्त्वप्रदं नृणाम्॥१४६॥

इति श्रीब्रह्म० महा० प्रकृति० तुलस्यु० यमसावित्रीसं० शुभकर्मविपाककथनं नाम सप्तविंशोऽध्यायः॥२७॥

अथाष्टाविंशोऽध्यायः

श्रीनारायण उवाच

हरेरुत्कीर्तनं श्रुत्वा सावित्री यमवक्त्रतः। साश्रुनेत्रा सपुलका यमं पुनरुवाच सा॥१॥

सावित्र्युवाच

हरेरुत्कीर्तनं धर्म स्वकुलोद्धारकारणम्। श्रोतॄणां चैव वक्तॄणां जन्ममृत्युजराहरम्॥२॥
दानानां च व्रतानां च सिद्धीनां तपसां परम्। योगानां चैव वेदानां सेवनं कीर्तनं हरेः॥३॥
मुक्तत्वममरत्वं वा सर्वसिद्धित्वमेव वा। श्रीकृष्णसेवनस्यैव कलां नार्हन्ति षोडशीम्॥४॥

जो परब्रह्म, निर्गुण एवं प्रकृति से परे हैं। अतः हे वत्से! यह लो अपने पतिदेव को और सुखपूर्वक अपने घर जाओ॥१४५॥ मनुष्यों के समस्त कर्मों के फल तुम्हें मैंने इस प्रकार कहकर सुना दिया, जो सभी को अभीष्ट, सर्वसम्मत एवं मनुष्यों के लिए परम ज्ञानप्रद है॥१४६॥

श्री ब्रह्मवैवर्तमहापुराण के दूसरे प्रकृतिखण्ड में सावित्री-यम संवाद में शुभकर्मों के फल-वर्णन नामक सत्ताईसवाँ अध्याय समाप्त॥२७॥

अध्याय २८

सावित्रीकृत यमस्तोत्र

श्री नारायण बोले—यम के मुख से भगवान् विष्णु का गुणानुवाद सुनकर सावित्री के नेत्र में आँसू आ गये और (हर्षातिरेक से) रोमांच हो आया। अनन्तर उसने पुनः यम से कहा॥१॥

सावित्री बोली—हे धर्म! भगवान् विष्णु का कीर्तन करना, श्रोता-वक्ता दोनों कुल के उद्धार का हेतु है, क्योंकि वह उनकी जरा, मृत्यु एवं जन्म का अपहरण करता है॥२॥ इसलिए सभी भाँति के दानों, व्रतों, सिद्धियों, तपस्याओं, योगों के अभ्यास और वेदों के पठन-पाठन की अपेक्षा भगवान् विष्णु का कीर्त्तन करना अति उत्तम है॥३॥ इसीलिए कहा भी है कि मोक्ष, अमरपद, तथा समस्त सिद्धियाँ, ये भगवान् श्रीकृष्ण की सेवा के सोलहवें अंश के

---

१ क. ०कं सर्वमङ्गलम्।

भजामि केन विधिना श्रीकृष्णं प्रकृतेः परम्। मूढां मामबलां तात वद वेदविदां वर ॥५॥
शुभकर्मविपाकं च श्रुतं नृणां मनोहरम्। कर्माशुभविपाकं च तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥६॥
इत्युक्त्वा सा सती ब्रह्मन्भक्तिनम्रात्मकंधरा। तुष्टाव धर्मराजं च वेदोक्तेन स्तवेन च ॥७॥

सावित्र्युवाच

तपसा धर्ममाराध्य पुष्करे भास्करः पुरा। धर्मांशं यं सुतं प्राप धर्मराजं नमाम्यहम् ॥८॥
समता सर्वभूतेषु यस्य सर्वस्य साक्षिणः। अतो यन्नाम शमनमिति तं प्रणमाम्यहम् ॥९॥
येनान्तश्च कृतो विश्वे सर्वेषां जीविनां परम्। कर्मानुरूपकालेन तं कृतान्तं नमाम्यहम् ॥१०॥
बिभर्ति दण्डं दण्डचाय पापिनां शुद्धिहेतवे। नमामि तं दण्डधरं यः शास्ता सर्वकर्मणाम् ॥११॥
विश्वे यः कलयत्येव सर्वायुश्चापि संततम्। अतीव दुर्निवार्यं च तं कालं प्रणमाम्यहम् ॥१२॥
तपस्वी वैष्णवो धर्मी संयमी विजितेन्द्रियः। जीविनां कर्मफलदं तं यमं प्रणमाम्यहम् ॥१३॥
स्वात्मारामश्च सर्वज्ञो मित्रं पुण्यकृतां भवेत्। पापिनं क्लेशदो यस्य[1] पुत्रो मित्रो नमाम्यहम् ॥१४॥
यज्जन्म ब्रह्मणो वंशे ज्वलन्तं ब्रह्मतेजसा। यो ध्यायति परं ब्रह्म ब्रह्मवंशं नमाम्यहम् ॥१५॥

समान भी नहीं हैं ॥४॥ अतः हे तात ! हे वेदवेत्ताओं में श्रेष्ठ ! किस विधि से उस प्रकृति से परे भगवान् श्रीकृष्ण की सेवा करूँ, यह मुझ अबला को बताने की कृपा करें ॥५॥ और मनुष्यों के शुभ कर्मों के मनोहर फल को तो मैंने सुन लिया है, किन्तु उनके अशुभ कर्मों के फल भी जानने की इच्छा है, अतः आप बतायें ॥६॥ हे ब्रह्मन् ! इतना कहकर उस साध्वी ने भक्ति से कन्धे को झुकाकर वेदोक्त स्तुति द्वारा धर्मराज की स्तुति करना आरम्भ कर दिया ॥७॥

सावित्री बोली—पहले समय में भगवान् भास्कर ने पुष्कर क्षेत्र में जाकर तप द्वारा धर्म की आराधना की। उससे उन्होंने जिस धर्म-अंश पुत्र की प्राप्ति की, उस धर्मराज को मैं नमस्कार कर रही हूँ ॥८॥ जो समस्त का साक्षी है और समस्त प्राणियों में समता का भाव रखता है, तथा जिसका 'शमन' नाम है, मैं उसे प्रणाम कर रही हूँ ॥९॥ सारे विश्व में सभी प्राणियों के कर्मानुरूप काल द्वारा जिन्होंने सबका अन्त (नाश) किया है, उस-कृतान्त को मैं नमस्कार कर रही हूँ ॥१०॥ पापियों के शुद्ध होने के लिए जो उन्हें दण्ड देता है और समस्त कर्मों का शास्ता है, उस दण्डधारी को मैं नमस्कार कर रही हूँ ॥११॥ समस्त विश्व में जो सभी की आयु को निरन्तर कवल (ग्रास) बनाता रहता है, उस अतिदुर्निवार काल को मैं प्रणाम कर रही हूँ ॥१२॥ तपस्वी, वैष्णव, धर्मात्मा, संयमी एवं इन्द्रियजित् आदि जीवों को उनके कर्मफल देने वाले उस यम को मैं प्रणाम कर रही हूँ ॥१३॥ अपने आत्मा में रमण करने वाले, सर्वज्ञ, पुण्यात्माओं के मित्र और पापियों को (दण्डरूप में) दुःख देने वाले उस पुण्यात्मा मित्र को मैं नमस्कार कर रही हूँ ॥१४॥ जिसने ब्रह्मा के वंश में जन्म ग्रहण किया है, ब्रह्मतेज से प्रदीप्त हो रहा है और जो परब्रह्म का ध्यान करता है, उस ब्रह्म-वंश को मैं नमस्कार कर रही हूँ ॥१५॥ हे मुने ! इतना कह कर उस

---

१ क. यश्च पुण्यं मित्रं न० ।

इत्युक्त्वा सा च सावित्री प्रणनाम यमं मुने। यमस्तां विष्णुभजनं कर्मपाकमुवाच ह ॥१६॥
इदं यमाष्टकं नित्यं प्रातरुत्थाय यः पठेत्। यमात्तस्य भयं नास्ति सर्वपापात्प्रमुच्यते ॥१७॥
महापापी यदि पठेन्नित्यं भक्त्या च नारद। यमः करोति तं शुद्धं कायव्यूहेन निश्चितम् ॥१८॥

इति श्रीब्रह्म० महा० प्रकृति० नारदना० तुलस्यु० सावित्रीकृतयमस्तोत्रं नामाष्टाविंशोऽध्यायः ॥२८॥

अथैकोनत्रिंशोऽध्यायः

नारायण उवाच

यमस्तस्यै विष्णुमन्त्रं दत्त्वा च विधिपूर्वकम्। कर्माशुभविपाकं च तामुवाच रवेः सुतः ॥१॥

यम उवाच

शुभकर्मविपाकं च श्रुतं नानाविधं सति। कर्माशुभविपाके च कथयामि निशामय ॥२॥
नानाप्रकारं स्वर्गं च याति जीवः सुकर्मणा। कुकर्मणा च नरकं याति नानाविधं नरः ॥३॥
नरकाणां च कुण्डानि सन्ति नानाविधानि च। नानापुराणभेदेन नामभेदानि तानि च ॥४॥
विस्तृतानि गभीराणि क्लेशदानि च जीविनाम्। भयंकराणि घोराणि हे वत्से कुत्सितानि च ॥५॥

सावित्री ने यम को प्रणाम किया और यम ने उसको विष्णु का भजन तथा कर्मों का फल बताया। इस प्रकार प्रातःकाल उठकर नित्य जो पुरुष इस यमाष्टक (यम के आठ श्लोकों) का पाठ करता है, उसे यम से भय नहीं होता है और वह समस्त पापों से मुक्त हो जाता है॥१६-१७॥ हे नारद! यदि महापापी भी भक्तिपूर्वक नित्य इसका पाठ करता है, तो यम उसे कायाकल्प के द्वारा निश्चित शुद्ध कर देते हैं॥१८॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के दूसरे प्रकृतिखण्ड में नारद-नारायण-संवाद में सावित्रीकृत यमस्तोत्र-वर्णन नामक अटठाईसवाँ अध्याय समाप्त॥२८॥

अध्याय २९

नरक-कुण्डों के नाम

श्री नारायण बोले—सूर्य पुत्र यमराज ने उसे भगवान् विष्णु के मन्त्र की सविधि दीक्षा देकर अशुभ कर्मों के फल सुनाना आरम्भ किया॥१॥

यम बोले—अनेक भाँति के शुभ कर्मों के फल तुमने सुन लिया है, अब अशुभ कर्मों के फल कह रहा हूँ, सुनो॥२॥ जीव भले कर्मों द्वारा अनेक भाँति का स्वर्ग प्राप्त करता है और कुकर्मों द्वारा अनेक भाँति का नरक॥३॥ नरकों के अनेक भाँति के कुण्ड हैं, पुराणों में जिनके नामभेद किये गये हैं॥४॥ हे वत्से! वे विस्तृत, गम्भीर (अथाह), जीवों को दुःख देने वाले, घोर, भयंकर एवं कुत्सित हैं॥५॥

षडशीतिश्च कुण्डानि संयमन्यां च सन्ति च। निबोध तेषां नामानि प्रसिद्धानि श्रुतौ सति ॥६॥
वह्निकुण्डं तप्तकुण्डं क्षारकुण्डं भयानकम्। विट्कुण्डं मूत्रकुण्डं च श्लेष्मकुण्डं च दुःसहम् ॥७॥
गरकुण्डं दूषिकाकुण्डं वसाकुण्डं तथैव च। शुक्रकुण्डमसृक्कुण्डमश्रुकुण्डं च कुत्सितम् ॥८॥
कुण्डं गात्रमलानां च कर्णविट्कुण्डमेव च। मज्जाकुण्डं मांसकुण्डं नखकुण्डं च दुस्तरम् ॥९॥
लोम्नां कुण्डं केशकुण्डमस्थिकुण्डं च दुःखदम्। ताम्रकुण्डं लोहकुण्डं प्रतप्तं क्लेशदं महत् ॥१०॥
तीक्ष्णकण्टककुण्डं च विषकुण्डं च विघ्नदम्। घर्मकुण्डं तप्तकुण्डं सुराकुण्डं प्रकीर्तितम् ॥११॥
प्रतप्ततैलकुण्डं च दन्तकुण्डं च दुर्वहम्। कृमिकुण्डं पूयकुण्डं सर्पकुण्डं दुरन्तकम् ॥१२॥
मशकुण्डं दंशकुण्डं भीमं गरलकुण्डकम्। कुण्डं च वज्रदंष्ट्राणां वृश्चिकानां च सुव्रते ॥१३॥
शरकुण्डं शूलकुण्डं खड्गकुण्डं च भीषणम्। गोलकुण्डं नक्रकुण्डं काककुण्डं शुचास्पदम् ॥१४॥
संचालकुण्डं वाजकुण्डं बन्धकुण्डं सुदुस्तरम्। तप्तपाषाणकुण्डं च तीक्ष्णपाषाणकुण्डकम् ॥१५॥
लालाकुण्डं मसीकुण्डं चूर्णकुण्डं सुदारुणम्। चक्रकुण्डं वज्रकुण्डं कूर्मकुण्डं महोल्बणम् ॥१६॥
ज्वालाकुण्डं भस्मकुण्डं [1]पूतिकुण्डं च सुन्दरि। तप्तसूर्यमसीपत्रं क्षुरधारं सुचीमुखम् ॥१७॥
गोधामुखं नक्रमुखं गजदंशं च गोमुखम्। कुम्भीपाकं कालसूत्रमवटोदमरुंतुदम् ॥१८॥
पांशुभोजं पाशवेष्टं शूलप्रोतं प्रकम्पनम्। उल्कामुखमन्धकूपं वेधनं दण्डताडनम् ॥१९॥
जालबन्धं देहचूर्णं दलनं शोषणंकरम्। शूर्पं ज्वालामुखं जिह्मं धूमान्धं नागवेष्टनम् ॥२०॥

इस संयमिनी पुरी में छियासी कुण्ड हैं, जिनके नाम वेद में प्रसिद्ध हैं, कह रहा हूँ, सुनो ॥६॥ अग्निकुण्ड, तप्तकुण्ड, भयानक क्षारकुण्ड, विट् (मल) कुण्ड, मूत्रकुण्ड, दुःसह श्लेष्म (कफ) कुण्ड, गर (विष) कुण्ड, दूषिका (नेत्रमल) कुण्ड, वसा (चर्बी) कुण्ड, शुक्र (वीर्य) कुण्ड, रुद्रकुण्ड, निन्दित अश्रुकुण्ड, शरीर के मलकुण्ड, कान के मल कुण्ड, मज्जाकुण्ड, मांसकुण्ड, कठिन नखकुण्ड, लोमकुण्ड, केशकुण्ड, दुःखप्रद अस्थि (हड्डी) कुण्ड, अतितप्त और महान् दुःख देने वाले ताँवे का कुण्ड और लोहे का कुण्ड, तीक्ष्णकण्टक (तेज काँटे का) कुण्ड, मारनेवाले विषकुण्ड, घर्म (घाम) कुण्ड, तप्त सुरा (शराब) कुण्ड, अति तप्त तेल कुण्ड, दुर्वह दन्त कुण्ड, कृमि (कीड़े का) कुण्ड, पूय (पीव) कुण्ड, दुःख से पार करने योग्य सर्प कुण्ड, मश (मसा) कुण्ड, दंश (डँसा) कुण्ड, भीषण गरल (विष) कुण्ड, और वज्र-सदृश दाँत वाले बिच्छुओं का कुण्ड हैं॥७-१३॥ हे सुव्रते! शरकुण्ड, शूलकुण्ड, भयंकर खड्ग (तेगा) कुण्ड, गोलकुण्ड, नक्र (मगर) कुण्ड, शोककारी काककुण्ड, सञ्चालकुण्ड, बाजकुण्ड, अति दुस्तर बन्धकुण्ड, तप्तपाषाण कुण्ड, तीक्ष्ण पाषाण कुण्ड, लाला (लार) कुण्ड, असि (तलवार) कुण्ड, अतिदारुण चूर्णकुण्ड, चक्रकुण्ड, वज्रकुण्ड, कूर्मकुण्ड, महान् उल्बण ज्वालाकुण्ड, भस्मकुण्ड, पूति (दुर्गन्ध) कुण्ड, हे सुन्दरि! इसी भाँति तप्तसूर्य, असिपत्र, क्षुरधार, सूची-मुख, गोधामुख, नक्रमुख, गजदंश, गोमुख, कुम्भीपाक, कालसूत्र, अवटोद, अरुन्तुद, पांशुभोज, पाशवेष्ट, शूलप्रोत, प्रकम्पन, उल्कामुख, अन्वकूप, वेधन, दण्डताडन, जालबन्ध, देहचूर्ण, दलन, शोषण, सर्पज्वालामुख, जिह्म, धूमान्ध, और नागवेष्टन कुण्ड हैं॥१४-२०॥ हे सावित्रि! ये कुण्ड, पापियों को दुःख देने के लिए बने हैं, जिनके लिए नियुक्त

१ क. ०दग्धकु० ।

कुण्डान्येतानि सावित्रि पापिनां क्लेशदानि च। नियुक्तैः किंकरगणै रक्षितानि च संततम् ॥२१॥
दण्डहस्तैः शूलहस्तैः पाशहस्तैर्भयंकरैः। शक्तिहस्तैर्गदाहस्तैर्मदमत्तैश्च दारुणैः॥२२॥
तमोयुक्तैर्दयाहीनैर्दुर्निवार्यैश्च सर्वतः। तेजस्विभिश्च निःशङ्कैस्ताम्रपिङ्गललोचनैः॥२३॥
योगयुक्तैः सिद्धयोगैर्नानारूपधरैर्वरैः। आसन्नमृत्युभिर्दृष्टैः पापिभिः सर्वजीविभिः॥२४॥
स्वकर्मनिरतैः शैवैः शाक्तैः सौरैश्च गाणपैः। अदृष्टैः पुण्यकृद्भिश्च सिद्धयोगिभिरेव च॥२५॥
स्वधर्मनिरतैर्वाऽपि विरतैर्वा स्वतन्त्रकैः। बलवद्भिश्च निःशङ्कैः [1]स्वप्नदृष्टैश्च वैष्णवैः॥२६॥
एतत्ते कथितं साध्वि कुण्डसंख्यानिरूपणम्। येषां निवासो यत्कुण्डे निबोध कथयामि ते॥२७॥

इति श्रीब्रह्म० महा० नारदना० प्रकृति० सावित्र्युपाख्याने यमसावित्रिसं० नरककुण्डसंख्यानं नामैकोनत्रिंशोऽध्यायः॥२९॥

अथ त्रिंशोऽध्यायः

यम उवाच

हरिसेवारतः शुद्धो योगी सिद्धो व्रती सति। तपस्वी ब्रह्मचारी च न याति नरकं यतिः॥१॥

सेवक गण निरन्तर रक्षा किया रकते हैं॥२१॥ वे भयंकर दूत गण हाथों में दण्ड, शूल, पाश, शक्ति, गदा, लिए मदमत्त, भीषण, दयाहीन, चारों ओर से दुर्निवार, तेजस्वी, निःशंक एवं ताँबे के समान पिंगल नेत्रों से युक्त होकर योग और सिद्धयोग द्वारा अनेक रूप धारण किये घूमते रहते हैं। समस्त पापी प्राणी मृत्यु निकट आने पर उन्हें देखते हैं ॥२२-२४॥ स्वकर्मपरायण शैव, शाक्त, सौर, गाणपत्य, पुण्यात्मा और सिद्ध-योगीगण से वे अदृष्ट रहते हैं॥२५॥ एवं स्वधर्मपरायण, स्वतन्त्र, विरत, बलवान् तथा निःशंक वैष्णवगण स्वप्न में उन्हें देखते हैं॥२६॥ हे पतिव्रते! इस प्रकार तुम्हें कुण्ड की संख्या बता दी है, अब जिस जीव का जिस कुण्ड में निवास रहता है, कह रहा हूँ, सुनो॥२७॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के दूसरे प्रकृतिखण्ड में यम-सावित्री-संवाद में नरककुण्डों की संख्या वर्णन नामक उन्तीसवाँ अध्याय समाप्त॥२९॥

अध्याय ३०

पापियों के नरक-भोग का वर्णन

यम बोले—भगवान् की सेवा में मग्न रहनेवाले, शुद्ध (अन्तःकरण), योगी, सिद्ध, व्रती, तपस्वी, ब्रह्मचारी और संन्यासी नरक नहीं जाते हैं॥१॥ किन्तु जो बलवान् खल पुरुष अपनी दुष्टता के नाते कटु वाणी द्वारा बान्धवों

---

१ क. स्वात्मादृ०।

कटुवाचा बान्धवांश्च खेलत्वेन च यो नरः। दग्धान्करोति बलवान्वह्निकुण्डं प्रयाति सः॥२॥
गात्रलोमप्रमाणाब्दं तत्र स्थित्वा हुताशने। पशुयोनिमवाप्नोति रौद्रे दग्धस्त्रिजन्मनि॥३॥
ब्राह्मणं तृषितं तप्तं क्षुधितं गृहमागतम्। न भोजयति यो मूढस्तप्तकुण्डं प्रयाति सः॥४॥
तत्र लोमप्रमाणाब्दं स्थित्वा तत्र च दुःखितः। तप्तस्थले वह्निकुण्डे पक्षी च सप्तजन्मसु॥५॥
रविवारार्कसंक्रान्त्याममायां श्राद्धवासरे। वस्त्राणां क्षारसंयोगं करोति यो हि मानवः॥६॥
स याति क्षारकुण्डं च सूत्रमानाब्दमेव च। स व्रजेद्राजकीं योनिं सप्तजन्मसु भारते॥७॥
स्वदत्तां परदत्तां वा ब्रह्मवृत्तिं [1]हरेत्तु यः। यो हरेद्भारते वर्षे विट्कुण्डं च प्रयाति सः॥८॥
षष्टिवर्षसहस्राणि विड्भोजी तत्र तिष्ठति। षष्टिवर्षसहस्राणि विट्कृमिश्च पुनर्भुवि॥९॥
परकीयतडागे च तडागं यः करोति च। उत्सृजेद्दैवदोषेण मूत्रकुण्डं प्रयाति सः॥१०॥
तद्रेणुमानवर्षं च तद्भोजी तत्र तिष्ठति। भारते गोधिका चैव स भवेत्सप्तजन्मसु॥११॥
एकाकी मिष्टमश्नाति श्लेष्मकुण्डं प्रयाति सः। पूर्णमब्दशतं चैव तद्भोजी तत्र तिष्ठति॥१२॥
पूर्णमब्दशतं चैव स प्रेतो भारते भवेत्। श्लेष्ममूत्रगरं चैव [2]तद्भोजी तत्र तिष्ठति॥१३॥
पितरं मातरं चैव गुरुं भार्यां सुतं सुताम्। यो न पुष्णात्यनाथं च गरकुण्डं प्रयाति सः॥१४॥

को जलाया करता है, वह अग्नि कुण्ड नामक नरक में जाता है॥२॥ वहाँ भीषण अग्निकुण्ड में शरीर के लोम प्रमाण वर्ष तक जलते हुए रहकर अन्त में तीन जन्म तक पशु-योनि में जन्म ग्रहण करता है॥३॥ घर आये हुए भूखे, प्यासे एवं अति संतप्त ब्राह्मण को जो भोजन नहीं कराता है, वह मूर्ख तप्तकुण्ड में जाता है॥४॥ वहाँ लोम के प्रमाण वर्ष तक दुःखों का अनुभव करके अन्त में सात जन्म तक पक्षी होता है॥५॥ जो मनुष्य रविवार, सूर्य की संक्रान्ति अमावस्या और श्राद्ध के दिन वस्त्रों में खारी मिट्टी (रेह, साबुन आदि) लगाता है, वह उस वस्त्र के सूत प्रमाण वर्ष तक क्षार कुण्ड में दुःखानुभव करता है और अन्त में भारत में सात जन्म तक धोबी के यहाँ उत्पन्न होता है॥६-७॥ जो प्राणी अपने द्वारा या दूसरे के द्वारा दी गयी ब्राह्मण वृत्ति का अपहरण करता है, वह साठ सहस्र वर्ष तक विट् (विष्ठा) कुण्ड में (कीड़ा होकर) पड़ा रहता है और वहाँ उतने दिन वही विट् (विष्ठा) भोजन करता है और अन्त में पृथिवी पर उतने ही दिन विष्ठा का कीड़ा होता है॥८-९॥ दुर्भाग्यवश जो दूसरे के तालाब को अपना कहकर उसे खोदवाता है, तो वह (अन्त में) मूत्रकुण्ड में जाता है॥१०॥ और वहाँ उसके रेणु प्रमाण वर्ष तक उसी का भोजन करते हुए जीवन व्यतीत करता है। पश्चात् (जन्म ग्रहणार्थ) भारत आने पर सात जन्मों तक गोधा (गोह) होता है॥११॥ अकेले मिष्ठान्न भोजी प्राणी श्लेष्म (कफ) कुण्ड में जाता है और वहाँ पूरे सौ वर्ष तक वही भक्षण करते हुए रहता है। पश्चात् यहाँ भारत में सौ वर्ष प्रेतयोनि में जन्म-ग्रहण करता है। और रात्रि-दिन कफ, मूत्र तथा विष खाता रहता है। अनन्तर शुद्ध होता है॥१२-१३॥ पिता, माता, गुरु, स्त्री, पुत्र, कन्या और अनाथ का जो पालन नहीं करता है, वह गरकुण्ड नामक नरक में जाता है और पूरे

---

१ ख. सुरविप्रयोः। २ ख. पूयं भुंक्ते ततः शुचिः।

पूर्णमब्दसहस्रं च तद्भोजी तत्र तिष्ठति। ततो व्रजेद्भूतयोनिं शतवर्षं ततः शुचिः॥१५॥
दृष्ट्वाऽतिथिं वक्रचक्षुः करोति यो हि मानवः। पितृदेवास्तस्य जलं न गृह्णन्ति च पापिनः॥१६॥
यानि कानि च पापानि ब्रह्महत्यादिकानि च। इहैव लभते चान्ते दूषिकाकुण्डमाव्रजेत्॥१७॥
पूर्णमब्दशतं चैव तद्भोजी तत्र तिष्ठति। ततो नरो भवेद्भूमौ दरिद्रः सप्तजन्मसु॥१८॥
दत्त्वा द्रव्यं च विप्राय चान्यस्मै दीयते यदि। स तिष्ठति वसाकुण्डे तद्भोजी शतवत्सरम्॥१९॥
ततो भवेत्स चण्डालस्त्रिजन्मनि ततः शुचिः। कृकलासो भवेत्सोऽपि भारते सप्तजन्मसु॥
ततो भवेन्मानवश्च दरिद्रोऽल्पायुरेव च ॥२०॥
पुमांसं कामिनी वाऽपि कामिनीं वा पुमानथ। यः शुक्रं पाययत्येव शुक्रकुण्डं प्रयाति सः॥२१॥
पूर्णमब्दशतं चैव तद्भोजी तत्र तिष्ठति। योनिकृमिः शताब्दं च भवेद्भुवि ततः शुचिः॥२२॥
संताड्य च गुरुं विप्रं रक्तपातं च कारयेत्। स च तिष्ठत्यसृक्कुण्डे तद्भोजी शतवत्सरम्॥२३॥
ततो भवेद्व्याधजन्म सप्तजन्मसु भारते। ततः शुद्धिमवाप्नोति मानवश्च क्रमेण च॥२४॥
अश्रु स्रवन्तं गायन्तं भक्तं दृष्ट्वा च गद्गदम्। श्रीकृष्णगुणसंगीते हसत्येव हि यो नरः॥२५॥
स वसेदश्रुकुण्डे च तद्भोजी शतवत्सरम्। ततो भवेत्स चण्डालो त्रिजन्मनि ततः शुचिः॥२६॥

सहस्र वर्ष तक वही खा कर वहाँ रहता है। पश्चात् यहाँ सौ वर्ष तक भूतयोनि में उत्पन्न होता है, अनन्तर शुद्ध होता है॥१४-१५॥ जो मनुष्य (घर आये) अतिथि को देखकर नेत्र (नाक, भौंह) टेढ़ा करता है, उस पापी के हाथ का जल पितर और देवलोग ग्रहण नहीं करते हैं॥१६॥ और यहाँ ही (अपने जीवित काल में ही) ब्रह्महत्या आदि समस्त पापों का भागी होता है तथा मरने पर दूषिकाकुण्ड में जाता है। वहाँ पूरे सौ वर्ष तक वही भोजन करते हुए रहता है एवं अनन्तर भूतल पर जन्म ग्रहण करने पर सात जन्मों तक दरिद्र होता है॥१७-१८॥ जो मनुष्य किसी ब्राह्मण को कोई वस्तु देकर पुनः उसे अन्य को दे देता है, वह सौ वर्ष तक वसा (चर्बी) कुण्ड में रहता है और वही भोजन करता है। पुनः यहाँ तीन जन्म तक चाण्डाल होकर अन्त में शुद्ध होता है। किन्तु भारत में वह सात जन्मों तक कृकलास (गिरगिट) होकर पुनः दरिद्र और अल्पायु मनुष्य होता है॥१९-२०॥ जो स्त्री पुरुष को अथवा पुरुष स्त्री को वीर्यपान कराता है वह शुक्र (वीर्य) कुण्ड में जाता है। पूरे सौ वर्ष तक वहाँ रहकर वही भोजन करता है। अनन्तर सौ वर्ष तक योनि के कीड़े होकर अन्त में शुद्ध होता है॥२१-२२॥ जो गुरु या ब्राह्मण को आघात द्वारा ताड़ित कर रक्तपात कराता है वह असृक् (रक्त) कुण्ड में वही पान करते हुए सौ वर्ष तक रहता है। पश्चात् भारत में सात जन्मों तक व्याध (बहेलिया) होकर वह मनुष्य क्रमशः शुद्ध होता है॥२३-२४॥ भगवान् श्रीकृष्ण के गुणगान करनेवाले भक्त को, जो (प्रेम में) आँसू गिराते हुए गद्गद रहता है, देखकर जो मनुष्य उसका उपहास (हँसी) करता है, वह सौ वर्ष तक अश्रुकुण्ड में रहकर वही भोजन करता है। पश्चात् यहाँ तीन जन्म तक चाण्डाल के घर उत्पन्न होकर अन्त में शुद्ध होता है॥२५-२६॥ जो दुष्ट हृदय वाला मनुष्य

करोति खलतां शश्वदशुद्धहृदयो नरः। कुण्डं गात्रमलानां च स च याति [1]दशाब्दकम् ॥२७॥
ततः स गार्दभीं योनिमवाप्नोति त्रिजन्मनि। त्रिजन्मनि च शार्गालीं ततः शुद्धो भवेद्ध्रुवम् ॥२८॥
बधिरं यो सहत्येव निन्दत्येव हि मानवः। स वसेत्[2] कर्णविट्कुण्डे तद्भोजी शतवत्सरम् ॥२९॥
ततो भवेत्स बधिरो दरिद्रः सप्तजन्मसु। सप्तजन्मस्वङ्गहीनस्ततः शुद्धिं लभेद्ध्रुवम् ॥३०॥
लोभात्स्वपालनार्थाय जीविनं हन्ति यो नरः। मज्जाकुण्डे वसेत्सोऽपि तद्भोजी लक्षवर्षकम् ॥३१॥
ततोभवेत्स शशको मीनश्च सप्तजन्मसु। एणादयश्च कर्मभ्यस्ततः शुद्धिं लभेद्ध्रुवम् ॥३२॥
स्वकन्यापालनं कृत्वा विक्रीणाति हि यो नरः। अर्थलोभान्महामूढो मांसकुण्डं प्रयाति सः ॥३३॥
कन्यालोमप्रमाणाब्दं तद्भोजी तत्र तिष्ठति। तं च कुण्डे प्रहारं च करोति यमकिङ्करः ॥३४॥
मांसभारं मूर्ध्नि कृत्वा रक्तधारां लिहेत्क्षुधा। ततो हि भारते पापी कन्याविट्सु कृमिर्भवेत् ॥३५॥
षष्टिवर्षसहस्राणि व्याधश्च सप्तजन्मसु। त्रिजन्मनि वराहश्च कुक्कुरः सप्तजन्मसु ॥३६॥
सप्तजन्मसु मण्डूको जलौकाः सप्तजन्मसु। सप्तजन्मसु काकश्च ततः शुद्धिं लभेद्ध्रुवम् ॥३७॥
व्रतानामुपवासानां श्राद्धादीनां च संयमे। न करोति क्षौरकर्म सोऽशुचिः सर्वकर्मसु ॥३८॥
स च तिष्ठति कुण्डेषु नखादीनां च सुन्दरि। तदेव दिनमानाब्दं तद्भोजी दण्डताडितः ॥३९॥

निरन्तर दुष्टता करता है, वह शरीर के मलों के कुण्ड में दश वर्ष तक रहकर पश्चात् तीन जन्म तक गधा और तीन जन्म तक सियार की योनि में उत्पन्न होता है, अन्त में उसकी शुद्धि हो जाती है॥२७-२८॥ जो मनुष्य किसी बहरे व्यक्ति की निन्दा या उपहास करता है, वह सौ वर्ष तक कर्णविट् (कान की मैल खूँट वाले) कुण्ड में पड़ा रह कर वही भोजन करता है। पश्चात् सात जन्मों तक बहरा और दरिद्र होता है। पुनः सात जन्मों तक अंगहीन रहने के उपरान्त उसकी शुद्धि होती है॥२९-३०॥ जो लोभवश अपने पालन के लिए किसी अन्य जीव का हनन करता है, वह लाख वर्ष तक मज्जा के कुण्ड में वही खाकर पड़ा रहता है। अन्त में सात जन्मों तक वह शशक (खरगोश), मछली, मृग आदि योनियों में उत्पन्न होकर दुःखानुभव करता है, उपरान्त उसकी निश्चित शुद्धि हो जाती है॥३१-३२॥ जो मनुष्य कन्या का पालन-पोषण कर के धन के लोभवश उसका विक्रय करता है, वह महामूढ़ कन्या के लोमप्रमाण वर्ष तक मांस कुण्ड में वही खाकर रहता है। उस समय यमदूत उस कुण्ड में उसके ऊपर प्रहार करते हैं और वह मांस-पिण्डों को अपने शिर पर लिए रहता है तथा भूख लगने पर रक्त की धारा का पान करता है। अनन्तर वह पापी भारत में साठ सहस्र वर्ष तक कन्या के विष्ठा का कीड़ा होकर उत्पन्न होता है॥३३-३५॥ पुनः सात जन्मों तक व्याध (बहेलिया), तीन जन्म तक सूकर, सात जन्म तक कुत्ता, सात जन्म तक मेढक, सात जन्म तक जोंक और सात जन्म तक कौवा होने के उपरान्त वह शुद्ध होता है॥३६-३७॥ व्रत, उपवास और श्राद्ध आदि कर्मों में संयमपूर्वक रहने के लिए जो क्षौर कर्म नहीं कराता है, वह सभी कर्मों में अशुद्ध माना जाता है॥३८॥ हे सुन्दरि! उसे नख आदि के कुण्डों में उतने दिनों के प्रमाण वर्ष तक वही खाते हुए रहना पड़ता है

---

१. शताब्द०। २. ०सेत्तीर्थवि०।

सकेशं पार्थिवं लिङ्गं यो वाऽर्चयति भारते। स तिष्ठति केशकुण्डे मृद्रेणुमानवर्षकम् ॥४०॥
तदन्ते यावनीं[1] योनिं प्रयाति हरकोपतः। शताब्दाच्छुद्धिमाप्नोति[2] स्वकुलं लभते ध्रुवम् ॥४१॥
पितॄणां यो विष्णुपदे पिण्डं नैव ददाति च। स तिष्ठत्यस्थिकुण्डे च स्वलोमाब्दं महोल्बणे ॥४२॥
ततः स्वयोनिं संप्राप्य खञ्जः सप्तसु जन्मसु। भवेन्महादरिद्रश्च ततः शुद्धो हि दण्डतः ॥४३॥
यः सेवते महामूढो गुर्विणीं च स्वकामिनीम्। प्रतप्तताम्रकुण्डे च शतवर्षं स तिष्ठति ॥४४॥
अवीरान्नं च यो भुङ्क्ते ऋतुस्नातान्नमेव च। लौहकुण्डे शताब्दं च स च तिष्ठति तप्तके ॥४५॥
स व्रजेद्राजकीं योनिं कर्मकारीं च सप्तसु। महाव्रणी दरिद्रश्च ततः शुद्धो भवेन्नरः ॥४६॥
यो हि घर्माक्तहस्तेन देवद्रव्यमुपस्पृशेत्। शतवर्षप्रमाणं च घर्मकुण्डे स तिष्ठति ॥४७॥
यः शूद्रेणाभ्यनुज्ञातो भुङ्क्ते शूद्रान्नमेव च। स च तप्तसुराकुण्डे शताब्दं तिष्ठति द्विजः ॥४८॥
ततो भवेच्छूद्रयाजी ब्राह्मणः सप्तजन्मसु। शूद्रश्राद्धान्नभोजी च ततः शुद्धो भवेद्ध्रुवम् ॥४९॥
वाग्दुष्टा कटुवाचा या ताडयेत्स्वामिनं सदा। तीक्ष्णकण्टककुण्डे सा तद्भोजी तत्र तिष्ठति ॥५०॥
ताडिता यमदूतेन दण्डेन च चतुर्युगम्। तत उच्चैःश्रवाः सप्तजन्मस्वेव ततः शुचिः ॥५१॥
विषेण जीविनं हन्ति निर्दयो यो हि पामरः[3]। विषकुण्डे च तद्भोजी सहस्राब्दं च तिष्ठति ॥५२॥

और दण्डे से पीटा जाता है ॥३९॥ भारत में जो पुरुष केशयुक्त पार्थिव लिंग का पूजन करता है, वह उस मिट्टी की रेणु प्रमाण वर्ष तक केशकुण्ड में रहता है। भगवान् शंकर के कोप से उसे अन्त में यवन (मुसलमान) जाति में सौ वर्ष तक जन्म ग्रहण करना पड़ता है। अनन्तर शुद्ध होकर अपने कुल में उत्पन्न होता है ॥४०-४१॥ जो विष्णुपद (स्थान) में पितरों को पिण्ड दान नहीं करता है, वह अपने लोम प्रमाण वर्ष तक अति भीषण अस्थि कुण्ड में रहता है ॥४२॥ पुनः अपने कुल में उत्पन्न होकर सात जन्मों तक महादरिद्र और लँगड़ा होता है। इस प्रकार दण्ड भोगने के अनन्तर वह शुद्ध होता है ॥४३॥ जो महामूढ़ अपनी गर्भिणी पत्नी का उपभोग करता है; वह सौ वर्ष तक प्रतप्त ताम्रकुण्ड में रहता है ॥४४॥ जो अवीरा (पति पुत्र रहित विधवा) स्त्री का अन्न या मासिक धर्म हुई स्त्री का अन्न खाता है, वह तपे हुए लौहकुण्ड में सौ वर्ष तक रहता है, तथा सात जन्मों तक धोबी और कर्मकर के यहाँ उत्पन्न होकर विशाल घाव युक्त दरिद्र होता है, पश्चात् शुद्ध होता है ॥४५-४६॥ जो पसीने या (पसीजे) हाथ से देवता की किसी वस्तु का स्पर्श करता है, वह ब्राह्मण सौ वर्ष तक घर्मकुण्ड में रहता है ॥४७॥ जो शूद्र की आज्ञा से शूद्रान्न का भक्षण करता है, वह ब्राह्मण सौ वर्ष तक तप्त सुराकुण्ड में रहता है। पश्चात् सात जन्मों तक शूद्रों के यहाँ यज्ञ कराने वाला ब्राह्मण होता है और शूद्रों के अन्न भोजन करता है, अनन्तर शुद्ध होता है ॥४८-४९॥ जो कटुभाषिणी स्त्री अपने पति को कठोर बातों द्वारा सदैव दुःख पहुँचाती रहती है, वह तीक्ष्ण कण्टककुण्ड में वही खाती हुई चारों युग तक रहती है। और यमदूत दण्डे से उसे पीटते रहते हैं। पश्चात् सात जन्मों तक ऊँचा सुननेवाली स्त्री होकर उत्पन्न होती है। उसके उपरान्त शुद्ध हो जाती है ॥५०-५१॥ जो निर्दयी एवं नीचपुरुष विष देकर किसी का हनन करता है, वह सहस्र वर्षों तक विषकुण्ड में रहता है और वही भोजन करता है ॥५२॥ अन्त में सात जन्मों तक नृघाती (हत्यारा) होता

१क. दानवीं। २क. राजत्वं लभते कलौ। ३क. मानवः।

ततो भवेन्नृघाती च व्रणी स्यात्सप्तजन्मसु। सप्तजन्मसु कुष्ठी च ततः शुद्धो भवेद्ध्रुवम् ॥५३॥
दण्डेन ताडयेद्यो हि वृषं च वृषवाहकः। भृत्यद्वारा स्वतन्त्रो वा पुण्यक्षेत्रे च भारते ॥५४॥
प्रतप्ततैलकुण्डे च स तिष्ठति चतुर्युगम्। गवां लोमप्रमाणाब्दं वृषो भवति तत्परम् ॥५५॥
दन्तेन[1] हन्ति जीवं यो लौहेन बडिशेन वा। [2]दन्तकुण्डे वसेत्सोऽपि वर्षाणामयुतं सति ॥५६॥
ततः स्वयोनिं संप्राप्य चोदरव्याधिसंयुतः। क्लिष्टेन जन्मनैकेन ततः शुद्धो भवेन्नरः ॥५७॥
यो भुङ्क्ते च वृथा मांसं मत्स्यभोजी च ब्राह्मणः। हरेरनैवेद्यभोजी कृमिकुण्डं प्रयाति सः ॥५८॥
स्वलोममानवर्षं च तद्भोजी तत्र तिष्ठति। ततो भवेन्म्लेच्छजातिस्त्रिजन्मनि ततः शुचिः ॥५९॥
ब्राह्मणः शूद्रयाजी यः शूद्रश्राद्धान्नभोजकः। शूद्राणां शवदाही च पूयकुण्डं व्रजेद् ध्रुवम् ॥६०॥
यावल्लोमप्रमाणाब्दं यजमानस्य सुव्रते। ताडितो यमदूतेन तद्भोजी तत्र तिष्ठति ॥६१॥
ततो भारतमागत्य स शूद्रः सप्तजन्मसु। महाशूली दरिद्रश्च ततः शुद्धः पुनर्द्विजः ॥६२॥
लघुं [3]क्रूरं महान्तं वा सर्पं हन्ति च यो नरः। [4]स्वात्मलोमप्रमाणाब्दं सर्पकुण्डं प्रयाति सः ॥६३॥
सर्पेण भक्षितः सोऽपि यमदूतेन ताडितः। वसेच्च सर्पविड्जीवी ततः सर्पो भवेद्ध्रुवम् ॥६४॥
ततो भवेन्मानवश्चाप्यल्पायुर्दद्रुसंयुतः। महाक्लेशेन तन्मृत्युः सर्पेण भक्षणं ध्रुवम् ॥६५॥

है और घाव युक्त रहता है। इस भाँति सात जन्मों तक कुष्ठी (कोढ़ी) रहने के उपरान्त शुद्ध होता है॥५३॥ जो किसान इस पुण्य क्षेत्र भारत में स्वयं अपने या नौकर द्वारा दण्डे से बैल को पीटता है, वह चारों युगों तक प्रतप्त तैल कुण्ड में रहता है। अनन्तर गौ के लोम प्रमाण वर्ष तक वह बैल होता है॥५४-५५॥ जो दाँतों से काट कर या लोहे या वडिश (बंसी) द्वारा जीवों को मारता है, वह दश सहस्र वर्ष तक दन्तकुण्ड में रहता है। अन्त में अपने कुल में उत्पन्न होकर व्याधि-पीड़ित रहता है। इस प्रकार उसी एक जन्म में कष्टों को भोग कर पुनः शुद्ध हो जाता है॥५६-५७॥ जो मछली खाने वाला ब्राह्मण, भगवान् के नैवेद्य का त्याग कर व्यर्थ मांस सेवन करता है, वह कृमि कुण्ड में जाता है और अपने लोमों के प्रमाण वर्ष तक वही खाकर वहाँ रहता है। अन्त में यहाँ तीन जन्म तक म्लेच्छ जाति में उत्पन्न होकर पुनः ब्राह्मण होता है। शूद्रों के यहाँ यज्ञ कराने वाला ब्राह्मण जो शूद्रों के श्राद्धान्न का भोजन करता है और उनके शव (मुर्दे) को जलाता है, वह निश्चित पूय (पीव) कुण्ड में जाता है॥५८-६०॥ हे सुव्रते! यजमान के लोम प्रमाण वर्ष तक वह वहाँ वही खाकर रहता है और नित्य यमदूतों से ताड़ित होता है॥६१॥ पश्चात् भारत आने पर सात जन्मों तक शूद्र होता है, तथा महारोगी एवं दरिद्र बना रहता है। पश्चात् शुद्ध होकर पुनः ब्राह्मण होता है॥६२॥ जो मनुष्य लघु, क्रूर या महान् सर्प की हत्या करता है, वह अपने लोमों के प्रमाण वर्ष तक सर्पकुण्ड में रहता है। वहाँ उसी सर्पद्वारा भक्षित होता है, ऊपर से यमदूत ताड़ना देते हैं और स्वयं सर्पों के विष्ठा का भक्षण करता है। अन्त में सर्पयोनि में उत्पन्न होता है। पश्चात् अल्पायु तथा दाद का रोगी मानव होता है। अन्त में सर्प के काटने से उसकी अतिक्लेशदायक मृत्यु होती है॥६३-६५॥ जो युक्ति निकालकर जीवों

१ख. कुन्त०। २ख. कुन्त०। ३क. कृष्णपादमस्तकस्थं स०। ४क. सर्पलो०।

[1]विधिं प्रकल्प्य जीवांश्च क्षुद्रजन्तूंश्च हन्ति यः। स दंशमशके कुण्डे जन्ममानदिनाब्दकम् ॥६६॥
दिवानिशं भक्षितस्तैरनाहारश्च शब्दकृत्। बद्धहस्तपदादिश्च यमदूतेन ताडितः ॥६७॥
ततो भवेत्क्षुद्रजन्तुर्जातिर्वै यावती स्मृता। ततो भवेन्मानवश्च सोऽङ्गहीनस्ततःशुचिः ॥६८॥
यो मूढो मधु गृह्णाति हत्वा च मधुमक्षिकाः। स एव गारले कुण्डे जीवमानदिनाब्दकम् ॥६९॥
भक्षितो गरलैर्दग्धो यमदूतेन ताडितः। ततो हि मक्षिकाजातिस्ततः शुद्धो भवेन्नरः ॥७०॥
दण्डं करोत्यदण्ड्ये च विप्रे दण्डं करोति च। स कुण्डं वज्रदंष्ट्राणां कीटानां वै प्रयाति च ॥७१॥
तल्लोममानवर्षं च तत्र तिष्ठत्यहर्निशम्। शब्दकृद्भक्षितस्तैश्च ततः शुद्धो भवेन्नरः ॥७२॥
अर्थलोभेन यो भूपः प्रजादण्डं करोति च। वृश्चिकानां च कुण्डेषु तल्लोमाब्दं वसेद्ध्रुवम् ॥७३॥
ततो वृश्चिकजातिश्च सप्त जन्मसु जायते। ततो नरश्चाङ्गहीनो व्याधियुक्तो भवेद्ध्रुवम् ॥७४॥
यः खादति गुरुं स्वं च धूर्तो धूर्ततया खलः। स कुण्डे वज्रदंष्ट्राणां वसेन्मन्वन्तरावधि ॥७५॥
ब्राह्मणःशस्त्रधारी यो ह्यन्येषां धावको भवेत्। संध्याहीनश्च मूढश्च हरिभक्तिविहीनकः ॥७६॥
स तिष्ठति स्वलोमाब्दं कुण्डादिषु शरादिषु। विद्धः शरादिभिः शश्वत्ततः शुद्धो भवेन्नरः ॥७७॥

और क्षुद्र जन्तुओं (छोटे-छोटे जीवों) का हनन करता है वह अपनी आयु दिन के प्रमाण वर्ष तक डँसा और मसा के कुण्ड में पड़ा रहता है। वे कीड़े वहाँ दिन-रात उसे (काट-काट कर) खाया करते हैं और वह आहारहीन होकर चिल्लाता रहता है, तथा यम के दूतगण उसका हाथ-पैर बाँध कर ऊपर से ताड़ना देते रहते हैं ॥६६-६७॥ अनन्तर क्षुद्र जन्तु होकर उत्पन्न होता है। इस प्रकार अनेक जन्मों के उपरान्त अङ्गहीन मनुष्य होता है। तब उसकी शुद्धि होती है ॥६८॥ जो मूढ़ मधुमक्खियों को मार कर मधु (शहद) निकालता है, वह अपने जीवन दिन के प्रमाण वर्ष तक विष कुण्ड में रहता है ॥६९॥. वहाँ विष भक्षण कर जलता रहता है और यम के दूत ऊपर से ताड़ना देते हैं। अनन्तर मधु की मक्खी होकर उत्पन्न होता है। तब उसकी शुद्धि होती है ॥७०॥ जो अदण्ड्य (अपराध रहित) ब्राह्मण को दण्ड देता है, वह वज्र के समान दाँत वाले कीड़ों के कुण्ड में आता है ॥७१॥ और उस ब्राह्मण के लोम प्रमाण वर्ष तक उस कुण्ड में पड़ा रह कर दिन-रात उन कीड़ों के काटने से चिल्लाया करता है और पश्चात् शुद्ध होता है ॥७२॥ जो राजा धन के लोभवश प्रजाओं को दण्डित करता रहता है, वह उनके लोम प्रमाण वर्ष तक विच्छुओं के कुण्डों में निश्चित निवास करता है ॥७३॥ अनन्तर सात जन्मों तक बिच्छू होकर उत्पन्न होता है और पश्चात् अङ्गहीन मानव होकर सदैव रोग पीड़ित रहता है ॥७४॥ जो धूर्त एवं दुष्ट व्यक्ति धूर्तता से अपने गुरु की हिंसा करता है, वह वज्रसदृश दाँतों वालों के कुण्ड में एक मन्वन्तर तक वास करता है ॥७५॥ जो मूर्ख ब्राह्मण संध्यारहित और भगवान् की भक्ति से हीन रह कर शस्त्र धारण किए दूसरे लोगों का दूत बनता है, वह अपने शरीर लोम के प्रमाण वर्ष तक शर (बाण) आदि के कुण्डों में रहता है, वहाँ बाणों द्वारा (शरीर में) क्षत-विक्षत होता रहता है, पश्चात् उसकी शुद्धि होती है ॥७६-७७॥ जो प्रमत्त

१क. विधिप्रदत्त जी०।

कारागारे सान्धकारे निबध्नाति प्रजाश्च यः। प्रमत्तः स्वल्पदोषेण गोलकुण्डं प्रयाति सः॥७८॥
तत्कुण्डं तप्ततोयाक्तं सान्धकारं भयङ्करम्। तीक्ष्णदंष्ट्रैश्च कीटैश्च संयुक्तं गोलकुण्डकम्॥७९॥
कीटैर्विद्धो वसेत्तत्र प्रजालोमाब्दमेव च। ततो [1]भवेन्नीचभृत्यस्ततः शुद्धो नरो भुवि॥८०॥
सरोवरादुत्थितांश्च नक्रादीन्हन्ति यः सति। नक्रकण्टकमानाब्दं नक्रकुण्डं प्रयाति सः॥८१॥
ततो नक्रादिजातिश्च भवेन्नद्यादिषु ध्रुवम्। ततः सद्यो विशुद्धो हि दण्डेनैव नरः पुनः॥८२॥
वक्षःश्रोणीस्तनास्यं च यः पश्यति परस्त्रियाः। कामेन कामुको यो हि पुण्यक्षेत्रे च भारते॥८३॥
स वसेत्काककुण्डे च काकैश्च क्षुण्णलोचनः। ततः स्वलोममानाब्दं ततश्चान्धस्त्रिजन्मनि॥८४॥
स्वर्णस्तेयी च यो मूढो भारते सुरविप्रयोः। स च संचानकुण्डं च स्वलोमाब्दं वसेद्ध्रुवम्॥८५॥
ताडितो यमदूतेन संचानैः क्षुण्णलोचनः। ततो भोजी च तत्रैव ततश्चान्धस्त्रिजन्मनि॥८६॥
सप्तजन्मदरिद्रश्च महाक्रूरश्च पातकी। भारते स्वर्णकारश्च स च स्वर्णवणिक्ततः॥८७॥
यो भारते ताम्रचौरो लौहचौरश्च सुन्दरि। स स्वलोमप्रमाणाब्दं वज्रकुण्डं प्रयाति वै॥८८॥
तत्रैव वज्रविड्भोजी वज्रैश्च क्षुण्णलोचनः। ताडितो यमदूतेन ततः शुद्धो भवेन्नरः॥८९॥
भारते देवचौरश्च देवद्रव्यादिहारकः। सुदुष्करे वज्रकुण्डे स्वलोमाब्दं वसेद्ध्रुवम्॥९०॥

होने के नाते अल्प अपराध के कारण भी प्रजाओं को अन्धकारपूर्ण जेल (काली कोठरी) में बन्द कर देता है, वह गोलकुण्ड नामक नरक में जाता है जो संतप्त (खौलते हुए) जल, अंधकार और तेज दाँत वाले कीड़ों से संयुक्त होने के नाते भीषण दिखायी देता है। प्रजाओं के लोम प्रमाण वर्ष तक वहाँ कीड़ों द्वारा भक्षित होता है। अनन्तर यहाँ भूतल पर नीच का सेवक होता है, तब उसकी शुद्धि होती है॥७८-८०॥ सरोवर आदि जलाशयों से बाहर आये हुए मकर (मगर) आदि जलजन्तुओं का जो हनन करता है, वह उनके काँटों के प्रमाण वर्ष तक नक्रकुण्ड में रहता है॥८१॥ पश्चात् नदी आदि में मगर आदि जन्तु होकर निश्चित उत्पन्न होता है और वहाँ दण्ड के द्वारा ही उसकी शुद्धि होती है॥८२॥ इस पुण्य क्षेत्र भारत में जो पर-स्त्री का वक्षःस्थल, श्रोणी भाग (कटि तट), स्तन या मुख का दर्शन कामुक भाव से करता है, वह काककुण्ड में जाता है और वहाँ कौवे उसकी आँखें (ठोढ़ों से मार कर) फोड़ डालते हैं। अपने लोमों के प्रमाण वर्ष तक वहाँ रहकर वह यहाँ भारत में तीन जन्मों तक अन्धा होता है। भारत में जो मूर्ख व्यक्ति देवता और ब्राह्मण का सोना चुराता है, वह अपने रोओं के जितने वर्षों तक संचानकुण्ड मे वास करता है। वहाँ यमदूत उसे पीटते हैं, संचान नामक कौए उसकी आँखें नोचते हैं। वहाँ भोग करने के बाद वह तीन जन्मों तक अन्धा, सात जन्मों तक दरिद्र, महाक्रूर, पातकी, सोनार और सुवर्ण का व्यापारी होता है। हे सुन्दरि! जो भारत में ताँबे और लोहे की चोरी करता है, वह अपने लोम के प्रमाण वर्ष तक वज्रकुण्ड में रहता है वहाँ रहते हुए वज्र नामक कीड़ों के मल का भोजन करता है तथा कीड़ों द्वारा उसके नेत्र फोड़ दिये जाते हैं और ऊपर से यम के दूत ताड़ना देते हैं। पश्चात् उसकी शुद्धि होती है॥८३-८९॥ भारत में जो देव प्रतिमा या देवों के द्रव्य आदि की चोरी करता है, वह अपने लोम के प्रमाण वर्ष तक अति दुष्कर वज्रकुण्ड में निश्चित निवास करता है। वहाँ वज्र

1क. ०वेत्प्रजाजातिस्त०।

देहदग्धो हि तद्वक्त्रैरनाहारश्च शब्दकृत्। ताडितो यमदूतेन ततः शुद्धो भवेन्नरः॥९१॥
रौप्यगव्यांशुकानां च यश्चौरः सुरविप्रयोः। तप्तपाषाणकुण्डे च स्वलोमाब्दं वसेद्ध्रुवम्॥९२॥
त्रिजन्मनि बकः सोऽपि श्वेतहंसस्त्रिजन्मनि। जन्मैकं शङ्खचिल्लश्च ततोऽन्ये श्वेतपक्षिणः॥९३॥
ततो रक्तविकारी च शूली वै मानवो भवेत्। सप्तजन्मसु चाल्पायुस्ततः शुद्धो भवेन्नरः॥९४॥
रौप्यकांस्यादिपात्रं च यो रेहत्सुरविप्रयोः। तीक्ष्णपाषाणकुण्डे च स्वलोमाब्दं वसेद्ध्रुवम्॥९५॥
स भवेदश्वजातिश्च भारते सप्तजन्मसु। ततोऽधिकाङ्गयुक्तश्च पादरोगी ततः शुचिः॥९६॥
पुंश्चल्यन्नं च यो भुङ्क्ते पुंश्चलीजीव्यजीवनः। स्वलोममानवर्षं च लालाकुण्डे वसेद्ध्रुवम्॥९७॥
ताडितो यमदूतेन तद्भोजी तत्र तिष्ठति। ततश्चक्षुः शूलरोगी ततः शुद्धः क्रमेण सः॥९८॥
म्लेच्छसेवी मषीजीवी यो विप्रो भारते भुवि। स च तप्तमषीकुण्डे स्वलोमाब्दं वसेद्ध्रुवम्॥९९॥
ताडितो यमदूतेन तद्भोजी तत्र तिष्ठति। ततस्त्रिजन्मनि भवेत्कृष्णवर्णः पशुः सति॥१००॥
त्रिजन्मनि भवेच्छागः कृष्णसर्पस्त्रिजन्मनि। ततश्च तालवृक्षश्च ततः शुद्धो भवेन्नरः॥१०१॥
धान्यादिसस्यं ताम्बूलं यो हरेत्सुरविप्रयोः। आसनं च तथा तल्पं चूर्णकुण्डं प्रयाति सः॥१०२॥
शताब्दं तत्र निवसेद्यमदूतेन ताडितः। ततो भवेन्मेषजातिः कुक्कुटश्च त्रिजन्मनि॥१०३॥

कीड़ों द्वारा उसकी देह दग्ध हो जाती है और वह स्वयं आहारहीन होकर चिल्लाता रहता है। ऊपर से यम के दूत ताड़ना देते रहते हैं। इसके पश्चात् वह प्राणी शुद्ध होता है॥९०-९१॥ देव या ब्राह्मण की चाँदी गौ या वस्त्र चुराने वाला अपने लोम के प्रमाण वर्ष तक पाषाण (पत्थर) कुण्ड में निश्चित निवास करता है॥९२॥ अनन्तर तीन जन्म तक बगुला, तीन जन्म तक श्वेत रंग का हंस, एक जन्म तक शंखचिल्ल, अन्य जन्म में श्वेत वर्ण का पक्षी होकर सात जन्मों तक रक्त विकार और शूल रोगयुक्त अल्पायु मनुष्य होता है और इसके उपरान्त उसकी शुद्धि होती है॥९३-९४॥ इसी प्रकार देव या ब्राह्मण के पीतल अथवा काँसे के पात्र की जो चोरी करता है, वह अपने लोम के प्रमाण वर्ष तक तीक्ष्ण पाषाणकुण्ड में निश्चित निवास करता है॥९५॥ उपरान्त भारत में सात जन्मों तक अश्व होता है। पुनः अधिक अङ्ग युक्त तथा चरण का रोगी होता है और इसके पश्चात् उसकी शुद्धि हो जाती है॥९६॥ पुंश्चली (व्यभिचारिणी स्त्री) द्वारा जीविका निर्वाह करने वाला जो पुरुष पुंश्चली का अन्न खाता है, वह अपने लोम के प्रमाण वर्ष तक लाला (लार) कुण्ड में निश्चित निवास करता है॥९७॥ वहाँ यम के दूतों द्वारा ताड़ित होता है और वही भक्षण करता है। अनन्तर क्रमशः नेत्र और शूल की पीड़ा से पीड़ित होकर शुद्ध होता है॥९८॥ भारत के भूमण्डल पर जो विप्र म्लेच्छों की सेवा या मुंशीगिरी द्वारा जीविका निर्वाह करता है, वह अपने लोम के प्रमाण वर्ष तक खौलते हुए मसी (स्याही) कुण्ड में निश्चित निवास करता है॥९९॥ वहाँ वही भोजन करता है और यमदूतों द्वारा सदैव ताड़ित होता है। अनन्तर तीन जन्म तक काले वर्ण का पशु, तीन जन्म तक छाग (बकरी) तथा तीन जन्म तक काला सर्प होता है और पश्चात् ताड़ का वृक्ष होकर शुद्ध हो जाता है॥१००-१०१॥ देवों या ब्राह्मणों के अन्न, ताम्बूल, आसन और शय्या की चोरी करने वाला प्राणी चूर्णकुण्ड में जाता है॥१०२॥ वहाँ सौ वर्ष तक यमदूतों द्वारा ताड़ित होकर रहता है। पश्चात् भेंड़ा और तीन जन्म तक मुर्गा होने के उपरान्त भूतल पर खाँसी

ततो भवेन्मानवश्च कासव्याधियुतो भुवि। वंशहीनो दरिद्रश्चाप्यल्पायुश्च ततः शुचिः ॥१०४॥
चक्रं करोति विप्राणां हृत्वा द्रव्यं च यो नरः। स वसेच्चक्रकुण्डे च शताब्दं दण्डताडितः ॥१०५॥
ततो भवेन्मानवश्च तैलकारस्त्रिजन्मनि। व्याधियुक्तो भवेद्रोगी वंशहीनस्ततः शुचिः ॥१०६॥
बान्धवेषु च विप्रेषु कुरुते वक्रतां नरः। प्रयाति [1]वककुण्डं च वसेत् तत्र युगं सति ॥१०७॥
ततो भवेत्स वक्राङ्गो हीनाङ्गः सप्तजन्मसु। दरिद्रो वंशहीनश्च भार्याहीनस्ततः शुचिः ॥१०८॥
शयने कूर्ममांसं च ब्राह्मणो यो हि भक्षति। कूर्मकुण्डे वसेत्सोऽपि शताब्दं कूर्मभक्षितः ॥१०९॥
ततो भवेत्कूर्मजन्म त्रिजन्मनि च सूकरः। त्रिजन्मनि बिडालश्च मयूरश्च त्रिजन्मनि॥११०॥
घृततैलादिकं चैव यो हरेत्सुरविप्रयोः । ज्वालाकुण्डं स वै याति भस्मकुण्डं च पातकी॥१११॥
तत्र स्थित्वा शताब्दं च स भवेत्तैलपायिकः। सप्तजन्मसु मत्स्यः स्यान्मूषकश्च ततः शुचिः ॥११२॥
सुगन्धितैलं धात्रीं च गन्धद्रव्यं तथैव वा। भारते पुण्यवर्षे च यो हरेत्सुरविप्रयोः ॥११३॥
[2]वसेद्दुर्गन्धकुण्डे च दुर्गन्धं च लभेत्सदा। स्वलोममानवर्षं च ततो दुर्गन्धिको भवेत् ॥११४॥
दुर्गन्धिकः सप्तजनौ मृगनाभिस्त्रिजन्मनि। सप्तजन्म सुगन्धिश्च ततो वै मानवो भवेत् ॥११५॥
बलेनैव खलत्वेन हिंसारूपेण वा सति। बली च यो हरेद्भूमिं भारते परपैतृकीम् ॥११६॥

रोग से युक्त मनुष्य होता है, जो वंशहीन, दरिद्र एवं अल्पायु होता है। अनन्तर शुद्ध हो जाता है॥१०३-१०४॥ जो ब्राह्मणों के द्रव्यों को चुरा कर उससे चक्र का निर्माण करता है, वह सौ वर्ष तक दण्ड ताड़ना का अनुभव करता हुआ चक्रकुण्ड में निवास करता है॥१०५॥ पश्चात् तीन जन्म तक तेली जाति में उत्पन्न होकर व्याधियुक्त, रोगी और सन्तानरहित होता है, उपरान्त शुद्ध होता है॥१०६॥ जो बन्धुओं या ब्राह्मणों के साथ कुटिलता का व्यवहार करता है, वह युग के प्रमाण वर्ष तक वज्रकुण्ड में निवास करता है॥१०७॥ पश्चात् सात जन्मों तक टेढ़े-मेढ़े (कूबरादि) अङ्ग, हीनाङ्ग, दरिद्र, सन्तानहीन, स्त्रीरहित होकर शुद्ध होता है॥१०८॥ जो ब्राह्मण बिस्तर पर कछुवे का मांस भक्षण करता है, वह सौ वर्ष तक कछुवे के कुण्डों में निवास करता है और कछुवे लोग उसके मांस का भक्षण करते हैं॥१०९॥ पश्चात् कछुवे जाति में उत्पन्न होकर तीन जन्म सूकर, तीन जन्म बिडाल एवं तीन जन्म मोर पक्षी होता है॥११०॥ देवों या ब्राह्मणों के तेल-घी की चोरी जो करता है, वह पातकी ज्वालाकुण्ड तथा भस्मकुण्ड में जाता है। वह वहाँ सौ वर्ष तक दुःखों के अनुभव करने के उपरान्त सात जन्म तक गीदड़, मछली और चूहा होता है, पश्चात् शुद्ध हो जाता है॥१११-११२॥ इस पुण्य क्षेत्र भारतवर्ष में जो देवता या ब्राह्मणों के सुगन्धित तेल, आँवले एवं सुगन्धित पदार्थों का अपहरण करता है, वह अपने लोम के प्रमाण वर्ष तक दुर्गन्धकुण्ड में दुर्गन्ध का अनुभव करता है। अनन्तर सात जन्मों तक छछून्दर होता है। पुनः तीन जन्म तक कस्तूरी, सात जन्म तक सुगन्धित वस्तु होकर अन्त में मानव होता है॥११३-११५॥ भारत में जो बली दुष्टतावश बल प्रयोग या हिंसा द्वारा दूसरे के पूर्वजों की भूमि का अपहरण करता है, वह खौलते हुए तेल में दग्ध होने पर निरन्तर चारों

१ख. वज्रकु०। २क. स वसेद्दग्धकुण्डे च भवेद्दग्धो दिवानिशम्।

स वसेत्तप्तशूले च भवेत्तप्तो दिवानिशम्। तप्ततैले यथा जीवो दग्धो भ्रमति संततम् ॥११७॥
भस्मसान्न भवत्येव भोगदेहो न नश्यति। सप्तमन्वन्तरं पापी संतप्तस्तत्र तिष्ठति ॥११८॥
शब्दं करोत्यनाहारो यमदूतेन ताडितः। षष्टिवर्षसहस्राणि विट्कृमिर्भारते ततः ॥११९॥
ततो भवेद्भूमिहीनो दरिद्रश्च ततः शुचिः। ततः स्वयोनिं संप्राप्य [1]शुभकर्मा भवेत्पुनः ॥१२०॥
छिनत्ति जीविनः खड्गैर्दयाहीनः सुदारुणः। नरघाती हन्ति नरमर्थलोभेन भारते ॥१२१॥
असिपत्रे च स वसेद्यावदिन्द्राश्चतुर्दश। तेषु चेद्ब्राह्मणान्हन्ति शतमन्वन्तरं तदा ॥१२२॥
छिन्नाङ्गश्च भवेत्पापी खड्गधारेण संततम्। अनाहारः शब्दकृच्च यमदूतेन ताडितः ॥१२३॥
[2]चण्डालः शतजन्मानि भारते सूकरो भवेत्। कुक्कुरः शतजन्मानि शृगालः सप्तजन्मसु ॥१२४॥
व्याघ्रश्च सप्तजन्मानि वृकश्चैव त्रिजन्मनि। सप्तजन्मसु गण्डी स्यान्महिषश्च त्रिजन्मनि ॥१२५॥
ग्रामं वा नगरं वाऽपि दाहनं यः करोति च। क्षुरधारे वसेत्सोऽपि च्छिन्नाङ्गस्त्रियुगं सति ॥१२६॥
ततः प्रेतो भवेत्सद्यो वह्निवक्त्रो भ्रमेन्महीम्। सप्तजन्मामेध्यभोजी खद्योतः सप्तजन्मसु ॥१२७॥
ततो भवेन्महाशूली मानवः सप्तजन्मसु। सप्तजन्म गलत्कुष्ठी ततः शुद्धो भवेन्नरः ॥१२८॥

ओर भ्रमण करने वाले जीव की भाँति तप्तशूल नामक नरक में रात दिन संतप्त होता है ॥११६-११७॥ किन्तु न तो वह भस्म (राख) ही होता है और न उसकी भोगदेह नष्ट होती है। इस प्रकार वह पापी सात मन्वन्तरों के समय तक वहाँ निवास करता है ॥११८॥ अनाहारी रह कर यमदूतों द्वारा ताड़ित होने पर चिल्लाता रहता है। पश्चात् भारत में साठ सहस्र वर्ष तक विष्ठा का कीड़ा होता है ॥११९॥ उसके उपरान्त भूमिरहित एवं दरिद्र होकर शुद्ध होता है और अपने कुल में उत्पन्न होकर पुनः शुभ कर्म करता है ॥१२०॥ भारत में जो निष्करुण और अति भीषण नरघाती मनुष्य खड्गों द्वारा जीवों को मारता है, तथा धन के लोभ से मनुष्य की हत्या करता है, वह चौदह इन्द्रों के समय तक असिपत्र नामक नरक में रहता है। यदि वह ब्राह्मणों की हत्या किए रहता है, तो सौ मन्वन्तरों के समय तक उस नरक में निवास करता है ॥१२१-१२२॥ वहाँ वह पापी तलवार की धार से टुकड़े-टुकड़े हुआ करता है, अनाहारी रहता है, और यमदूतों द्वारा ताड़ित होने पर चिल्लाया करता है ॥१२३॥ पश्चात् भारत में सौ जन्मों तक चाण्डाल तथा सूकर, सौ जन्मों तक कुत्ता, सात जन्मों तक गीदड़, सात जन्मों तक बाघ, तीन जन्मों तक भेड़िया, सात जन्मों तक गैंड़ा और तीन जन्मों तक भैंसा होता है ॥१२४-१२५॥ गाँव या नगर को जो जला देता है, वह क्षुरधार नामक नरक में उसकी धार से छिन्न-भिन्न होता हुआ तीन युग तक निवास करता है ॥१२६॥ अनन्तर अग्निमुख प्रेत होकर पृथ्वी पर घूमा करता है, सात जन्मों तक अपवित्रभोजी, सात जन्मों तक जुगुनू, सात जन्मों तक महाशूल से पीड़ित मनुष्य और सात जन्मों तक गलत्कुष्ठ का महान् रोगी होता है। पश्चात् वह शुद्ध होता है ॥१२७-१२८॥ जो दूसरों के कानों में दूसरों की चुगुली करता है, दूसरों के दोषों के कहने में ही जिसे महान्

१क. ०कर्म चरेत्पु०। २क. संचानः शतवर्षाणि शतजन्मानि सूकरः। कुक्कुरः सप्तजन्मानि सृ०।

परकर्णोपजापेन परनिन्दां करोति यः। परदोषे महातोषी देवब्राह्मणनिन्दकः॥ ॥१२९॥
सूचीमुखे स च वसेत्सूचीविद्धो युगत्रयम्। ततो भवेद्वृश्चिकश्च सर्पः स्यात्सप्तजन्मसु॥१३०॥
वज्रकीटः सप्तजनौ भस्मकीटस्ततः परम्। ततो भवेन्मानवश्च महाव्याधिस्ततः शुचिः॥१३१॥
गृहिणां च गृहं भित्त्वा वस्तुस्तेयं करोति यः। गाश्च च्छागांश्च मेषांश्च याति गोधामुखं च सः॥१३२॥
ताडितो यमदूतेन वसेत्तत्र युगत्रयम्। ततो भवेत्सप्तजनौ गोजातिर्व्याधिसंयुतः॥१३३॥
त्रिजन्मनि मेषजातिश्छागजातिस्त्रिजन्मनि। ततो भवेन्मानवश्च नित्यरोगी दरिद्रकः॥१३४॥
भार्याहीनो बन्धुहीनः संतापी च ततः शुचिः। सामान्यद्रव्यचौरश्च याति नक्रमुखं युगम्।१३५॥
ततो भवेन्मानवश्च महारोगी ततः शुचिः। हन्ति गाश्च गजांश्चैव तुरगांश्च नरांस्तथा॥१३६॥
स याति गजदंशं च महापापी युगत्रयम्। ताडितो यमदूतेन गजदन्तेन संततम्॥१३७॥
स भवेद्गजजातिश्च तुरगश्च त्रिजन्मनि। गोजातिर्म्लेच्छजातिश्च ततः शुद्धो भवेन्नरः॥१३८॥
जलं पिबन्तीं तृषितां गां वारयति यो नरः। तच्छुश्रूषाविहीनश्च गोमुखं याति मानवः॥१३९॥
नरकं गोमुखाकारं कृमितप्तोदकान्वितम्। तत्र तिष्ठति संतप्तो यावन्मन्वन्तरावधि॥१४०॥
ततो [1]नरोऽपि गोहीनो महारोगी दरिद्रकः। सप्तजन्मन्यन्त्यजातिस्ततः शुद्धो भवेन्नरः॥१४१॥

सन्तोष होता है तथा जो देवों और ब्राह्मणों की सदैव निन्दा किया करता है, वह सूचीमुख नामक नरक में जाता है और वहाँ सूचियों द्वारा क्षत अङ्ग होकर तीन युगों तक रहता है। पश्चात् बिच्छू, सात जन्मों तक साँप, सात जन्मों तक वज्रकीट और सात जन्मों तक भस्मकीट होकर पुनः महाव्याधियुक्त मनुष्य होता है, तब उसकी शुद्धि होती है॥१२९-१३१॥ जो किसी गृहस्थ के घर की दीवाल फोड़ कर वस्तुओं, गौओं, भेड़ों और बकरियों की चोरी करता है, वह गोधामुख नामक नरक में जाता है॥१३२॥ पश्चात् सात जन्म तक व्याधिपीड़ित गौ, तीन जन्म तक भेड़ और तीन जन्म तक बकरी होता है। इसके उपरान्त मनुष्य होकर नित्य रोगपीड़ित, दरिद्र, स्त्री एवं भाई से रहित होकर सन्तप्त जीवन व्यतीत करता है, तब शुद्ध होता है॥१३३-१३४½॥ सामान्य द्रव्य की चोरी करने वाला एक युग तक नक्रमुख नामक नरक में रहता है। पश्चात् मनुष्य होकर महान् रोगी होता है। अनन्तर उसकी शुद्धि होती है॥१३५½॥ जो गौ, गज, घोड़े एवं मनुष्यों की हत्या करता है, वह महापापी तीन युग तक गजदंश नामक नरक में रहता है। वहाँ यमदूतों द्वारा गजदन्त से निरन्तर ताड़ित होता है। पश्चात् तीन जन्म तक गज और घोड़ा होता है, पुनः गो जाति एवं म्लेच्छ जाति होने पर उसकी शुद्धि हो जाती है॥१३६-१३८॥ जल पीती हुई प्यासी गौ को जो जल पीने से रोक देता है, वह गोसेवाहीन मनुष्य गोमुख नामक नरक में जाता है॥१३९॥ जो गौ के मुखाकार का बना है। तथा कीड़े और संतप्त जल से सदैव भरा रहता है। एक मन्वन्तर के समय तक वह उसी नरक में संतप्त होकर रहता है॥१४०॥ पश्चात् वह गोहीन, महारोगी एवं दरिद्र होता है और सात जन्मों तक अन्त्यज (असवर्ण) जाति होता है। तब उसकी शुद्धि होती है॥१४१॥ दूसरे के कहने से गोहत्या, ब्रह्महत्या तथा अगम्यागमन करने वाला,

---

१क.० रोप्यङ्गही०।

गोहत्यां ब्रह्महत्यां च यः करोत्यतिदेशिकीम् । यो हि गच्छेदगम्यां च संध्याहीनोऽप्यदीक्षितः ॥१४२॥
प्रतिग्राही च तीर्थेषु ग्रामयाजी च देवलः । शूद्राणां सूपकारश्च प्रमत्तो वृषलीपतिः ॥१४३॥
गोहत्यां ब्रह्महत्यां च स्त्रीहत्यां च करोति यः । मित्रहत्यां भ्रूणहत्यां महापापी च भारते ॥१४४॥
कुम्भीपाकं स च वसेद्यावदिन्द्राश्चतुर्दश । ताडितो यमदूतेन [1]घूर्ण्यमानश्च संततम् ॥१४५॥
क्षणं पतति वह्नौ च क्षणं पतति कण्टके । क्षणं च तप्ततैलेषु तप्ततोयेषु च क्षणम् ॥१४६॥
क्षणं च तप्तपाषाणे तप्तलोहे क्षणं ततः । गृध्रः कोटिसहस्राणि शतजन्मानि सूकरः ॥१४७॥
काकश्च सप्तजन्मानि सर्पः स्यात्सप्तजन्मसु । षष्टिवर्षसहस्राणि ततो वै विट्कृमिर्भवेत् ॥१४८॥
ततो भवेत्स वृषलो गलत्कुष्ठी दरिद्रकः । यक्ष्मग्रस्तो [2]वंशहीनो भार्याहीनस्ततः शुचिः ॥१४९॥

सावित्र्युवाच

ब्रह्महत्या च गोहत्या किंविधा वाऽऽतिदेशिकी । का वा नृणामगम्या वा को वा संध्याविहीनकः ॥१५०॥
अदीक्षितः पुमान्को वा को वा तीर्थे प्रतिग्रही । द्विजः को वा ग्रामयाजी को वा विप्रश्च देवलः ॥१५१॥
शूद्राणां सूपकारः कः प्रमत्तो वृषलीपतिः । एतेषां लक्षणं सर्वं वद वेदविदां वर ॥१५२॥

यम उवाच

श्रीकृष्णे च तदर्चायां मृन्मय्यां प्रकृतौ तथा । शिवे च शिवलिङ्गे वा सूर्ये सूर्यमणौ तथा ॥१५३॥
गणेशे वा तदर्चायामेवं सर्वत्र सुन्दरि । करोति भेदबुद्धिं यो ब्रह्महत्यां लभेत्तु सः ॥१५४॥

संध्याकर्म-रहित, दीक्षाहीन, तीर्थों में प्रतिग्राही (दान लेने वाला), ग्रामयाजी (गाँव-गाँव यज्ञ कराने वाला); देवल (मन्दिर का पुजारी), शूद्रों का भण्डारी, प्रमत्त, वृषलीपति (शूद्र की स्त्री से व्यभिचार करने वाला) एवं गोहत्या, ब्रह्महत्या, स्त्रीहत्या, मित्रहत्या, भ्रूणहत्या करने वाला महापापी कुम्भीपाक नरक में चौदहों इन्द्रों के समय तक रहता है, वहाँ धर्मराज के दूतगण ताड़ित कर उसे निरन्तर घुमाया करते हैं॥१४२-१४५॥ वह वहाँ क्षण में अग्नि में गिरता है, क्षण में काँटों के कुण्डों में गिरता है, क्षण में खौलते हुए तेल में, क्षण में संतप्त जल में, क्षण में तप्त पत्थर पर और क्षण में तप्त लोहे पर गिरता है। अनन्तर करोड़ों जन्म तक गीध, सौ जन्म तक सूकर, सात जन्म तक कौवा और सात जन्म तक सर्प होकर साठ सहस्र वर्ष तक विष्ठा का कीड़ा होता है॥१४६-१४८॥ उसके उपरान्त शूद्र, गलत्कुष्ठ का रोगी, दरिद्र, यक्ष्मापीड़ित, वंशहीन, और स्त्रीहीन मनुष्य होता है, तब उसकी शुद्धि होती है॥१४९॥

सावित्री बोली—हे वेदविदांवर ! ब्रह्महत्या, गोहत्या एवं अतिदेशिकी हत्या किस भाँति की होती हैं। मनुष्यों के लिए अगम्या कौन है, संध्याहीन एवं तीर्थ का प्रतिग्राही (दान लेने वाला) पुरुष कौन है, कौन ब्राह्मण ग्रामयाजी (गाँव-गाँव में यज्ञ कराने वाला) और कौन ब्राह्मण देवल (मन्दिर में पुजारी) होता है एवं शूद्रों का भण्डारी, प्रमत्त और वृषलीपति कौन है, इनके समस्त लक्षण बताने की कृपा करें॥१५०-१५२॥

यम बोले—हे सुन्दरि ! भगवान् श्रीकृष्ण, उनकी अर्चना, मिट्टी की बनी हुई श्रीदुर्गा जी की मूर्ति, शिव, शिवलिङ्ग, सूर्य, सूर्यमणि, गणेश एवं उनकी पूजा में भेद बुद्धि रखने वाले को ब्रह्महत्या लगती है॥१५३-१५४॥

---

१ ख.० चूर्ण्यमा० । २ क. बन्धुही ० ।

स्वगुरौ स्वेष्टदेवे वा जन्मदातरि मातरि। करोति भेदबुद्धिं यो ब्रह्महत्यां लभेत्तु सः ॥१५५॥
वैष्णवेष्वन्यभक्तेषु ब्राह्मणेष्वितरेषु च। करोति समतां यो हि ब्रह्महत्यां लभेत्तु सः ॥१५६॥
यो मूढो विष्णुनैवेद्ये चान्यनैवेद्यके तथा। हरेः पादोदकेष्वन्यदेवपादोदके तथा ॥
करोति समतां यो हि ब्रह्महत्यां लभेत्तु सः ॥१५७॥
सर्वेश्वरेश्वरे कृष्णे सर्वकारणकारणे। सर्वाद्ये सर्वदेवानां सेव्ये सर्वान्तरात्मनि। ॥१५८॥
मायया‌ऽनेकरूपे वाऽप्येक एव हि निर्गुणे। करोत्यन्येन समतां ब्रह्महत्यां लभेत्तु सः। ॥१५९॥
पितृदेवार्चनं पौर्वापरं वेदविनिर्मिताम्। यः करोति निषेधं च ब्रह्महत्यां लभेत्तु सः ॥१६०॥
ये निन्दन्ति हृषीकेशं तन्मन्त्रोपासकं तथा। पवित्राणां पवित्रं च ब्रह्महत्यां लभन्ति ते ॥१६१॥
शिवं शिवस्वरूपं च कृष्णप्राणाधिकं प्रियम्। पवित्राणां पवित्रं च ज्ञानानन्दं सनातनम् ॥१६२॥
प्रधानं वैष्णवानां च देवानां सेव्यमीश्वरम्। ये नार्चयन्ति निन्दन्ति ब्रह्महत्यां लभन्ति ते ॥१६३॥
ये विष्णुमायां निन्दन्ति विष्णुभक्तिप्रदां सतीम्। सर्वशक्तिस्वरूपां च प्रकृतिं सर्वमातरम् ॥१६४॥
सर्वदेवीस्वरूपां च सर्वाद्यां सर्ववन्दिताम्। सर्वकारणरूपां च ब्रह्महत्यां लभन्ति ते ॥१६५॥
कृष्णजन्माष्टमीं रामनवमीं पुण्यदां पराम्। शिवरात्रिं तथा चैकादशीं वारं रवेस्तथा ॥१६६॥
पञ्च पर्वाणि पुण्यानि ये न कुर्वति मानवाः। लभन्ते ब्रह्महत्यां ते चाण्डालाधिकपापिनः ॥१६७॥

अपने गुरु, इष्टदेव, जन्मप्रद माता-पिता में भेद बुद्धि रखने वाले को ब्रह्महत्या लगती है ॥१५५॥ वैष्णवों, अन्य-भक्तों, ब्राह्मणों और अन्य जातियों में समता रखने वाले को ब्रह्महत्या लगती है ॥१५६॥ जो मूर्ख भगवान् विष्णु के नैवेद्य, अन्य के नैवेद्य, भगवान् के चरणोदक और अन्य देव के चरणोदक में समता रखते हैं, उन्हें ब्रह्महत्या लगती है ॥१५७॥ समस्त ईश्वरों के ईश्वर भगवान् श्रीकृष्ण के साथ, जो समस्त कारणों के कारण, सब के आदि, सब देवों के सेव्य, सबके अन्तरात्मा, माया द्वारा अनेक रूप धारण करने वाले (सगुण) अथवा निर्गुण एक ही रहने वाले हैं, अन्य की समता करता है, उसे ब्रह्महत्या लगती है ॥१५८-१५९॥ पितरों एवं देवों की वेदविहित पूर्वापर अर्चना का जो निषेध करता है, उसे ब्रह्महत्या लगती है ॥१६०॥ जो पवित्रों के पवित्र भगवान् हृषीकेश (विष्णु) और उनके मन्त्रों के उपासकों की निन्दा करता है, उसे ब्रह्महत्या लगती है ॥१६१॥ कल्याण स्वरूप शिव भगवान् श्रीकृष्ण को उनके प्राणों से भी अधिक प्रिय हैं और पवित्रों के पवित्र, ज्ञानानन्द, सनातन, वैष्णवों में प्रधान, देवों में श्रेष्ठ तथा ईश्वर हैं। उनकी जो अर्चना नहीं करता अपितु निन्दा करता है, उसे ब्रह्महत्या लगती है ॥१६२-१६३॥ भगवान् की माया प्रकृति विष्णु की भक्ति देनेवाली, सती, सम्पूर्ण शक्ति स्वरूपा, सबकी माता, समस्त देवीस्वरूपा, सर्वादि, सर्ववन्दिता और समस्त कारण रूपा हैं। जो उनकी निन्दा करते हैं, उन्हें ब्रह्महत्या लगती है ॥१६४-१६५॥ भगवान् श्रीकृष्ण की जन्माष्टमी, पुण्यदायिनी एवं परमोत्तम रामनवमी, शिवरात्रि, एकादशी, रविवार, इन पाँचों पुण्य पर्वों का व्रत जो मनुष्य नहीं करते हैं, वे चाण्डाल से भी अधिक पापी हैं और उन्हें ब्रह्महत्या लगती है ॥१६६-१६७॥ हे वत्से! भारतप्रदेश में जो जल की लहरों के द्वारा उत्पन्न किये गड्ढे में और जल में शौचादि क्रिया

अम्बुवीच्यांबुखनने जले शौचादिकं च ये। कुर्वन्ति भारते वर्षे ब्रह्महत्यां लभन्ति ते॥१६८॥
गुरुं च मातरं तातं साध्वीं भार्यां सुतं सुताम्। अनाथान्यो न पुष्णाति ब्रह्महत्यां लभेत्तु सः॥१६९॥
विवाहो यस्य न भवेन्न पश्यति सुतं च यः। हरिभक्तिविहीनो यो ब्रह्महत्यां लभेत्तु सः॥१७०॥
हरेरनैवेद्यभोजी नित्यं विष्णुं न पूजयेत्। पुण्यं पार्थिवलिङ्गं वा ब्रह्महत्यां लभेत्तु सः॥१७१॥
आहारं कुर्वतीं गां च पिबन्तीं यो निवारयेत्। याति गोविप्रयोर्मध्ये गोहत्यां च लभेत्तु सः॥१७२॥
दण्डैर्गास्ताडयेन्मूढो यो विप्रो वृषवाहकः। दिने दिने गवां हत्यां लभते नात्र संशयः॥१७३॥
ददाति गोभ्य उच्छिष्टं याजयेद्वृषवाहकम्। भोजयेद्वृषवाहान्नं स गोहत्यां लभेद्ध्रुवम्॥१७४॥
वृषलीपतिं याजयेद्यो भुङ्क्तेऽन्नं तस्य यो नरः। गोहत्याशतकं सोऽपि लभते नात्र संशयः॥१७५॥
पादं ददाति वह्नौ च गाश्च पादेन ताडयेत्। गृहं विशेदधौताङ्घ्रिः स्नात्वा गोवधमाप्नुयात्॥१७६॥
यो भुङ्क्ते स्निग्धपादेन शेते स्निग्धाङ्घ्रिरेव च। सूर्योदये च द्विर्भोजी स गोहत्यां लभेद्ध्रुवम्॥१७७॥
अवीरान्नं च यो भुङ्क्ते योनिजीवी च वै द्विजः। यस्त्रिसंध्याविहीनश्च स गोहत्यां लभेद्ध्रुवम्॥१७८॥
पितॄंश्च पर्वकाले च तिथिकाले च देवताम्। न सेवतेऽतिथिं यो हि गोहत्यां स लभेद्ध्रुवम्॥१७९॥
स्वभर्तरि च कृष्णे च भेदबुद्धिं करोति या। कटूक्त्या ताडयेत्कान्तं सा गोहत्यां लभेद्ध्रुवम्॥१८०॥

करते हैं, उन्हें ब्रह्महत्या लगती है॥१६८॥ जो अपने गुरु, माता, पिता, पतिव्रता स्त्री, पुत्र, कन्या और अन्य अनाथों का यथाशक्ति पालन-पोषण नहीं करता है, उसे ब्रह्महत्या लगती है॥१६९॥ जिसका विवाह नहीं होता है, जो पुत्र का मुख नहीं देखता है, भगवान् की भक्ति से रहित होता है, उसे ब्रह्महत्या लगती है॥१७०॥ भगवान् विष्णु का नैवेद्य न खाने वाले को तथा नित्य भगवान् की या पुण्य पार्थिव लिङ्ग की अर्चा न करने वाले को ब्रह्महत्या लगती है॥१७१॥ खाती हुई या जल पीती हुई गौ को रोकने वाले तथा गौ और ब्राह्मण के बीच से निकलने वाले को ब्रह्महत्या लगती है॥१७२॥ जो मूर्ख ब्राह्मण दण्ड द्वारा गौ को आघात पहुँचाता है, गाड़ी या हल में बैलों को जोतता है, उसे प्रतिदिन गौओं की हत्याएँ लगती हैं, इसमें संशय नहीं॥१७३॥ गौओं को जो जूठा खिलाता है, वृषवाहक को यज्ञ कराता है और वृषवाह का अन्न भोजन कराता है, उसे निश्चित गोहत्या लगती है॥१७४॥ जो शूद्रस्त्री के पति को यज्ञ कराता है तथा जो मनुष्य उसका अन्न खाता है, उसको सैकड़ों गोहत्याएँ लगती हैं, इसमें संदेह नहीं। ॥१७५॥ जो अग्नि की ओर चरण करता है, गौ को पैर से मारता है, स्नान करके बिना चरण धोये घर में घुसता है, उसे गोहत्या लगती है॥१७६॥ जो पैरों में तेल लगाकर भोजन तथा शयन करता और सूर्योदय के समय दो बार भोजन करता है, उसे निश्चित गोहत्या लगती है॥१७७॥ जो ब्राह्मण अवीरा (पति पुत्र रहित विधवा) स्त्री का अन्न भोजन करता है, (स्त्री के) व्यभिचार द्वारा जीविका चलाता है और तीनों काल में संध्योपासन कर्म नहीं करता है, उसे निश्चित गोहत्या लगती है॥१७८॥ जो पर्वतिथियों में पितरों और तिथियों में देवों एवं अतिथियों की सेवा नहीं करता है, उसे निश्चित गोहत्या लगती है॥१७९॥ जो स्त्री अपने पति और भगवान् कृष्ण में भेदभावना रखती है और कटु वाणी से पति को आघात पहुँचाती है, उसे निश्चित गोहत्या लगती है॥१८०॥ जो गोमार्ग को जोतकर खेती करता है, तालाब में और उसके ऊपरी भूमि में भी बीज बोता है, उसे

गोमार्गखननं कृत्वा वपते सस्यमेव च। तडागे वा तदूर्ध्वं वा स गोहत्यां लभेद्ध्रुवम् ॥१८१॥
प्रायश्चित्तं गोवधस्य यः करोति व्यतिक्रमम्। अर्थलोभादथाज्ञानात्स गोहत्यां लभेद्ध्रुवम् ॥१८२॥
राजके दैवके यत्नाद्गोस्वामी गां न पालयेत्। दुःखं ददाति यो मूढो गोहत्यां स लभेद्ध्रुवम् ॥१८३॥
प्राणिनं लङ्घयेद्यो हि देवार्चायां रतं जलम्। नैवेद्यं पुष्पमन्नं च स गोहत्यां लभेद्ध्रुवम् ॥१८४॥
शश्वन्नास्तीति वादी यो मिथ्यावादी प्रतारकः। देवद्वेषी गुरुद्वेषी स गोहत्यां लभेद्ध्रुवम् ॥१८५॥
देवताप्रतिमां दृष्ट्वा गुरुं वा ब्राह्मणं सति। संभ्रमान्न नमेद्यो हि स गोहत्यां लभेद्ध्रुवम् ॥१८६॥
न ददात्याशिषं कोपात्प्रणताय च यो द्विजः। विद्यार्थिने च विद्यां वै स गोहत्यां लभेद्ध्रुवम् ॥१८७॥
गोहत्या ब्रह्महत्या च कथिता चाऽऽतिदेशिकी। यथा श्रुतं सूर्यवक्त्रात्किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥१८८॥

सावित्र्युवाच

वास्तवं चाऽऽतिदेशे च संबन्धे पापपुण्ययोः। न्यूनाधिके च को भेदस्तन्मां व्याख्यातुमर्हसि ॥१८९॥

यम उवाच

कुत्रापि वास्तवः श्रेष्ठो न्यूनोऽतिदेशिकः सदा। कुत्राऽऽतिदेशिकः श्रेष्ठो वास्तवो न्यून एव च ॥१९०॥
कुत्र वा समता साध्वि तयोर्वेदप्रमाणतः। करोति तत्र नाऽऽस्थां यो गुरुहत्यां लभेत्तु सः ॥१९१॥
पुरा परिचिते विप्रे विद्यामन्त्रप्रदातरि। गुरौ पितृत्वमारोपाद्वस्तुतः श्रेष्ठ उच्यते ॥१९२॥
पितुः शतगुणा माता मातुः शतगुणस्तथा। विद्यामन्त्रप्रदाता च गुरुः पूज्यः श्रुतेर्मतः ॥१९३॥

जो धन के लोभवश या अज्ञानवश गोहत्या का प्रायश्चित्त व्यतिक्रम (उलटा-पुलटा) कर डालता है, उसे निश्चित गोहत्या लगती है॥१८२॥ जो गोपाल राजा या देव के उत्सव के दिन गौओं का विशेष सत्कार नहीं करता है, और दुःखी करता है, उस मूर्ख को निश्चित गोहत्या लगती है॥१८३॥ जो किसी प्राणी, देवपूजन के जल, नैवेद्य, पुष्प तथा अन्न को लाँघता है, उसे गोहत्या लगती है॥१८४॥ जो निरन्तर (सबसे) नहीं शब्द का ही प्रयोग करता है, मिथ्यावादी एवं धोखेबाज है, देव और गुरु से द्वेष करता है, उसे निश्चित गोहत्या लगती है ॥१८५॥ देवमूर्ति, गुरु एवं ब्राह्मण को देखते ही जो नम्र नहीं होता है, उसे गोहत्या लगती है॥१८६॥ जो ब्राह्मण क्रुद्ध होने के नाते किसी प्रणत को आशीर्वाद नहीं देता है और विद्यार्थी को विद्या नहीं प्रदान करता है, उसे निश्चित गोहत्या लगती है॥१८७॥ जिस प्रकार मैंने सूर्य के मुख से आतिदेशिकी गोहत्या तथा ब्रह्महत्या सुनी थी वह तुम्हें बता दी। अब और क्या सुनना चाहती हो॥१८८॥

सावित्री बोली—वास्तव और अतिदेश में तथा पाप और पुण्य के न्यूनाधिक सम्बन्ध में क्या भेद है, वह मुझे बतायें ॥१८९॥

यम बोले—हे साध्वि! कहीं वास्तव श्रेष्ठ होता है और आतिदेशिक न्यून होता है। फिर कहीं आतिदेशिक श्रेष्ठ होता है और वास्तव न्यून होता है। कहीं दोनों की समता है, इसमें वेद प्रमाण है। इस प्रमाण में जो आस्था (विश्वास) नहीं रखता है, उसे गुरुहत्या लगती है॥१९०-१९१॥ पहले के परिचित ब्राह्मण और विद्या तथा मन्त्र के प्रदाता गुरु में पितृत्व का आरोप (कल्पना) करना वस्तुतः श्रेष्ठ है॥१९२॥ पिता से सौगुनी माता और माता

गुरुतो गुरुपत्नी च गौरवे च गरीयसी। यथेष्टं देवपत्नी च पूज्या चाभीष्टदेवता॥१९४॥
विप्रः शिवसमो यश्च विष्णुतुल्यपराक्रमः। राजाऽऽतिदेशिकाच्छ्रेष्ठो वास्तवो गुणलक्षतः॥१९५॥
सर्वं गङ्गासमं तोयं सर्वे व्याससमा द्विजाः। ग्रहणे सूर्यशशिनोश्चात्रैव समता तयोः॥१९६॥
आतिदेशिकहत्याया वास्तवश्च चतुर्गुणः। संमतः सर्ववेदानामित्याह कमलोद्भवः॥१९७॥
आतिदेशिकहत्याया भेदश्च कथितः सति। या या गम्या नृणामेव निबोध कथयामि ते॥१९८॥
स्वस्त्री गम्या च सर्वेषामिति वेदे निरूपिता। अगम्या च तदन्या या चेति वेदविदो विदुः॥१९९॥
सामान्यं कथितं सर्वं विशेषं शृणु सुन्दरि। अत्यगम्याश्च या या वै निबोध कथयामि ते॥२००॥
शूद्राणां विप्रपत्नी च विप्राणां शूद्रकामिनी। अत्यगम्याऽतिनिन्द्या च लोके वेदे पतिव्रते॥२०१॥
शूद्रश्चेद्ब्राह्मणीं गच्छेद्ब्रह्महत्याशतं लभेत्। तत्समं ब्राह्मणी चापि कुम्भीपाकं व्रजेद् ध्रुवम्॥२०२॥
यदि शूद्रां व्रजेद्विप्रो वृषलीपतिरेव सः। स भ्रष्टो विप्रजातेश्च चण्डालात्सोऽधमः स्मृतः॥२०३॥
विष्ठासमश्च तत्पिण्डो मूत्रतूल्यं च तर्पणम्। तत्पितॄणां सुराणां च पूजने तत्समं सति॥२०४॥
कोटिजन्मार्जितं पुण्यं संध्यार्चातपसार्जितम्। द्विजस्य वृषलीभोगान्नश्यत्येव न संशयः॥२०५॥

से सौगुने विद्या तथा मन्त्र देने वाले गुरु पूज्य हैं, यह वेद का मत है॥१९३॥ गुरु से गुरुपत्नी का गौरव श्रेष्ठ है, और देवपत्नी भी यथेष्ट पूज्या एवं अभीष्ट देवता के समान है॥१९४॥ ब्राह्मण शिव के समान पूज्य है। और भगवान् विष्णु के समान पराक्रमी राजा भी पूज्य है, किन्तु 'वास्तव' 'आतिदेशिक' से लाख गुना श्रेष्ठ है। ॥१९५॥ इस भाँति सभी जल गङ्गाजल के समान हैं एवं सभी ब्राह्मण व्यास के समान हैं ऐसा सूर्य चन्द्रमा के ग्रहण के समय ही इन दोनों की समता कही गयी है। ॥१९६॥ आतिदेशिक हत्या से वास्तविक हत्या चार गुनी अधिक है, ऐसी समस्त वेदों की सम्मति है और इसे ब्रह्मा ने भी स्वयं कहा है ॥१९७॥ इस प्रकार आतिदेशिक हत्या का भेद मैंने तुम्हें बता दिया, अब मनुष्यों के लिए जो जो गम्य है, उसे बता रहा हूँ, सुनो। वेद में यह बताया गया है कि केवल अपनी ही स्त्री गम्या (भोग करने के योग्य) होती है, ऐसा सभों के लिए आदेश है। और उससे भिन्न अन्य स्त्री अगम्या होती है यह भी वेद-विदों का कहना है॥१९८-१९९॥ हे सुन्दरि। इस भाँति इसका सामान्य भेद तो मैंने बता दिया है अब उसका विशेष भेद बता रहा हूँ, सुनो और अति अगम्या कौन हैं वह भी कह रहा हूँ ॥२००॥ हे पतिव्रते! शूद्रों के लिए ब्राह्मणी और ब्राह्मणों के लिए शूद्र की स्त्री अत्यन्त अगम्या (भोग करने के लिए अत्यन्त अनुपयुक्त) हैं और लोक वेद दोनों में अतिनिन्द्य हैं॥२०१॥ जो शूद्र ब्राह्मणी के साथ भोग करता है उसे सौ ब्रह्महत्यायें लगती हैं, और उसी के समान ब्राह्मणी भी कुम्भीपाक में निश्चित जाती है॥२०२॥ यदि ब्राह्मण शूद्र की स्त्री के साथ गमन करता है, तो उसे वृषलीपति कहा जाता है और ब्राह्मण जाति से भ्रष्ट होने के नाते वह चाण्डाल से भी अधम कहा गया है॥२०३॥ उसका दिया हुआ पिण्ड विष्ठा के समान और तर्पण मूत्र के तुल्य हैं, जो उसके पितरों और देवों के पूजन-समय वैसा ही हो जाता है॥२०४॥ इस प्रकार सन्ध्योपासना, देवार्चन एवं तप द्वारा अर्जित ब्राह्मणों के करोड़ों जन्मों के संचित पुण्य, उस वृषली (शूद्र स्त्री) के साथ भोग करने से तुरन्त नष्ट हो जाते हैं, इसमें सन्देह नहीं॥२०५॥ एवं मद्यपान करने वाला ब्राह्मण, काला नमक खाने वाला वृषली (शूद्र-

ब्राह्मणश्च सुरापीती विड्भोजी वृषलीपतिः। हरिवासरभोजी च कुम्भीपाकं व्रजेद् ध्रुवम् ॥२०६॥
गुरुपत्नीं राजपत्नीं सपत्नीं मातरं प्रसूम्। सुतां पुत्रवधूं श्वश्रूं सगर्भां भगिनीं सति ॥२०७॥
सोदरभ्रातृजायां च मातुलानीं पितृप्रसूम्। मातुः प्रसूं तत्स्वसारं गर्भिणीं भ्रातृकन्यकाम् ॥२०८॥
शिष्यां च शिष्यपत्नीं च भागिनेयस्य कामिनीम्। भ्रातुः पुत्रप्रियां चैवाप्यगम्यामाह पद्मजः ॥२०९॥
एतास्वेकामनेकां वा यो व्रजेन्मानवोऽधमः। स्वमातृगामी वेदेषु ब्रह्महत्याशतं लभेत् ॥२१०॥
अकर्मार्होऽपि सोऽस्पृश्यो लोके वेदेऽतिनिन्दितः। स याति कुम्भीपाकं च महापापी सुदुस्तरम् ॥२११॥
करोत्यशुद्धां संध्यां च संध्यां वा न करोति यः। त्रिःसंध्यां वर्जयेद्यो वा संध्याहीनश्च स द्विजः ॥२१२॥
वैष्णवं च तथा शैवं शाक्तं सौरं च गाणपम्। योऽहंकारान्न गृह्णाति मन्त्रं सोऽदीक्षितः स्मृतः ॥२१३॥
प्रवाहमवधिं कृत्वा यावद्धस्तचतुष्टयम्। तत्र नारायणः स्वामी गङ्गागर्भान्तरे वरे ॥२१४॥
तत्र नारायणक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे हरेः पदे। वाराणस्यां बदर्यां च गङ्गासागरसंगमे ॥२१५॥
पुष्करे भास्करक्षेत्रे प्रभासे रासमण्डले। हरिद्वारे च केदारे सोमे बदरिकाश्रमे ॥२१६॥
सरस्वतीनदीतीरे पुण्ये वृन्दावने वने। गोदावर्यां च कौशिक्यां त्रिवेण्यां च हिमालये ॥२१७॥
एष्वन्यत्र च यो दानं प्रतिगृह्णाति कामतः। स च तीर्थप्रतिग्राही कुम्भीपाकं प्रयाति च ॥२१८॥
शूद्रातिरिक्तयाजी यो ग्रामयाजी च कीर्तितः। तथा देवोपजीवी यो देवलः परिकीर्तितः ॥२१९॥

स्त्री का) पति (ब्राह्मण), और एकादशी को अन्न खाने वाला निश्चित कुम्भीपाक (नरक) में जाता है ॥२०६॥ गुरुपत्नी, राजा की पत्नी, सौतेली माता, जननी, कन्या, पुत्रस्त्री (पतोहू), सास, सास की भगिनी, सगे भाई की स्त्री, मामी, पिता की माता, नानी, नानी की बहिन, भगिनी, भाई की कन्या, शिष्या, शिष्य की पत्नी, भानजे की पत्नी और भाई के पुत्र की वधू (पतोहू), इतनी स्त्रियाँ अगम्या होती हैं, ऐसा ब्रह्मा ने कहा है ॥२०७-२०९॥ इनमें किसी एक के अथवा अनेक के साथ जो भोग करता है, वह नराधम अपनी माता के साथ भोग करता है ऐसा वेदों में बताया गया है और उसे सैकड़ों ब्रह्महत्याएँ लगती हैं ॥२१०॥ वह सभी (शुभ) कर्मों के करने के अयोग्य, अछूत एवं लोक-वेद में अतिनिन्दित होता है और वह महापापी अतिदुस्तर कुम्भीपाक में जाता है ॥२११॥ जो अशुद्ध सन्ध्या करता है, अथवा सन्ध्या नहीं करता—तीनों संध्याओं को नहीं करता है वह ब्राह्मण सन्ध्याहीन कहा जाता है ॥२१२॥ जो वैष्णव, शैव, शाक्त, सौर तथा गाणपत्य मन्त्र का, अहङ्कारवश ग्रहण नहीं करता है, वह अदीक्षित कहा जाता है ॥२१३॥ (जल में) प्रवाह से चार हाथ किनारे की ओर की भूमि को, जो श्रेष्ठ गंगा-गर्भान्तर है, नारायणक्षेत्र कहते हैं। उसके स्वामी स्वयं नारायण देव हैं। उस नारायणक्षेत्र में, कुरुक्षेत्र में, विष्णुपद, वाराणसी, बदरी, गंगासागरसंगम, पुष्कर, भास्करक्षेत्र, प्रभास, रासमण्डल, हरिद्वार, केदार, सोम, बदरिकाश्रम, सरस्वती नदी के किनारे, पुण्य वृन्दावन नामक वन, गोदावरी, कौशिकी, त्रिवेणी एवं हिमालय, इन स्थानों में तथा अन्य स्थानों में भी जो कामनापूर्वक दान ग्रहण करता है, वह तीर्थप्रतिग्राही है, उसे कुम्भीपाक नरक में जाना पड़ता है ॥२१४-२१८॥ शूद्र से अतिरिक्त अन्य के यज्ञ कराने वाले को ग्रामयाजी कहते हैं। और देवोपजीवी (देवपूजा से जीविका चलाने वाले) को देवल (पुजारी) कहते हैं ॥२१९॥ शूद्र के

शूद्रपाकोपजीवी यः सूपकार इति स्मृतः। संध्यापूजाविहीनश्च प्रमत्तः पतितः स्मृतः ॥२२०॥
उक्तं पूर्वप्रकरणे लक्षणं वृषलीपतेः । एते महापातकिनः कुम्भीपाकं प्रयान्ति ते ॥२२१॥
कुण्डान्यन्यानि ये यान्ति निबोध कथयामि ते ॥२२२॥

इति श्रीब्रह्म० महा० प्रकृति० नारदना० सावित्र्यु० यमसावित्रीसं० कर्मविपाके पापिनरकनिरूपणं शिवप्राशस्त्यं ब्रह्महत्यादिपदार्थपरिभाषानिरूपणं नाम त्रिंशोऽध्यायः ॥३०॥

अथैकत्रिंशोऽध्यायः

यम उवाच

हरिसेवां विना साध्वि न लभेत्कर्मखण्डनम्। शुभकर्म स्वर्गबीजं नरकं च कुकर्मतः ॥१॥
पुंश्चल्यन्नं च यो भुङ्क्ते वेश्यान्नं च पतिव्रते। तां व्रजेत्तु द्विजो यो हि कालसूत्रं प्रयाति सः ॥२॥
शतवर्षं कालसूत्रे स्थित्वा शूद्रो भवेद् ध्रुवम्। तत्र जन्मनि रोगी च ततः शुद्धो भवेद्द्विजः ॥३॥
पतिव्रता चैकपत्नी द्वितीये कुलटा स्मृता। तृतीये धर्षिणी ज्ञेया चतुर्थे पुंश्चली स्मृता ॥४॥

पाकालय में रहकर जीविका चलाने वाला भंडारी कहा जाता है। संध्या-पूजन से हीन को प्रमत्त और पतित कहते हैं ॥२२०॥ पूर्व प्रकरण में वृषलीपति का लक्षण बता दिया गया है। ये महापातकी लोग कुम्भीपाक नरक में जाते हैं॥२२१॥ (नरक के) अन्य कुण्डों में जो जाते हैं, उन्हें भी बता रहा हूँ, सुनो ॥२२२॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के दूसरे प्रकृतिखण्ड में नारद-नारायण-संवाद-विषयक सावित्री-उपाख्यान में यम-सावित्री-संवाद के कर्मविपाक-प्रकरण में ब्रह्महत्यादिपदार्थ-परिभाषा-निरूपण नामक तीसवाँ अध्याय समाप्त ॥३०॥

अध्याय ३१

पापियों के नरककुण्डों का निर्णय

यम बोले—हे साध्वि! बिना भगवान् की सेवा किये कर्मों का नाश नहीं होता है; क्योंकि शुभकर्म से स्वर्ग की प्राप्ति होती है और कुकर्म से नरक प्राप्त होता है॥१॥ हे पतिव्रते! व्यभिचारिणी स्त्री का अन्न एवं वेश्या का अन्न खाने वाला और वेश्या का भोग करने वाला ब्राह्मण कालसूत्र नामक नरक में जाता है॥२॥ वहाँ सौ वर्ष तक कालसूत्र में रहकर अन्त में शूद्र के यहाँ उत्पन्न होता है, और जन्म से ही रोगी रहता है, पश्चात् उस ब्राह्मण की शुद्धि होती है॥३॥ इस प्रकार एक पति वाली स्त्री पतिव्रता, दो पति वाली स्त्री 'कुलटा', तीन पति वाली 'धर्षिणी' और चार पति (पुरुषों से संभोग कराने) वाली स्त्री पुँश्चली कही जाती है॥४॥ पाँच से संभोग

वेश्या च पञ्चमे षष्ठे युग्मी[1] च सप्तमेऽष्टमे॥ तत ऊर्ध्वं महावेश्या साऽस्पृश्या सर्वजातिषु ॥५॥
यो द्विजः कुलटां गच्छेद्धर्षिणीं पुंश्चलीमपि। वेश्यां युग्मीं महावेश्यामवटोदं प्रयाति सः॥६॥
शताब्दं कुलटागामी धृष्टागामी चतुर्गुणम्। षड्गुणं पुंश्चलीगामी वेश्यागामी गुणाष्टकम् ॥७॥
युग्मीगामी दशगुणं वसेत्तत्र न संशयः। महावेश्याकामुकश्च ततः शतगुणं वसेत् ॥८॥
तदा हि सर्वगामी चेत्येवमाह पितामहः। तत्रैव यातनां भुङ्क्ते यमदूतेन ताडितः॥९॥
तित्तिरः कुलटागामी धृष्टागामी च वायसः। कोकिलः पुंश्चलीगामी वेश्यागामी वृकस्तथा ॥१०॥
युग्मीगामी सूकरश्च सप्तजन्मसु भारते। महावेश्याकामुकश्च श्मशाने शाल्मलिस्तरुः॥११॥
यो भुङ्क्ते ज्ञानहीनश्च ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः। अरुंतुदं स यात्येव चन्द्रमानाब्दमेव च॥१२॥
ततो भवेन्मानवश्चाप्युदरव्याधिसंयुतः। गुल्मयुक्तश्च काणश्च दन्तहीनस्ततः शुचिः॥१३॥
वाक्प्रदत्तां हि कन्यां च यश्चान्यस्मै ददाति च। स वसेत्पांशुभोगे[2] च तद्भोजी च शताब्दकम् ॥१४॥
दत्तापहारी यः साध्वि पाशवेष्टं शताब्दकम्। निवसेच्छरशय्यायां यमदूतेन ताडितः॥१५॥
न पूजयेद्यो हि भक्त्या शिवलिङ्गं च पार्थिवम्। स याति शूलिनः कोपाच्छूलप्रोतं सुदारुणम् ॥१६॥
स्थित्वा शताब्दं तत्रैव श्वापदः सप्तजन्मसु। ततो भवेद्देवलश्च सप्तजन्मस्वतः शुचिः॥१७॥

कराने वाली को 'वेश्या', छह से भोग करानेवाली को 'युग्मी' और इससे अधिक वाली को 'महावेश्या' कहते हैं, वह सभी जातियों में अछूत है॥५॥ जो ब्राह्मण कुलटा, धर्षिणी, पुंश्चली, वेश्या, युग्मी और महावेश्या के साथ संभोग करता है, वह अवटोद नामक नरक में जाता है॥६॥ वहाँ कुलटागामी सौ वर्ष, उससे चौगुने वर्ष धृष्टागामी, उससे छह गुने पुंश्चलीगामी, आठ गुने वेश्यागामी, दस गुने युग्मीगामी और महावेश्यागामी कामी उससे सौ गुने अधिक वर्ष तक रहता है, इसमें संशय नहीं॥७-८॥ तब वह सर्वगामी भी कहा जाता है, ऐसा ब्रह्मा ने कहा है। इस प्रकार वह वहाँ यमदूतों द्वारा ताड़ित होते हुए यातनाएँ भोगता है॥९॥ पश्चात् भारत में सात जन्मों तक कुलटागामी तित्तिर, धृष्टागामी कौवा, पुंश्चलीगामी कोकिल, वेश्यागामी भेड़िया, युग्मीगामी सूकर और महावेश्यागामी श्मशान में सेमर का वृक्ष होता है॥१०-११॥ जो चन्द्र-सूर्य के ग्रहण समय अज्ञानवश भोजन करता है, वह चन्द्रमा के प्रमाण वर्ष तक अरुन्तुद नामक नरक में रहता है॥१२॥ पश्चात् मानव के यहाँ जन्म ग्रहण कर उदररोग से पीड़ित, गुल्म का रोगी, काना और दाँतों से रहित होता है। अनन्तर उसकी शुद्धि होती है॥१३॥ वाग्दान द्वारा दी हुई कन्या को जो अन्य किसी को दे देता है, वह सौ वर्ष तक पांशुभोग नामक नरक में जाता है और वही (धूलि) भोजन भी करता है॥१४॥ हे साध्वि! दान दी हुई वस्तु का अपहरण करनेवाला फाँस से आबद्ध होकर शरशय्या नामक नरक में सौ वर्ष तक यमदूतों द्वारा ताड़ित होता है॥१५॥ जो भक्तिपूर्वक भगवान् शङ्कर के पार्थिव लिङ्ग का पूजन नहीं करता है, वह शङ्करजी के कोप के कारण शूलप्रोत नामक अति दारुण नरक में जाता है॥१६॥ वहाँ सौ वर्ष तक यातनाओं को भोगकर यहाँ सात जन्मों तक हिंसक पशु और सात जन्मों तक मन्दिर का पुजारी होता है, अनन्तर शुद्ध होता है॥१७॥ जो ब्राह्मण को दण्ड देता है और जिसके भय से ब्राह्मण कम्पित

१क. युङ्गी। २क. शुकुण्डे च।

करोति दण्डं यो विप्रे यद्भयात्कम्पते द्विजः। प्रकम्पने वसेत्सोऽपि विप्रलोमाब्दमेव च॥१८॥
प्रकोपवदना कोपात्स्वामिनं या च पश्यति। कटूक्तिं तं च वदति याति चोल्कामुखं च सा॥१९॥
उल्कां ददाति वक्त्रे च सततं यमकिङ्करः। दण्डेन ताडयेन्मूर्ध्नि तल्लोमाब्दप्रमाणकम्॥२०॥
ततो भवेन्मानवी च विधवा सप्तजन्मसु। भुक्त्वा दुःखं च वैधव्यं व्याधियुक्ता ततः शुचिः॥२१॥
या ब्राह्मणी शूद्रभोग्या साऽन्धकूपं प्रयाति च। तप्तशौचोदके ध्वान्ते तदाहारा दिवानिशम्॥२२॥
निवसेदतिसंतप्ता यमदूतेन ताडिता। शौचोदके निमग्ना च यावदिन्द्राश्चतुर्दश॥२३॥
काकी जन्मसहस्राणि शतजन्मानि सूकरी। कुक्कुटी शतजन्मानि शृगाली सप्तजन्मसु॥२४॥
पारावती सप्तजनौ वानरी सप्तजन्मसु। ततो भवेत्सा चण्डाली सर्वभोग्या च भारते॥२५॥
ततो भवेच्च रजकी यक्ष्मग्रस्ता च पुंश्चली। ततः कुष्ठयुता तैलकारी शुद्धा भवेत्ततः॥२६॥
वेश्या वसेद्वेधने च युग्मी[1] वै दण्डताडने। जालबन्धे महावेश्या कुलटा देहचूर्णके॥२७॥
स्वैरिणी दलने[2] चैव धृष्टा वै शोषणे तथा। निवसेद्यातनायुक्ता यमदूतेन ताडिता॥२८॥
विण्मूत्रभक्षणं तत्र यावन्मन्वन्तरं सति। ततो भवेद्विट्कृमिश्च वर्षलक्षं ततः शुचिः॥२९॥

होता है, वह उस ब्राह्मण के लोमप्रमाण वर्ष तक प्रकम्पन नरक में रहता है॥१८॥ अतिक्रोध मुख वाली जो स्त्री क्रुद्ध होकर अपने पति को देखती है और उन्हें कटु वाणी भी कहती है, वह उल्कामुख नामक नरक में जाती है॥१९॥ वहाँ यम के दूत निरन्तर उसके मुख में उल्का (जलती हुई लकड़ी) डालते हैं और उसके लोमप्रमाण वर्ष तक दण्ड से उसके शिर पर आघात पहुँचाते हैं॥२०॥ पश्चात् सात जन्मों तक वह मनुष्य होकर विधवा होती है। इस भाँति विधवा-दुःख अनुभव करके वह रोगपीड़ित होती है और अनन्तर शुद्ध होती है॥२१॥ जो ब्राह्मणी शूद्र से संभोग कराती है, वह अन्धकूप नामक नरक में जाती है। वहाँ शौच के संतप्त जल में और अँधेरे में वही पीकर दिन-रात रहती है॥२२॥ इस भाँति अतिसंतप्त होकर निवास करने पर भी यमदूत उसे ताड़ना देते हैं। इस प्रकार उस शौचजल में वह चौदह इन्द्रों के समय तक रहती है॥२३॥ पश्चात् भारत में सहस्र जन्मों तक कौए की मादा, सौ जन्मों तक सूकरी, सौ जन्मों तक मुर्गी, सात जन्मों तक सियारिन, सात जन्मों तक कबूतरी, और सात जन्मों तक वानरी होकर अनन्तर भारत में चाण्डाली, सर्वजनभोग्या, धोबिन तथा यक्ष्मा से पीड़ित वेश्या होती है। अनन्तर कुष्ठ रोग से पीड़ित तेलिन होती है और तब उसकी शुद्धि होती है॥२४-२६॥ उसी प्रकार वेश्या वेधन नरक में, युग्मी दण्डताडन नरक में, महावेश्या जालबन्ध नरक में, कुलटा देहचूर्ण नरक में, तथा स्वैरिणी दलन नरक में, धृष्टा शोषण नरक में जाती है और यमदूतों द्वारा ताड़ित होकर भाँति-भाँति की यातनाओं को सहन करती है। इस प्रकार एक मन्वन्तर के समय तक वहाँ विष्ठा भक्षण करके रहती है। पश्चात् लाख वर्ष तक विष्ठा का कीड़ा होती है। तब उसकी शुद्धि होती है॥२७-२९॥ यदि ब्राह्मण किसी अन्य ब्राह्मणी के

१क. युङ्गी। २क. दण्डने।

ब्राह्मणो ब्राह्मणीं गच्छेत्क्षत्रियामपि क्षत्रियः । वैश्यो वैश्यां च शूद्रां च शूद्रो वाऽपि व्रजेद्यदि ॥ ३०॥
स्ववर्णपरदारी च कषं याति तया सह। भुक्त्वा कषायतप्तोदं निवसेद्द्वादशाब्दकम् ॥३१॥
ततो विप्रो भवेच्छुद्धश्चैवं च क्षत्रियादयः । योषितश्चापि शुध्यन्तीत्येवमाह पितामहः ॥३२॥
क्षत्रियो ब्राह्मणीं गच्छेद्वैश्यो वाऽपि पतिव्रते। मातृगामी भवेत्सोऽपि शूर्पं च नरकं व्रजेत् ॥३३॥
शूर्पाकारैश्च कृमिभिर्ब्राह्मण्या सह भक्षितः । प्रतप्तमूत्रभोजी च यमदूतेन ताडितः ॥३४॥
तत्रैव यातनां भुङ्क्ते यावदिन्द्राश्चतुर्दश । सप्तजन्मसु वाराहश्छागलश्च ततः शुचिः ॥३५॥
करे धृत्वा च तुलसीं प्रतिज्ञां यो न पालयेत्। मिथ्या वा शपथं कुर्यात्स च ज्वालामुखं व्रजेत् ॥३६॥
गङ्गातोयं करे धृत्वा प्रतिज्ञां यो न पालयेत्। शिलां च देवप्रतिमां स च ज्वालामुखं व्रजेत् ॥३७॥
दत्त्वा च दक्षिणं हस्तं प्रतिज्ञां यो न पालयेत्। स्थित्वा देवगृहे वाऽपि स च० ॥३८॥
स्पृष्ट्वा च ब्राह्मणं गां च वह्निं विष्णुसमं सति। न पालयेत्प्रतिज्ञां च स च० ॥३९॥
मित्रद्रोही कृतघ्नश्च यो हि विश्वासघातकः । मिथ्यासाक्ष्यप्रदश्चैव स च० ॥४०॥
एते तत्र वसन्त्येव यावदिन्द्राश्चतुर्दश। यथाऽङ्गारप्रदग्धाश्च यमदूतैश्च ताडिताः॥४१॥

साथ, क्षत्रिय अन्य क्षत्रियपत्नी के साथ, वैश्य अन्य वैश्य की पत्नी के साथ और शूद्र अन्य शूद्र की पत्नी के साथ संभोग करता है, तो वह अपनी जाति की अन्य स्त्री के साथ रमण करने वाला पुरुष उस स्त्री के साथ कष नरक में जाता है। वहाँ बारह वर्ष तक कसैला और तप्त जल वाले कुण्ड में रहकर वही पान करते हुए निवास करता है॥३०-३१॥ अनन्तर ब्राह्मण शुद्ध होता है । इसी प्रकार क्षत्रिय आदि और स्त्रियाँ शुद्ध होती हैं ऐसा ब्रह्मा ने स्वयं कहा है॥३२॥ हे पतिव्रते! क्षत्रिय या वैश्य यदि ब्राह्मणी के साथ रमण करता है, तो वह मातृगामी (माता के साथ व्यभिचार करनेवाला) कहा जाता है और वह शूर्प नामक नरक में जाता है॥३३॥ वहाँ सूप के आकार वाले कीड़े ब्राह्मणी समेत उस पुरुष को नित्य (काट-काट कर) खाते हैं और पुरुष खौलते हुए मूत्र का पान करता है और यमदूतों द्वारा ताड़ित होता है॥३४॥ इस प्रकार चौदह इन्द्रों के समय तक वहाँ यातनाओं को भोगकर यहाँ सात जन्मों तक सूकर और बकरा होता है, तब उसकी शुद्धि होती है॥३५॥ हाथ में तुलसी लिए प्रतिज्ञा करके जो कोई उसका पालन नहीं करता है अथवा मिथ्या शपथ करता है, वह ज्वालामुख नरक में जाता है॥३६॥ जो हाथ में गंगाजल, शालग्रामशिला या देवप्रतिमा को लिए प्रतिज्ञा करता है और उसका पालन नहीं करता है, वह भी ज्वालामुख नामक नरक में जाता है॥३७॥ अपना दाहिना हाथ देकर जो प्रतिज्ञा करता है या देवमन्दिर में रहकर प्रतिज्ञा करता है और उसका पालन नहीं करता है, वह ज्वालामुख नरक में जाता है। ॥३८॥ विष्णु के समान होने वाले ब्राह्मण, गौ और अग्नि का स्पर्श करके जो प्रतिज्ञा का पालन नहीं करता है, वह ज्वालामुख नरक में जाता है॥३९॥ मित्र का द्रोही, कृतघ्न (उपकार न मानने वाला), विश्वासघाती एवं झूठी गवाही देने वाला ज्वालामुख नामक नरक में जाता है॥४०॥ इस प्रकार ये सभी प्राणी चौदह इन्द्रों के समय तक वहाँ अंगार से जले हुए की भाँति संतप्त रहते हुए निरन्तर यमदूतों द्वारा ताडित होते हैं ॥४१॥

चण्डालस्तुलसीस्पर्शी सप्तजन्मस्वतः शुचिः। म्लेच्छो गङ्गाजलस्पर्शी पञ्चजन्मस्वतः शुचिः ॥४२॥
शिलास्पर्शी विट्कृमिश्च सप्तजन्मसु सुन्दरि। अर्चास्पर्शी व्रणकृमिःसप्तजन्मस्वतः शुचिः ॥४३॥
दक्षहस्तप्रदाता च सर्पः स्यात्सप्तजन्मसु। ततो भवेद्धस्तहीनो मानवश्च ततः शुचिः ॥४४॥
मिथ्यावादी देवगृहे देवलः सप्तजन्मसु। विप्रादिस्पर्शकारी च सोऽग्रदानी भवेद्ध्रुवम् ॥४५॥
ततो भवन्ति मूकास्ते बधिराश्च त्रिजन्मसु। भार्याहीना वंशहीना [1]बुद्धिहीनास्ततः शुचिः ॥४६॥
मित्रद्रोही च नकुलः कृतघ्नश्चापि गण्डकः। विश्वासघाती व्याघ्रश्च सप्तजन्मसु भारते ॥४७॥
मिथ्यासाक्ष्यप्रदश्चैव भल्लूकः सप्तजन्मसु। पूर्वान्सप्त परान्सप्त पुरुषान्हन्ति चाऽऽत्मनः ॥४८॥
नित्यक्रियाविहीनश्च जडत्वेन युतो द्विजः। यस्यानास्था वेदवाक्ये मन्दं हसति संततम् ॥४९॥
व्रतोपवासहीनश्च सद्वाक्यपरिनिन्दकः। जिह्मे जिह्मो वसेत्सोऽपि शताब्दं च हिमोदके ॥५०॥
जलजन्तुर्भवेत्सोऽपि शतजन्मक्रमेण च। ततो नानाप्रकारा च मत्स्यजातिस्ततः शुचिः ॥५१॥
यो वा धनस्यापहारं देवब्राह्मणयोश्चरेत्। पातयित्वा स्वपुरुषान्दश पूर्वान्दशापरान् ॥५२॥

तुलसी का स्पर्श करके झूठी शपथ खाने वाला सात जन्मों तक चाण्डाल होने के बाद शुद्ध होता है और गंगाजल का स्पर्श करके झूठी शपथ खाने वाला पाँच जन्मों तक म्लेच्छ होकर शुद्ध होता है। हे सुन्दरि! शालग्राम शिला का स्पर्श करके झूठी शपथ खाने वाला सात जन्मों तक विष्ठा का कीड़ा होता है और अर्चा का स्पर्श के मिथ्या शपथ करने वाला सात जन्मों तक घाव का कीड़ा होता है और अनन्तर शुद्ध होता है ॥४२-४३॥ दाहिने हाथ को आगे रखकर मिथ्या शपथ करने वाला सात जन्मों तक सर्प होता है। पश्चात् हाथ रहित मनुष्य होकर शुद्ध होता है ॥४४॥ देवमन्दिर में झूठ बोलने वाला सात जन्मों तक देवल (मन्दिर का पुजारी) होता है। ब्राह्मण आदि का स्पर्श करने वाला निश्चित महापात्र होता है ॥४५॥ अनन्तर तीन जन्म तक गूँगा और बहरा होता है, जो स्त्रीहीन, सन्तानहीन और बुद्धिहीन रहता है पश्चात् शुद्ध होता है ॥४६॥ मित्र का द्रोही भारत में सात जन्मों तक नेवला, कृतघ्न गैंड़ा, विश्वासघाती बाघ और झूठी गवाही देने वाला भालू होता है। इस प्रकार ये सभी सात जन्मों तक अपने-अपने दुष्परिणाम भोगते हैं तथा अपने-अपने पूर्व और पर की सात-सात पीढ़ियों को भी नरक ले जाकर हनन करते हैं ॥४७-४८॥ जो नित्य-क्रिया से हीन एवं जड़ (मूर्ख) ब्राह्मण है, जो वेदवाक्यों में अविश्वास रखनेवाला है, जो मन्द बुद्धिवाले (मूर्ख) का निरन्तर उपहास करता है, जो व्रत-उपवास से रहित होकर सात्त्विक बातों की भलीभाँति निन्दा करता है और कुटिल के साथ कुटिल बन जाता है, वह हिम (बर्फ) के कुण्ड में सौ वर्ष तक दुःखानुभव करता है ॥४९-५०॥ पश्चात् सौ जन्मों तक क्रमशः जल-जीव और अनेक भाँति की मछली होता है, तब उसकी शुद्धि होती है ॥५१॥ जो देवों या ब्राह्मणों का धन अपहरण करता है, वह अपने पूर्व के दश और पर के दश पुरुषों को नरक भेजकर स्वयं धूमांध नामक नरक में जाता

१क. बन्धुही०।

स्वयं याति च धूमान्धं धूमध्वान्तसमन्वितम्। धूमक्लिष्टो धूमभोजी वसेत्तत्र चतुर्युगम्॥५३॥
ततो मूषकजातिश्च शतजन्मानि भारते। ततो नानाविधाः पक्षिजातयः कृमिजातयः॥५४॥
ततो नानाविधा वृक्षजातयश्च ततो नरः। भार्याहीनो वंशहीनः[1] शबरो व्याधिसंयुतः॥५५॥
ततो भवेत्स्वर्णकारः सुवर्णस्य वणिक्तथा। ततो यवनसेवी च ब्राह्मणो गणकस्ततः॥५६॥
विप्रो दैवज्ञोपजीवी वैद्यजीवी चिकित्सकः। व्यापारी लोहलाक्षादे रसादेर्विक्रयी च यः॥५७॥
स याति नागवेष्टं च नागैर्वेष्टित एव च। वसेत्स्वलोममानाब्दं तत्र वै नागदंशितः॥५८॥
ततो भवेत्स गणको वैद्यो वै सप्तजन्मसु। गोपश्च कर्मकारश्च [2]शङ्खकारस्ततः शुचिः॥५९॥
प्रसिद्धानि च कुण्डानि कथितानि पतिव्रते। अन्यानि चाप्रसिद्धानि तत्र क्षुद्राणि सन्ति वै॥६०॥
सन्ति पातकिनस्तेषु स्वकर्मफलभोगिनः। भ्रमन्ति तावत्संसारे किं भूयः श्रोतुमिच्छसि॥६१॥

इति श्रीब्रह्म० महा० प्रकृति० नारदना० सावित्र्यु० कर्मविपाके पापिनां कुण्डनिर्णयो नामैकत्रिंशोऽध्यायः॥३१॥

है, जो धूम के घने अंधकार से आच्छन्न रहता है। वहाँ धूम से दुःखी होकर धूम का भोजन करता हुआ वह चारों युगों के समय तक रहता है॥५२-५३॥ पश्चात् भारत में सौ जन्मों तक मूषक (चूहा), अनेक भाँति के पक्षी और अनेक रंग के कीड़े होता है॥५४॥ पुनः अनेक भाँति के वृक्ष होकर जंगली मनुष्य होता है, जो स्त्रीहीन, सन्तानहीन और व्याधि-पीड़ित रहता है॥५५॥ अनन्तर सोनार, सुवर्ण का व्यापारी, यवन (मुसलमान) का सेवक और ज्योतिष का ज्ञाता ब्राह्मण होता है॥५६॥ जो ब्राह्मण ज्योतिषशास्त्र से अपनी जीविका चलाता है, चिकित्सक वैद्य होता है, लोहा, लाख (लाह) का व्यापारी और रस (भस्म) का विक्रेता होता है, वह नागवेष्ट नामक नरक में जाता है वहाँ नागों (सर्पों) से आवेष्टित होकर अपने लोम के प्रमाण वर्ष तक रहता है और नित्य नाग लोग उसे काटते रहते हैं॥५७-५८॥ पश्चात् सात जन्मों तक ज्योतिषी, वैद्य, गोप (अहीर), कर्मकार (बढ़ई), और शंख बनाने वालों की जाति में उत्पन्न होता है। तब उसकी शुद्धि होती है। हे पतिव्रते! इस प्रकार प्रसिद्ध कुण्डों को तो मैंने तुम्हें बता दिया है। इसी भाँति अन्य अप्रसिद्ध कुण्ड भी वहाँ बहुत हैं और इनसे छोटे-छोटे भी कुण्ड हैं, जिनमें अपने कर्म के फल भोगने वाले पातकी पड़े रहते हैं जो संसार में भी इधर-उधर भ्रमण किया करते हैं। अनन्तर अब क्या सुनना चाहती हो॥५९-६१॥

श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराण के दूसरे प्रकृतिखण्ड में नारद-नारायण-संवादविषयक सावित्री-उपाख्यान के कर्मविपाक में पापियों के कुण्डनिर्णय नामक इकतीसवाँ अध्याय समाप्त॥३१॥

१क. ०नः स भवेद्व्या०। २क. रङ्गका०।

अथ द्वात्रिंशोऽध्यायः

सावित्र्युवाच

धर्मराज महाभाग वेदवेदाङ्गपारग । नानापुराणेतिहासपाञ्चरात्रप्रदर्शक ॥१॥
सर्वेषु सारभूतं यत्सर्वेष्टं सर्वसंमतम् । कर्मच्छेदे बीजरूपं प्रशस्यं सुखदं नृणाम् ॥२॥
यशःप्रदं धर्मदं च सर्वमङ्गलमङ्गलम् । येन यामीं न ते यान्ति यातनां भवदुःखदाम् ॥३॥
कुण्डानि च न पश्यन्ति तत्र नैव पतन्ति च । न भवेद्येन जन्मादि तत्कर्म वद सुव्रत ॥४॥
किमाकाराणि कुण्डानि कानि तेषां मतानि च । केन रूपेण तत्रैव सदा तिष्ठन्ति पापिनः ॥५॥
स्वदेहे भस्मसाद्भूते यान्ति लोकान्तरं नराः । केन देहेन वा भोगं भुञ्जते वा शुभाशुभम् ॥६॥
सुचिरं क्लेशभोगेन कथं देहो न नश्यति । देहो वा किंविधो ब्रह्मन्तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥७॥

नारायण उवाच

सावित्रीवचनं श्रुत्वा धर्मराजो हरिं स्मरन् । कथां कथितुमारेभे गुरुं नत्वा च नारद ॥८॥

यम उवाच

वत्से चतुर्षु वेदेषु धर्मो वै संहितासु च । पुराणेष्वितिहासेषु पाञ्चरात्रादिकेषु च ॥९॥

अध्याय ३२

भोग-शरीर आदि का वर्णन

सावित्री बोली—हे धर्मराज, हे महाभाग, हे वेदविदों में श्रेष्ठ ! आप सभी पुराण, इतिहास और पाञ्चरात्र मत के प्रदर्शक हैं ? अतः आप इन सभी का तत्त्वरूप, जो सभी को इष्ट (प्रिय) सबको मान्य, मनुष्यों के कर्म-नाश करने में मूलभूत, प्रशस्त, सुखप्रद, यशोदायक, धर्मदाता और समस्त मंगलों का मंगल है, बताने की कृपा करें, जिससे यम की यातनाएँ और संसारी दुःख न प्राप्त हों। हे सुव्रत ! ऐसा कर्म बतायें जिससे नरक कुण्डों के दर्शन न हों और उसमें गिरें नहीं तथा जन्म-मरण से रहित हो जायँ ॥१-४॥ कुण्डों के आकार कैसे हैं उनके मत (सिद्धान्त) क्या हैं, पापीगण वहाँ किस रूप से सदा निवास करते हैं ॥५॥ अपनी देह के (चिता) भस्म हो जाने पर जीव दूसरे लोक में चला जाता है, तो वहाँ शुभ-अशुभ कर्मों का परिणाम किस देह से भोगता है ॥६॥ अत्यन्त चिरकाल तक वहाँ दुःखों को भोगते रहने पर वह देह नष्ट क्यों नहीं होती है। तथा हे ब्रह्मन् ! वह देह किस प्रकार की होती है, मुझे यह सब बताने की कृपा करें ॥७॥

नारायण बोले—हे नारद ! सावित्री की ऐसी बातें सुन कर धर्मराज ने भगवान् का स्मरण करते हुए गुरु को नमस्कार किया और तब कथा कहना प्रारम्भ किया ॥८॥

यम बोले—हे वत्से ! चारों वेदों, संहिताओं, पुराणों, इतिहासों और पाञ्चरात्र आदि ग्रंथों में तथा हे सुव्रते ! अन्य सभी शास्त्रों, (व्याकरणादि) वेदांगों में यही एक धर्म बताया गया है कि—भगवान् श्रीकृष्ण का

अन्येषु सर्वशास्त्रेषु वेदाङ्गेषु च सुव्रते। सर्वेष्टं सारभूतं च मङ्गलं कृष्णसेवनम् ॥१०॥
जन्ममृत्युजरारोगशोकसंतापतारणम् । सर्वमङ्गलरूपं च परमानन्दकारणम् ॥११॥
कारणं सर्वसिद्धीनां नरकार्णवतारणम् । भक्तिवृक्षाङ्कुरकरं कर्मवृक्षनिकृन्तनम् ॥१२॥
गोलोकमार्गसोपानमविनाशिपदप्रदम्[1] । सालोक्यसार्ष्टिसारूप्यसामीप्यादिप्रदं शुभे ॥१३॥
कुण्डानि यमदूतं च यमं च यमकिङ्करान्। स्वप्नेऽपि नहि पश्यन्ति सति श्रीकृष्णकिङ्कराः ॥१४॥
हरिव्रतं ये कुर्वन्ति गृहिणः कर्मभोगिणः। ये स्नान्ति हरितीर्थे च नाश्नन्ति हरिवासरे ॥१५॥
प्रणमन्ति हरिं नित्यं हर्यर्चां पूजयन्ति च। न यान्ति ते च घोरां च मम संयमनीं पुरीम् ॥१६॥
त्रिसंध्यपूता विप्राश्च शुद्धाचारसमन्विताः । स्वधर्मनिरताः शान्ता न यान्ति यममन्दिरम् ॥१७॥
ते स्वर्गभोगिणोऽन्ये च शुद्धा देवान्यकिङ्कराः। यान्त्यायान्ति च मर्त्यं च स्वर्गं च नहि निर्वृताः।
निर्वृत्तिं न हि लिप्सन्ति कृष्णसेवां विना नराः ॥१८॥
स्वकर्मनिरताश्चापि स्वधर्मनिरतास्तथा । गच्छन्तो मर्त्यलोकं च दुर्धर्षा यमकिङ्कराः ॥१९॥
भीताः कृष्णोपासकाच्च वैनतेयादिवोरगाः । स्वदूतं पाशहस्तं च गच्छन्तं तं वदाम्यहम् ॥२०॥

सेवन ही सभी का इष्ट, तत्त्वभूत और परम मंगलमय है ॥९-१०॥ वह जन्म, मृत्यु, वृद्धता, रोग; शोक, सन्ताप से बचाने वाला, समस्त मंगलरूप, परमानन्द का कारण, समस्त, सिद्धियों का कारण, नरकसागर से तारनेवाला, भक्तिरूपी वृक्ष का अंकुर उत्पन्न करने वाला और कर्मरूपी वृक्ष का नाशक है ॥११-१२॥ तथा गोलोक के मार्ग की सीढ़ी, कभी भी विनष्ट न होनेवाले स्थान का प्रदाता एवं सालोक्य, सायुज्य, सारूप्य तथा सामीप्य आदि मोक्ष का दायक है ॥१३॥ हे शुभे! इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण के किंकर (सेवक) होने पर वे प्राणी नरकों के कुण्डों, यमदूतों, यम और यमभटों को स्वप्न में भी नहीं देखते हैं ॥१४॥ जो कर्मभोगी गृहस्थ भगवान् के व्रत करते हैं, भगवान् के तीर्थ में स्नान करते हैं, और हरिवासर (एकादशी) के दिन (अन्न) भोजन नहीं करते हैं, भगवान् को नित्य प्रणाम करते हैं, भगवान् का अर्चन-पूजन करते हैं, वे मेरी उस घोर संयमनी पुरी में नहीं जाते हैं ॥१५-१६॥ तीनों काल की संध्योपासनाओं से पवित्र होने वाले ब्राह्मणगण, जो शुद्ध आचारयुक्त एवं अपने धर्म में लीन रहने के कारण शान्त रहते हैं, वे यमपुर नहीं जाते हैं ॥१७॥ वे स्वर्ग का उपभोग करते हैं तथा अन्य वे लोग भी जो शुद्ध एवं अन्य देवों के सेवक हैं, (स्वर्ग से) मनुष्य लोक और मनुष्य लोक से (मृत्यु होने पर) स्वर्ग लोक आया-जाया करते हैं, किन्तु मुक्त नहीं होते क्योंकि बिना भगवान् श्रीकृष्ण की सेवा किये मनुष्य (कर्मभोगों से) निवृत्त (मुक्त) नहीं होते हैं ॥१८॥ यमराज के दूतगण अतिभीषण होते हैं, किन्तु भगवान् श्रीकृष्ण के उपासक को देख कर वे गरुड़ को देखकर साँप की भाँति भयभीत होते हैं, इसीलिए स्वधर्म में निरत रहने पर भी वे लोग (कहीं-कहीं) अपने धर्म को छोड़ बैठते हैं। हाथ में पाश लिए जब वे (मर्त्यलोक) जाने को तैयार होते हैं, तो मैं उन अपने दूतों से कहता हूँ कि—सभी स्थान पर जाओ किन्तु भगवान् के भक्तों के यहाँ कभी न जाना। भगवान् श्रीकृष्ण के

१क.०शिसुखप्र० ।

यास्यसीति च सर्वत्र हरिभक्ताश्रमं विना । कृष्णमन्त्रोपासकानां नामानि च निकृन्तनम् ॥२१॥
करोति नखराञ्जल्या चित्रगुप्तश्च भीतवत् । मधुपर्कादिकं ब्रह्मा तेषां च कुरुते पुनः ॥२२॥
विलङ्घ्य ब्रह्मलोकं च गोलोके गच्छतां सताम् । दुरितानि च नश्यन्ति तेषां संस्पर्शमात्रतः ॥२३॥
यथा सुप्रज्वलद्वह्नौ काष्ठानि च तृणानि च । प्राप्नोति मोहः संमोहं तांश्च दृष्ट्वाऽतिभीतवत् ॥२४॥
कामश्च कामिनं याति लोभक्रोधौ ततः सति । मृत्युः पलायते रोगो जरा शोको भयं तथा ॥२५॥
कालः शुभाशुभं कर्म हर्षो भोगस्तथैव च । ये ये न यान्ति यामीं च कथितास्ते मया सति ॥२६॥
शृणु देहस्य विवृतिं कथयामि यथागमम् । पृथिवी वायुराकाशं तेजस्तोयमिति स्फुटम् ॥२७॥
देहिनां देहबीजं च स्रष्टुः सृष्टिविधौ परम् । पृथ्व्यादिपञ्चभूतैश्च यो देहो निर्मितो भवेत् ॥२८॥
स कृत्रिमो नश्वरश्च भस्मसाच्च भवेदिह । वृद्धाङ्गुष्ठप्रमाणेन यो जीवः पुरुषाकृतिः ॥२९॥
बिभर्ति सूक्ष्मदेहं च तद्रूपं भोगहेतवे । स देहो न भवेद्भस्म ज्वलदग्नौ ममाऽऽलये ॥३०॥
जले न नष्टो देहो वा प्रहारे सुचिरं कृते । न शस्त्रे च न चास्त्रे च सुतीक्ष्णे कण्टके तथा ॥३१॥
तप्तद्रवे तप्तलौहे तप्तपाषाण एव च । प्रतप्तप्रतिमाश्लेषेऽप्यत्यूर्ध्वपतनेऽपि च ॥३२॥

मन्त्रों के उपासकों के नाम (यदि बही में भूल से लिख जाते हैं तो) भयभीत होकर चित्रगुप्त हाथ जोड़ कर काट देते हैं। ब्रह्मा उनकी मधुपर्क आदि से सेवा करते हैं। और वे (भक्त) ब्रह्मलोक पार कर (आगे) गोलोक चले जाते हैं। उस समय (गोलोक) जाते हुए उन सज्जनों के स्पर्श मात्र से ही उनके पाप उसी प्रकार नष्ट हो जाते हैं॥१९-२३॥ जिस प्रकार प्रदीप्त अग्नि में लकड़ियाँ और तृण (खर) जल जाते हैं। उन्हें देखकर मोह भी भयभीत होकर संमोहित हो जाता है॥२४॥ काम कामी के पास चला जाता है, लोभ और क्रोध भी उससे दूर हो जाते हैं तथा मृत्यु; रोग, जरा, शोक और भय (उससे दूर) भाग जाते हैं ॥२५॥ उसी भाँति काल; शुभाशुभ कर्म, हर्ष तथा भोग भी दूर हो जाते हैं। इस प्रकार जो यमपुरी नहीं जाते हैं, उन्हें मैंने बता दिया है॥२६॥ शास्त्रानुसार शरीर की रचना (कैसे होती है) बता रहा हूँ, सुनो ! पृथिवी, वायु, आकाश, तेज और जल यही (पञ्चभूत) जीवात्मा की देह के और स्रष्टा (ब्रह्मा) के सृष्टि-विधान के मूल कारण हैं क्योंकि इन्हीं पृथिवी आदि पाँच भूतों द्वारा देह का निर्माण होता है॥२७-२८॥ जो नश्वर (विनाशशील) और इसी लोक में भस्म हो जाती है। पुनः (नरक में दण्ड) भोगने के लिए पुरुषाकार यह जीव वृद्धाङ्गुष्ठ के बराबर 'सूक्ष्म देह' धारण करता है। वह हमारे यहाँ (नरक में) न तो प्रज्वलित अग्नि में भस्म होती है, न जल में नष्ट होती है, न अतिआघात करने पर नष्ट होती है, न शस्त्र, अस्त्र, अतितीक्ष्ण (तेज) काँटे, तप्त द्रव (पिघले) पदार्थ, तपाये लोह और संतप्त पाषाण (पत्थर) से नष्ट होती है और न अति सुतप्त प्रतिमा के आलिंगन करने तथा अत्यन्त ऊँचाई से गिरने पर ही नष्ट होती है। न वह जलती है, न टूटती है, केवल संताप का अनुभव कराती है। हे देवि!